CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ॐ

योग-साधन-माला । ग्रंथ ३

वैदिक-प्राण-विद्या ।

लेखक, मुद्रक और प्रकाशक ।
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
भारतमुद्रणालय, स्वाध्याय-मंडल,
औंध, (जि. सातारा)

तृतीय वार

संवत् १९९०, शक १८५५, सन १९३४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवैतनिक महावीरोंका स्वागत।

राष्ट्रीय सैन्यमें कई वीर वेतन लेकर युद्धमें जानेवाले होते हैं और कई अवैतनिक स्वयं-सेवक होते हैं। वेतन लेकर युद्ध करनेवाले वीरोंकी अपेक्षा "**अवैतनिक राष्ट्रीयस्वयं-सेवकोंका सन्मान**" अधिक होता है।

अपने शरीरमें भी उक्त प्रकारके दो वीर विद्यमान हैं। दो हात, दो पांव, गुदद्वार, मूत्रद्वार और मुख ये सात कर्मवीर हैं, तथा इनके साथ कार्य करनेवाले दो नाक, दो आंख, दो कान, और त्वचा ये सात ज्ञानवीर हैं। ये दोनों प्रकारके वीरोंके चौदह गण हैं। ये वीर शरीरके संरक्षणके लिये बडा युद्ध करते हैं, परंतु इनको खानपान आदि रूपसे वेतन अवश्य देना चाहिए। यदि वेतन न दिया जायगा, तो इनसे कार्य नहीं हो सकता।

इनकी अपेक्षा अवैतनिक राष्ट्रीय स्वयंसेवकका कार्य करनेवाले एकादश रुद्र प्राणरूपसे इस शरीरमें विद्यमान हैं। पंच प्राण, पंच उपप्राण और एक आत्मा मिलकर ये ग्यारह महावीर होते हैं। विना खानेपीनेके, तथा आराम, विश्राम और निद्रा न लेते हुए, ये वीर शरीरका संरक्षण करनेके लिये दैनिक महायुद्धमें सदाही तत्पर होते हैं। ये महावीर इतने प्रभावशाली होते हैं कि ये स्वयं अपना युद्धरूपी कार्य अपनीही शक्तिसे करते रहते हैं, साथ साथ पूर्वोक्त कर्मवीरों और ज्ञानवीरोंको भी सहायता देते हैं। उक्त वीरोंकी जागनेकी तथा सोनेकी अवस्थामें इनका एक जैसाही निःस्वार्थ कार्य होता रहता है। इसलिये अवैतनिक कार्य करनेवाले इन महावीरोंका शरीर की सुस्थितिके लिये अत्यंत उपयोग है। इनके निष्काम भावसे किये हुए कार्यसेही संपूर्ण शरीरकी सुस्थिति होती है। इसलिये सब शरीररूपी इस राष्ट्रमें इनका माहात्म्य अधिक है और इसी कारण इन महावीरोंकी सर्वत्र पूजा होती हैं। इनकी पूजा करनेका विचार इस पुस्तकमें है।

स्वाध्याय-मंडल
औंध (जि० सातारा.)
फाल्गुन, संवत् १९९०. } श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ॐ

वैदिक प्राणविद्या ।

मनुष्योंके लिये सब अन्य विद्याओंकी अपेक्षा प्राणविद्याकी अत्यंत आवश्यकता है । मनुष्यके शरीरमें भौतिक और अभौतिक अनेक शक्तियां हैं । उन सब शक्तियोंमें प्राणशक्तिका महत्त्व सर्वोपरि है । सब अन्य शक्तियोंका अस्त होनेपर भी इस शरीरमें प्राणशक्ति कार्य करती है, परंतु प्राणका अस्त होनेपर कोई अन्य शक्ति कार्य करनेके लिये समर्थ नहीं हो सकती । इससे प्राणका महत्त्व स्वयं स्पष्ट हो सकता है ।

इस प्राणकी विद्या वेदमें है या नहीं? और यदि है तो उसका स्वरूप क्या है? यह प्रश्न वारंवार पूछा जाता है । इसका उत्तर निम्न मंत्रही स्वयं दे सकते हैं। वेदमें प्राणविद्याका विस्तारपूर्वक उपदेश है । प्रायः अनेक देवताओंके सूक्तोंमें साक्षात् अथवा परंपरासे प्राणविद्याका उपदेश आता है । परंतु वेदकी प्राणविद्याके संपूर्ण मंत्र अबतक एकत्रित नहीं हुए हैं, इस अवस्थामें प्राणविद्याका स्पष्ट रूपसे उपदेश करनेवाले थोडेसे मंत्र इस लेखमें देनेका यत्न कर रहा हूं ।

ईश्वर सबका प्राण है ।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ॥
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

" जिसके आधीन (इदं सर्वं) यह सब जगत् है, उस प्राणके लिये मेरा नमस्कार है। वह प्राण सबका ईश्वर (भूतः) है और उसमें सब जगत् (प्रतिष्ठितं) रहा है । "

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहां "प्राण" शब्दसे परमेश्वरकी विश्वव्यापक जीवनशक्ति कही है। इस परमात्माकी जीवनशक्ति के आधीन यह सब संसार है, इसीके आधार से रहा है और इसीसे सब संसारका नियमन भी हो रहा है। समष्टिदृष्टिसे सर्वत्र प्राणका राज्य है। व्यष्टिदृष्टिसे प्रत्येक शरीरमें भी प्राणकाही आधिपत्य है। प्राणिमात्रके प्रत्येक शरीरमें जो जो इंद्रियादिक शक्तियां हैं, तथा विभिन्न अवयव और इंद्रिय हैं, सब ही प्राणके वशमें हैं। प्राणके आधीन ही सब शरीर है। शरीरमें प्राण ही सब इंद्रियों और अवयवोंका ईश्वर है, क्योंकि उसीके आधार से सब शरीर प्रतिष्ठाको प्राप्त हुआ है। प्राणके विना इस शरीरकी स्थितिही नहीं हो सकती। अर्थात् प्राणके वश होनेसे सब शरीर सुदृढ और नीरोग हो सकता है और प्राणके निर्बल होनेसे सब शरीर निर्बल हो सकता है। इसलिये प्राणको स्वाधीन करनेकी आवश्यकता है।

अपने शरीरमें श्वास-उच्छ्वासरूप प्राण चल रहा है और जन्मसे मरणपर्यंत यह कार्य करता है। सब इंद्रिय और अवयव मर जानेके पश्चात् भी कुछ देरतक प्राण कार्य करता है, इसलिये सबमें प्राणही मुख्य है और वह सबका आधार है। अपने प्राणको केवल साधारण श्वासरूपही समझना नहीं चाहिये, परंतु उसको श्रेष्ठ दिव्य शक्तिका अंश समझना उचित है। मन की इच्छा शक्तिसे प्रेरित प्राण सबही शरीरका आरोग्य संपादन करने में समर्थ होता है, इस दृष्टिसे प्राणका महत्त्व सब शरीर में अधिक है। इसके महत्त्वको समझना और सदा मनमें धारण करना चाहिए। "अपने प्राणके आधीन मेरा सब शरीर है, प्राणके कारण वह स्थिर रहा है और उसकी सब हलचल प्राणकी प्रेरणासे होती है, इस प्रकारके प्राणकी मैं उपासना करूंगा और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसको अपने आधीन करूंगा । प्राणायामसे उसको प्रसन्न करूंगा और वशीभूत प्राणसे अपनी इच्छानुरूप अपने शरीरमें कार्य करूंगा।" यह भावना मनमें धारण करके अपने प्राणकी शक्तिका चिंतन करना चाहिए ।

यह प्राण जैसा शरीरमें है वैसा बाहिर भी है। इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र देखिए—

अंतरिक्षस्थ प्राण ।

नमस्ते प्राण क्रंदाय नमस्ते स्तनयित्नवे ॥
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥२॥

"हे प्राण! गर्जना करनेवाले तुझको नमस्कार है। मेघोंमें नाद करनेवाले तुझको नमस्कार है । हे प्राण ! चमकनेवाले तुझको नमस्कार है और हे प्राण ! वृष्टि करनेवाले तुझको नमस्कार है।"

केवल गरजनेवाले मेघोंका नाम 'क्रंद' है, बडी गर्जना और विद्युत्पात जिनसे होता है उन मेघोंका नाम 'स्तनयित्नु' है; जिनसे बिजुली बहुत चमकती है उनको 'विद्युत्' कहते हैं और वृष्टि करनेवाले मेघोंका नाम है 'वर्षत्'। ये सब मेघ अंतरिक्षमें प्राणको धारण करते हैं और वृष्टिद्वारा वह प्राण भूमंडलपर आता है, और वृक्षवनस्पतियोंमें संचारित होता है। इस प्रकार अंतरिक्षस्थानमें प्राणके वास्तव्यका अनुभव करना चाहिए । इस प्राणका कार्य देखिए—

प्राणका कार्य ।

यत्प्राण स्तनयित्नुनाऽभिक्रंदत्योषधीः ॥
प्रवीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्विजायन्ते ॥३॥

"हे प्राण ! जब तू मेघोंके द्वारा औषधियोंके सन्मुख बडी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गर्जना करता है, तब औषधियां (प्रवीयन्ते) तेजस्वी होती हैं, (गर्भान् दधते) गर्भ धारण करती हैं और बहुत प्रकारसे विस्तारको प्राप्त होती हैं।" अंतरिक्षस्थानका प्राण वृष्टिद्वारा औषधि वनस्पतियोंमें आकर वनस्पतियोंका विस्तार करता है। प्राणकी यह शक्ति प्रत्यक्ष देखने योग्य है।

यत्प्राण ऋतावागतेऽभि क्रंदत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्रमोदते यत्किं च भूम्यामधि ॥४॥

"हे प्राण! (ऋतौ आगते) वर्षा ऋतु आतेही जब तू औषधियों के उद्देशसे गर्जना करने लगता है, तब जगत् आनंदित होता है, जो कुछ इस पृथ्वीपर है।"

वृष्टिद्वारा प्राप्त होनेवाले प्राणसे न केवल वृक्षवनस्पतियां प्रफुल्लित होती हैं, परंतु अन्य जीवजंतु और प्राणी भी बडे हर्षित होते हैं। मनुष्य भी इस का स्वयं अनुभव करते हैं।

देखिये—

यदा प्राणो अभ्यवर्षद्वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस्तत्प्रमोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥५॥

"जब प्राण वृष्टिद्वारा इस बडी भूमिपर वर्षा करता है, तब पशु हर्षित होते हैं [और समझते हैं कि] निश्चयसे अब हम सबकी (महः) वृद्धि होगी।"

अभिवृष्टा औषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥६॥

"औषधियोंपर वृष्टि होनेके पश्चात् औषधियां प्राणके साथ भाषण करती हैं कि हे प्राण! तूने हमारी आयु बढा दी है और हम सबको (सुरभीः) सुगंधियुत (अकः) किया है।"

अंतरिक्षस्थ प्राणका कार्य इस प्रकार पाठक देखें और जगत् में इस प्राणका महत्त्व कितना है, इसका अनुभव करें। पहिले

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मंत्रमें प्राणका सामान्य स्वरूप वर्णन किया है उसकी अंतरिक्ष-स्थानीय एक विभूति यहां बता दी है। अब इसीकी वैयक्तिक विभूति बतायी जाती है।

वैयक्तिक प्राण।

नमस्ते अस्त्वायते नमोऽस्तु परायते ॥
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ ७॥
नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते ॥
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः ॥
सर्वस्मै त इदं नमः ॥८॥

" आगमन करनेवाले प्राण के लिये नमस्कार है, गमन करनेवाले प्राणके लिये नमस्कार है। हे प्राण! स्थिर रहनेवाले और बैठनेवाले प्राण के लिये नमस्कार है॥ हे प्राण! (प्राणते) जीवन का कार्य करनेवाले तुझे नमस्कार है। अपानेका कार्य करनेवाले तेरे लिये नमस्कार है। आगे बढनेवाले और पीछे हटनेवाले प्राणके लिये नमस्कार है। (सर्वस्मै) सब कार्य करने-वाले तेरे लिये यह मेरा नमस्कार है।"

श्वासके साथ प्राणका अंदर गमन होता है और उच्छ्वासके साथ बाहिर आना होता है। प्राणायाम के पूरक और रेचक का बोध "आयत्, परायत्" इन दो शब्दोंसे होता है। स्थिर (तिष्ठत्) रहनेवाले प्राणसे कुंभक का बोध होता है। और बाह्य कुंभक का ज्ञान 'आसीन' पदसे होता है। "(१) पूरक, (२) कुंभक, (३) रेचक और (४) बाह्य कुंभक" ये प्राणायाम के चार भाग हैं। ये चारों मिलकर परिपूर्ण प्राणायाम होता है। इनका वर्णन इस मन्त्रमें "(१) आयत्, (२) तिष्ठत्, (३) परायत्, (४) आसीन" इन चार शब्दोंसे हुआ है। जो अंदर आनेवाला प्राण होता है, उसको "आयत् प्राण" कहा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाता है, यही पूरक प्राणायाम है। आने जानेकी गतिका निरोध करके प्राणको अंदर स्थिर किया जाता है, उसको " तिष्ठत् प्राण " कहते हैं। यही कुंभक अथवा अंतःकुंभक प्राणायाम होता है। जो अंदरसे बाहिर जाता है उसको " परायत् प्राण" कहते हैं। यही रेचक प्राणायाम है। सब प्राण रेचक द्वारा बाहिर निकालनेके पश्चात् उसको बाहिर ही बिठलाना "आसीन प्राण" द्वारा होता है। यही बाह्य कुंभक है। प्राणायामके ये चार भाग हैं। इन चारोंके अभ्याससे प्राण वश होता है। यही इस प्राण-देवताकी प्रसन्नता करने का उपाय है, यही प्राण-उपासनाकी विधि है।

प्राण नाम उसका है कि जो नासिका द्वारा छातीमें पहुंचता है। अपान उसका नाम है कि जो नाभिके निम्न देशसे गुदाके द्वार तक कार्य करता है। इन्हीके दो अन्य नाम " प्राचीन और प्रतीचीन " प्राण हैं। प्राणके स्वाधीन रखनेका तात्पर्य प्राण और अपानको स्वाधीन करना है।अपान की स्वाधीनतासे मलमूत्रोत्सर्ग उत्तम प्रकारसे होते हैं और प्राणकी स्वाधीनतासे रुधिरकी शुद्धि होती है। इस प्रकार दोनोंके वशीभूत होनेसे शरीरकी नीरोगता सिद्ध होती है। इस प्रकारकी प्राणकी स्वाधीनता होनेसे प्राणके आधीन सब शरीर है,इसका अनुभव होता है। इसी उद्देशसे मंत्र कहता है कि "सर्वस्मै त इदं नमः" अर्थात् तू सब कुछ है, इसलिये तेरा सत्कार करता हूं। शरीर का कोई भाग तेरी शक्तिके विना कार्य नहीं कर सकता,इसलिये सब अवयवोंमें सब प्रकारका कार्य करनेवाले प्राणका सदाही सत्कार करना चाहिए। हर एक मनुष्यको उचित है कि, वह अपने प्राणकी इस शक्तिका ध्यान करे,विश्वासपूर्वक इस शक्तिका स्मरण रखे, क्योंकि निज आरोग्यकी सिद्ध इसीपर निर्भर है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस प्राणशक्तिका इतना महत्त्व है कि इसकी विद्यमानतामें ही अन्य औषधि कार्य कर सकते हैं, परंतु इस शक्तिके कमजोर होनेपर कोई औषधि कार्य नहीं कर सकती। प्राणही सब औषधियोंकी औषधि है। इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र देखिये-

प्राणका औषधिगुण।

या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी॥
अथो यद्भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥९॥

"हे प्राण! जो तेरा (प्राणमय) प्रिय शरीर है, और जो तेरे (प्राणापानरूप) प्रिय भाग हैं, तथा जो तेरा औषध है, वह (जीवसे) दीर्घजीवनके लिये हमको देओ।"

अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय ये पांच कोश हैं। इनको पांच शरीर भी कह सकते हैं। इन पांच शरीरोंमेंसे "प्राणमय शरीर" का वर्णन इस मंत्रमें किया है। "प्रियतनू" यह प्राणमय कोश ही है। सब ही इसपर प्रेम करते हैं, सब चाहते हैं कि यह प्राणमय शरीर सदा रहे। प्राण और अपान ये इस शरीरके दो प्रेममय कार्य हैं। प्राणसे शक्तिका संवर्धन होता है और अपानसे विषको दूर करके स्वास्थ्यका संरक्षण होता है। प्राणके अन्दर एक प्रकारका "भेषजं" अर्थात् औषध है। दोषोंको दूर करनेकी शक्तिका नाम(दोष-ध) औष-ध अथवा भेषज होता है। शरीरके सब दोष दूर करना और वहां शरीरमें आरोग्यकी स्थापना करना, यह पवित्र कार्य करना प्राणकाही धर्म है। प्राणका दूसरा नाम"रुद्र" है और रुद्र शब्दका अर्थ वैद्य भी होता है। [इसका वर्णन "रुद्रदेवता का परिचय" और "ऋग्वेदमें रुद्रदेवता" इन दो पुस्तकोंमें विस्तारसे किया है। पाठक वहां ही इस विषयको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देखें ।] इस प्राणमें औषध है, यह वेदका कथन है । इसपर अवश्य विश्वास रखना चाहिए क्यों कि यह विश्वास अवास्तविक नहीं है। अपनी निज शक्तिपर विश्वास रखनेके समानही यह वास्तविक विश्वास है । मानसचिकित्साका यह मूल है । पाठक इस दृष्टिसे इस मंत्रका विचार करें। अपनी प्राणशक्तिसे अपनीही चिकित्सा की जा सकती है। 'मैं अपनी प्राणशक्तिसे अपने रोगोंका निवारण अवश्य करूंगा,' यह भाव यहां धारण करनेसे बडा लाभ होता है ।

सर्वरक्षक प्राण ।

प्राणः प्रजा अनुवस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ॥
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणिति यच्च न ॥१०॥

"जिस प्रकार प्रिय पुत्रके साथ पिता रहता है, उस प्रकार सब प्रजाओंके साथ प्राण रहता है । जो प्राणधारण करते हैं और जो नहीं धारण करते, उन सब का प्राणही ईश्वर है ।"

जिस प्रकार पुत्रका संरक्षण करनेकी इच्छा पिता करता है, उसी प्रकार प्राण सबका रक्षण करना चाहता है। सब प्रजाओंके शरीरोंमें नसनाडियोंमें जाकर, वहां रहकर सब प्रजाका संरक्षण यह प्राण करता है । न केवल प्राणधारण करनेवाले प्राणियोंका परंतु जो प्राणधारण नहीं करते हैं, ऐसे स्थावर पदार्थोंका भी रक्षण प्राणही करता है। अर्थात् कोई यह न समझे कि श्वासोच्छ्वास करनेवाले प्राणियोंमें ही प्राण है, परंतु वृक्षवनस्पति, पत्थर आदि पदार्थोंमें भी प्राण है, और इन सब पदार्थोंमें रहकर प्राण सबका संरक्षण करता है। प्राणको पिता के समान पूज्य समझना चाहिए और उसको सब पदार्थोंमें व्यापक समझना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राणकी उपासना ।

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ॥
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आदधत् ॥ ११ ॥

"प्राण ही मृत्यु है और प्राणही जीवनकी शक्ति है। इसलिये सब देव प्राणकी उपासना करते हैं। क्योंकि सत्यवादीको प्राणही उत्तम लोकमें पहुंचाता है।'

शरीरसे ण चले जानेसे मृत्यु होता है, और जब तक शरीरमें प्राण कार्य करता है, तब तक ही शरीरमें सामर्थ्य अथवा सहनशक्ति रहती है। इस प्रकार एकही प्राण जीवन और मृत्युका कर्ता होता है। 'देव' शब्दसे इस मंत्रमें इंद्रियोंका ग्रहण होता है । सब इंद्रियां प्राण की ही उपासना करती हैं, अर्थात् प्राणके साथ रहकर अपने अंदर बल प्राप्त करती हैं। जो इंद्रिय प्राणके साथ रहकर बल प्राप्त करता है, वही कार्यक्षम होता है, परंतु जो इंद्रिय प्राणसे वियुक्त होता है, वह मर जाता है । यही प्राण की उपासना है और यही रुद्र की उपासना है । सब देवोंमें महादेवकी शक्ति कैसी कार्य करती है, इसका यहां अनुभव हो सकता है । प्राणही महादेव, रुद्र, शंभु आदि नामोंसे बोधित होता है । व्यक्तिके शरीरमें प्राणही उसकी विभूति है। सब जगत् में उसका स्वरूप विश्वव्यापक प्राणशक्तिही है। इस व्यापक प्राणशक्तिके आश्रयसे अग्नि, वायु, इंद्र, सूर्य आदि देवता-गण रहते हैं और अपना कार्य करते हैं । व्यष्टिमें और समष्टिमें एकही नियम कार्य कर रहा है। व्यष्टिमें प्राणके साथ इंद्रियां रहती हैं और समष्टिमें व्यापक प्राणशक्तिके साथ अग्नि आदि देव रहते हैं। दोनों स्थानोंमें दोनों प्रकारके देव प्राणकी उपासनासे ही अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं । तीसरे देव समाज और राष्ट्रमें विद्वान् शूर आदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकारके हैं। वे सत्यवादी, सत्यनिष्ठ, सत्यपरायण और सत्याग्रही बनकर प्राणायामद्वारा प्राण की उपासना करते हैं। प्राणही इनको उत्तम लोकमें पहुंचाता है अर्थात् इनको श्रेष्ठ बनाता है। अर्थात् प्राण की उपासनासे सब ही श्रेष्ठ बनते हैं।

सत्यसे बलप्राप्ति ।

कई लोक यहां पूछेंगे कि सत्यवादिताका प्राणकी उपासनाके साथ क्या संबंध है? उत्तरमें निवेदन है कि सत्यसे मन पवित्र होता है और उसकी शक्ति बढती है। प्राणकी शक्तिके साथ मानसिक शक्तिका विकास होनेसे बडा लाभ होता है। प्राणायामसे प्राणकी शक्ति बढती है और सत्यनिष्ठासे मनकी शक्ति विकसित होती है। इस प्रकार दोनों शक्तियोंका विकास होनेसे मनुष्यकी योग्यता असाधारण हो जाती है। तथा-

सूर्यचंद्रमें प्राण ।

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ॥
प्राणो ह सूर्यश्चंद्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥१२॥

"प्राण (वि-राज्) विशेष तेजस्वी है, और प्राण ही (देष्ट्री) सबका प्रेरक है। इसलिये प्राणकी ही सब उपासना करते हैं। सूर्य, चंद्रमा और प्रजापति भी प्राणही हैं।"

प्राण विशेष तेजस्वी है। जबतक शरीरमें प्राण रहता है, तबतक ही शरीरमें तेज होता है। प्राणके चले जानेसे शरीरका तेज नष्ट होता है। सब शरीरमें प्राणसे ही प्रेरणा होती है। बोलना, हिलना, चलना आदि सब प्राणकी प्रेरणासे ही होता है, अर्थात् शरीरमें तेज और प्रेरणा प्राणसे होती है। इसलिये सब प्राणिमात्र प्राणकी ही उपासना करते हैं किंवा यों समझिए कि जब तक वे प्राणके साथ रहते हैं, तबतकही उनकी स्थिति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती है। जब वे प्राणका साहचर्य छोड देते हैं तब उनकी मृत्यु-ही होती है। इच्छा न होनेपरभी सब प्राणी प्राणकी ही उपासना कर रहे हैं। यदि मानसिक इच्छाके साथ प्राणोपासना की जायगी, तो निःसंदेह बडा लाभ हो सकता है। क्यों कि इस जीवनका जो वैभव है, वह प्राणसेही प्राप्त हुआ है। इसलिये अधिक वैभव प्राप्त करना है, तो प्रयत्नसे उसकी ही उपासना करनी चाहिए। प्राणायामका यही फल है। इस जगत् में सूर्य चंद्र ये प्राणही हैं। सूर्य किरणोंके द्वारा वायुमें प्राण रखता है और चंद्र अपने किरणोंसे औषधियोंमें प्राण रखता है। मेघ विद्युत् आदि अपने अपने कार्य द्वारा जगत् को प्राण दे ही रहे हैं। अंतमें प्राणोंका प्राण जो प्रजापती परमात्मा है, वह ही सच्चा प्राण है, क्यों कि जीवनकी सब प्राणशक्तिका वह एक मात्र आधार है। यही कारण है कि वेदमें प्रजापति परमात्माका नाम प्राण ही है। अन्यपदार्थोंमें भी प्राण है, देखिए-

धान्यमें प्राण ।

प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ॥
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥

"प्राण और अपान ही चावल और जौ हैं। (अनड्वान्) बैल ही मुख्य प्राण है। जौ में प्राण रखा है और चावल अपानको कहते हैं।"

मुख्य प्राण एकही है, उसके बलसे शरीरमें प्राण और अपान कार्य करते हैं। इसी प्रकार खेतीमें बैलकी शक्ति मुख्य है, उसकी शक्तिसे ही चावल और जौ आदि धान्य उत्पन्न होता है। वेदमें "अनड्वान्" यह बैलवाचक है। समझो कि शरीररूपी खेतमें यह प्राणरूपी बैल ही खेती करता है और यहांका किसान जीवात्मा है। शरीर क्षेत्र है, जीवात्मा क्षेत्रज्ञ है, प्राण बैल है, और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जीवनव्यवहाररूप खेती यहां चल रही है। वेदमें अनड्वान् शब्दका प्राण अर्थ है, यह न समझनेके कारण कईयोंने बडा अर्थका अनर्थ किया है, देखिए-

अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्याम् ॥ अथर्व० । ४।११। १

"प्राणका पृथिवी और द्युलोकको को आधार है, " यह वास्तविक अर्थ न लेकर,बैलका पृथिवी और द्युलोकको आधार है ऐसा भाव कइयोंने समझा है। यदि पाठक इस अनड्वान् सूक्त का अर्थ इस प्राणसूक्तके अर्थके साथ देखेंगे, तो उनको स्पष्ट पता लग जायगा कि वह अनड्वान् का अर्थ केवल बैलही नही है, प्रत्युत प्राण भी है। इसी कारण इस सूक्त में प्राणका नाम अनड्वान् कहा है। यव प्राण है और चावल अपान है,यह कथन आलंकारिक है। धान्यमें प्राण और अपान अर्थात् प्राणकी संपूर्ण शक्तियां व्याप्त हैं। धान्यका योग्य सेवन करनेसे अपने शरीरमें प्राणादिक आते हैं और अपने शरीरके अवयव बनकर कार्य करते हैं।

प्राणसे पुनर्जन्म ।

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अंतरा ॥
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥ १४ ॥

"(पुरुषः) जीव गर्भके अंदर प्राण और अपानके व्यापार करता है। हे प्राण! जब तू (जिन्वसि) प्रेरणा करता है, तब वह जीव पुनः उत्पन्न होता है।"

गर्भके अंदर रहनेवाला जीव भी वहांही गर्भमें प्राण और अपानके व्यापार करता है। और इसीलिये वहां उसका जीवन होता है। जब जन्मके समय प्राण जन्म होने योग्य प्रेरणा करता है, तब उसको जन्म प्राप्त होता है। अर्थात् जन्मके अनुकूल प्रेरणा करना प्राणकेही आधीन है। इस मंत्रमें "सः पुनः जायते" यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाक्य पुनर्जन्म की कल्पना का मूल वेदमें बता रहा है। जीवात्मा पुनः पुनः जन्म धारण करता है, वह सब प्राणकी प्रेरणासें होता है, यह भाव इस मंत्रमें स्पष्ट है।

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ॥
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

" प्राणको मातरिश्वा कहते हैं, और वायुका नामही प्राण है। भूत, भविष्य और सब कुछ वर्तमान कालमें जो है, वह सब प्राणमें ही रहता है।"

" मातरि- श्वा " शब्दका अर्थ 'माताके अंदर रहनेवाला, माताके गर्भमें रहनेवाला ' है। माताके गर्भमें प्राणरूप अवस्थामें जीव रहता है, इसलिये जीवका नाम 'मातरिश्वा' है। गर्भमें इसकी स्थिती प्राणरूप होनेसे इसका नाम ही प्राण होता है। इस कारण प्राण और मातरिश्वा शब्द समान अर्थ बताते हैं। 'मातरिश्वा' का दूसरा अर्थ वायु है। वायु, वात आदि शब्द भी प्राणवाचक ही हैं। क्यों कि वायुरूप प्राणही हम अंदर लेते हैं और प्राणधारण कर रहे हैं। प्राणका विचार करनेसे ऐसा पता लगता है कि उसके आधारसे भूत, भविष्य और वर्तमानका सबही जगत् रहता है। प्राणके आधारसे ही सब रहता है। प्राणके विना जगत् में किसीकी भी स्थिति नहीं हो सकती। पूर्वजन्म, यह जन्म और पुनर्जन्म ये सब प्राणके कारण होते हैं। अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान कालमें जो कर्मके संस्कार प्राणमें संचित होते हैं, उनके कारण यथायोग्य रीतिसे पुनर्जन्मादि होते हैं।

अथर्व-चिकित्सा ।

आथर्वणीरांगिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत ॥
ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥ १६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हे प्राण! (यदा) जबतक तू (जिन्वसि) प्रेरणा करता है, तब तक ही आथर्वणी, आंगरसी, दैवी और मनुष्यकृत औषधियां (प्र-जायंते) फल देतीं हैं।"

औषधियोंका उपयोग तब तक ही होता है कि जब तक प्राणकी शक्ति शरीरमें है। जब प्राणकी शक्ति शरीरसे अलग होने लगती है, तब किसी औषधिका कोई उपयोग नहीं होता। इसी सूक्तके मंत्र ९ में "प्राण ही औषधि है कि जो जीवनकी हेतु है" ऐसा कहा है, उसका अनुसंधान इस मंत्रके साथ करना उचित है।

इस मंत्रमें "(१) आथर्वणीः, (२) आंगिरसीः, (३) दैवीः, और (४) मनुष्यजाः" ये चार नाम चार प्रकारकी चिकित्साओंके बोधक हैं। इसका विचार निम्न प्रकार है- (१) मनुष्यजाः ओषधयः=मनुष्योंकी बनाई औषधियां, अर्थात् कषाय,चूर्ण,अवलेह, भस्म, कल्प आदि प्रकार जो वैद्यों, डाक्टरों और हकीमोंके बनाये होते हैं, उनका समावेश इसमें होता है। ये मानवी औषधियोंके प्रकार हैं। इससे श्रेष्ठ दैवी विधि है। (२) दैवीः औषधयः=आप, तेज, वायु, आदि देवोंके द्वारा जो चिकित्सा की जाती है, वह दैवी चिकित्सा है। जलचिकित्सा, सौरचिकित्सा, वायुचिकित्सा, विद्युच्चिकित्सा, वर्णचिकित्सा आदि सब दैवी प्रकार हैं। सूर्य चंद्र वायु आदि देवताओंके साक्षात्संबंधसे यह चिकित्सा होती है और आश्चर्यकारक गुण प्राप्त होता है, इसलिये इसकी योग्यता बडी है। इसके अतिरिक्त देवयज्ञ अर्थात् हवन आदि द्वारा जो चिकित्सा होती हैं उसका भी समावेश इसमें होता है। देवयज्ञ द्वारा देवताओंकी प्रसन्नता करके, उन देवताओंके जो जो अंश अपने शरीर में हैं, उनका आरोग्य संपादन करना कोई अस्वाभाविक प्रकार नहीं है। यह बात युक्ति-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

युक्त और तर्कगम्य भी है। (३) आंगिरसीः औषधयः=अंगों, अवयवों और इंद्रियोंमें एक प्रकारका रस रहता है। जिसके कारण हमारे अथवा प्राणियोंके शरिरकी स्थिति होती है। उस रसके द्वारा जो चिकित्सा होती है वह आंगि-रस-चिकित्सा कहलाती है। मानसिक इच्छाशक्तिकी प्रबल प्रेरणासे इस रसका अंगप्रत्यंगोंमें संचार करनेसे रोगोंकी निवृत्ति होती है। मानसिक चित्तैकाग्र्यका इसमें विशेष संबंध है। रुग्ण अवयवको संबोधित करके नीरोगताके भावकी सूचना देना, तथा रोगीको अपनी निज अंगरसशक्तिकी प्रेरणा करनेके लिये उत्तेजित करना इस विधिमें मुख्य है। निज आरोग्यके लिये बाह्य साधनोंकी निरपेक्षता इसमें होनेसे इसको आंगिरसी चिकित्सा अर्थात् अपने निज अंगोंके रसद्वारा होनेवाली चिकित्सा कहते हैं। (४) आथर्वणीः औषधयः='अ-थर्वा' नाम है योगीका। मनकी विविध वृत्तियोंका निरोध करनेवाला, चित्तवृत्तियोंको स्वाधीन रखनेवाला योगी अथर्वा कहलाता है। इस शब्द का अर्थ (अ-थर्वा) निश्चल, स्तब्ध, स्थिर, गतिहीन ऐसा है। स्थितप्रज्ञ, स्थिरबुद्धि, स्थितमति आदि शब्द इसका भाव बताते हैं। योगी लोक तंत्रप्रयोगसे जो चिकित्सा करते हैं उसका नाम आथर्वणी-चिकित्सा होता है। हृदयके प्रेमसे, परमेश्वरभक्तिसे, मानसशक्तिसे और आत्मविश्वाससे मंत्रसिद्धि होती है। यह आथर्वणी चिकित्सा सबसे श्रेष्ठ है, क्यों कि इसमें जो कार्य होता है वह आत्माकी शक्तिसे होता है, इस लिये अन्य चिकित्साओं की अपेक्षा इसकी श्रेष्ठता है, इसमें कोई संदेहही नहीं है। ये सब चिकित्सा के प्रकार तबतक कार्य करते हैं कि जबतक प्राण शरीरमें रहना चाहता है। जब प्राण चले जाता है, तब कोई चिकित्सा फलदायक नहीं हो सकती। इस प्रकार प्राणका महत्त्व विशेष है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राणकी वृष्टि।

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेन पृथिवीं महीम्।
ओषधयः प्रजायन्ते याः काश्च वीरुधः ॥१७॥

"जब प्राण इस बडी पृथ्वीपर वृष्टि करता है, सब औषधियां और वनस्पतियां बढ जाती हैं।"

इस मंत्रका पूर्व अर्ध मंत्र पांच में आया है, इसलिये इस मंत्रका संबंध पांचवे मंत्रके साथ देखना उचित है। अंतरिक्षस्थ प्राण वृष्टि द्वारा वृक्षवनस्पतियोंको प्राप्त होता है, यह इस मंत्रका तात्पर्य है।

प्राणको स्वाधीन करनेवालेकी योग्यता।

यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः ॥ सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिंल्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥ यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः॥ एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत्सु श्रवः ॥१९॥

"हे प्राण! जो मनुष्य तेरी इस शक्तिको जानता है और (यस्मिन्) जिस मनुष्यमें तू प्रतिष्ठित होता है, (तस्मै) उस मनुष्यके लिये उस उत्तम लोकमें सबही (बलिं) सत्कारका समर्पण करते हैं॥ हे प्राण! (यथा) जिस प्रकार ये सब प्रजाजन तेरा सत्कार करते हैं कि (यः) जो (सु-श्रवाः) उत्तम यशस्वी है और (त्वा) तेरा सामर्थ्य (शृणवन्) सुनता है।"

जो मनुष्य प्राणकी शक्तिका वर्णन श्रद्धासे सुनता है, प्राणके बलको विश्वाससे जानता है, प्राण का बल प्राप्त करनेमें यशस्वी होता है और जिस मनुष्यमें प्राण उत्तम रीतिसे प्रतिष्ठित और स्थिर रहता है; उसका ही सब सत्कार करते हैं, उसकी स्थिति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तम लोकमें होती है और उसी का यश सर्वत्र फैलता है। प्राणायाम द्वारा जो अपने प्राण को प्रसन्न और स्वाधीन करता है, उसका यश सब प्रकारसे बढता है। इस मंत्रमें "बलि" शब्द का अर्थ सत्कार, पूजा, अर्पण, शक्तिप्रदान आदि प्रकारका है। सब अन्य देव प्राणको ही पूजते हैं, इस बातका अनुभव अपने शरीरमें भी आ सकता है। नेत्र कर्ण नासिका आदि सब अन्य देव प्राणकी ही पूजा करते हैं, प्राणकी उपासनासे ही प्राण की शक्ति उनमें प्रकट होती है। इसी प्रकार प्राणायामकी साधना करनेवाले योगीका सत्कार अन्य सज्जन करते हैं, और उसके उपदेशसे प्राणोपासनाका मार्ग जानकर स्वयं बलवान् बन सकते हैं। यही कारण है कि प्राणायाम करनेवाले योगी की सर्वत्र प्रशंसा होती है।

पिता-पुत्र-संबंध।

अंतर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः ॥
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्रविवेशा शचीभिः॥ २० ॥

" (देवतासु आभूतः) इंद्रियादिकोंमें जो व्यापक प्राण है वह ही (अंतः गर्भः चरति) गर्भके अंदर चलता है। जो (भूतः) पहिले हुआ था (सः उ) वह ही (पुनः जायते) फिर उत्पन्न होता है। जो (भूतः) पहिले हुआ था (सः) वह हि (भव्यं भविष्यत्) अब होता है और आगेभी होगा। पिता (शचीभिः) अपनी सब शक्तियोंके साथ (पुत्रं प्रविवेश) पुत्रमें प्रविष्ट होता है। "

सूर्य चंद्र वायु आदि देवताओंके अंश मनुष्यादि प्राणियोंके शरीरमें रहते हैं। वेही आंख नाक आदि अवयव किंवा इंद्रियों के स्थानमें रहते हैं। इन देवताओंमें प्राणकी शक्ति व्याप्त है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यही व्यापक प्राण पूर्व देहको छोडकर दूसरे गर्भमें प्रविष्ट होता है। अर्थात् एकवार जन्म लेनेके पश्चात् पुनः जन्म लेता है। आत्माकी शक्तियोंका नाम शची है। इंद्रकी धर्मपत्नीका नाम शची होता है। धर्मपत्नीका भाव यहां निजशक्ति ही है। इंद्र जीवात्मा है, और उसकी शक्तियां शची नामसे प्रसिद्ध हैं। पिताका अंश अपनी सब शक्तियोंके साथ पुत्रमें प्रविष्ट होता है। पिताके अंगों, अवयवों और इंद्रियोंके समानही पुत्रके कई अंग, अवयव और इंद्रिय होते हैं। स्वभाव तथा गुणधर्म भी कई अंशमें मिलते हैं। उस बातको देखनेसे पता लग सकता है, कि पिता अपनी शक्तियोंके साथ पुत्रमें किस प्रकार प्रविष्ट होता है। गृहस्थी लोगों को इस बातका विशेष विचार करना चाहिए, क्योंकि प्रजा निर्माण करना उनका ही विषय है। माता पिताके अच्छे और बुरे गुणदोष संतानमें आते हैं, इसलिये मातापिता को स्वयं निर्दोष होकर ही संतान उत्पन्न करनेका विचार करना चाहिए। अर्थात् दोषी मातापिताको संतान उत्पन्न करनेका अधिकार नहीं है।

हंस ।

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन् ॥ यदंग
स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्रिर्नाहः स्यान्न
व्युच्छेत्कदाचन ॥ २१ ॥

“ जलसे हंस ऊपर उठता हुआ एक प्रांवको उठाता नहीं। (अंग) हे प्रिय ! यदि वह उस पांव को उठावेगा तो आज, कल, रात्रि, दिन, प्रकाश और अंधेरा कुछभी नहीं होगा।”

“ हंस ” नाम प्राणका है। श्वास अंदर जानेके समय “स” का ध्वनि होता है और उच्छ्वास बाहेर आनेक समय “ ह ”

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का ध्वनि होता है। "ह और स" मिलकर "हंस" शब्द प्राणवाचक बनता है। उसीके अन्य रूप "अ-हंसः, सोऽहं" आदि उपासनाके लिये बनाये गये हैं। इनमें 'हंस' शब्द ही मुख्य है। उलटा शब्द बनानेसे इसीका "सोऽहं" बन जाता है, अथवा 'हंस' के साथ 'ओं' मिलानेसे 'सोऽहं' बन जाता है।

स—ह　　ह—स
ओ—म्　　म्—ओ (अः)

सोऽहं　　हं स

पाठक यहां दोनों प्रकारके रूप देख सकते हैं। सांप्रदायिक झगडोंसे दूर रहकर मूल वैदिक कल्पनाको यदि पाठक देखेंगे तो उनको बडा आश्चर्य प्रतीत होगा। 'ओं' शब्द आत्माका वाचक है और 'हंस' शब्द प्राणका वाचक है। आत्माका प्राणके साथ इस प्रकारका संबंध है। आत्मा ब्रह्माका वाचक है और ब्रह्माका वाहन हंस है, इस पौराणिक रूपकमें आत्माका प्राणके साथका अखंड संबंधही वर्णन किया है। यह हंस मानस-सरोवरमें क्रीडा करता है। यहां प्राणभी हृदयरूपी अंतःकरणस्थानीय मानस-सरोवरमें क्रीडा कर रहा है। हृदयकमलमें जीवात्माका निवास सुप्रसिद्ध है। अर्थात् कमलासन ब्रह्मदेव और उसका वाहन हंस, इसकी मूल वैदिक कल्पना यहां स्पष्ट होती है।

ब्रह्मा, ब्रह्मदेव	आत्मा, जीवात्मा, ब्रह्म
हंस-वाहन	प्राण-वाहन
कमल-आसन	हृदय-कमल
मानस सरोवर	अंतःकरण (हृदय)
प्रेरक कर्ता देव	प्रेरक आत्मा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेदमें हंसका वर्णन अनेक मंत्रोंमें आगया है, उसका मूल आशय इस प्रकार देखना उचित है। वेदमें " असौ अहं " (यजु०४०।१७) कहा है। "असु अर्थात् प्राणशक्तिके अंदर रहनेवाला मैं आत्मा हूं।" यह भाव उक्त मंत्र का है। वही भाव उक्त रूपमें है। प्राणके साथ आत्माका अवस्थान है। यह प्राण ही " हंस " है, वह (सलिलं) हृदयके मानस सरोवर में क्रीडा करता है। श्वास लेनेके समय यह प्राण उस सरोवरमें गोता लगाता है और उच्छ्वास लेनेके समय ऊपर उडता है। यहां प्रश्न उत्पन्न होता है, कि जब उच्छ्वास के समय प्राण बाहिर आता है तब प्राणी मरता क्यों नहीं? पूर्ण उच्छ्वास लेकर श्वासको पूर्ण बाहिर निकालनेपर भी मनुष्य मरता नहीं। इसका कारण इस मंत्रमें बताया है। जिस प्रकार हंस पक्षी एक पांव पानीमें ही रखकर दूसरा पांव ऊपर उठाता है, उसी प्रकार प्राण ऊपर उठते समय अपना एक पांव हृदयके रक्ताशयमें जमाकर रखता है और दूसरे पांवकोही बाहिर उठाता है, कभी दूसरे पांवको हिलाता नहीं। तात्पर्य प्राण अपनी एक शक्तिको शरीरमें स्थिर रखता हुआ दूसरी शक्तिसे बाहिर आकर कार्य करता है। इसलिये मनुष्य मरता नहीं। यदि यह अपने दूसरे पांवकोभी बाहिर निकालेगा तो आज काल, दिन रात, प्रकाश अंधेरा आदि कुछभी नहीं होगा अर्थात् कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकेगा। जीवनके पश्चात् ही काल का ज्ञान होता है। इस प्रकारका यह प्राणका संबंध है। प्रत्येक मनुष्यको उत्तम विचार करके इस संबंधका ज्ञान ठीक प्रकारसे प्राप्त करना चाहिए। 'हंस' शब्दके साथ प्राणकी उपासना का प्रकार भी इस मंत्रसे व्यक्त होता है। श्वासके साथ 'स' कारका श्रवण और उच्छ्वासके साथ 'हं'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारका श्रवण करनेसे प्राण उपासना होती है। इससे चित्तकी एकाग्रता शीघ्रही साध्य होती है। यही "सो" अक्षरका श्रवण श्वासके साथ और "हं" का श्रवण उच्छ्वासके साथ करनेसे हंसकाही जप बन जाता है। यह प्राण उपासनाका प्रकार है। सांप्रदायिक लोगोंने इनपर विलक्षण और विभिन्न कल्पनाएं रची हैं, परंतु मूलकी ओर ध्यान देकर झगडोंसे दूर रहनाही हमको उचित है। अब इसका और वर्णन देखिये—

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो निपश्चा॥
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥२२॥

"आठ चक्रोंसे युक्त, सहस्र अक्षरोंसे व्यक्त और एकही केंद्र जिसका है ऐसा यह प्राणचक्र आगे और पीछे चलता है। आधे भागसे सब भुवनोंको उत्पन्न करके जो इसका आधा भाग शेष रहा है वह किसका चिह्न है?"

इस शरीरमें आठ चक्र हैं जिनमें प्राण जाता है और विलक्षण कार्य करता है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार ये आठ चक्र हैं। क्रमशः गुदासे लेकर सिरके ऊपरले भागतक आठ स्थानोंमें ये आठ चक्र हैं। पीठके मेरुदंडमें इनकी स्थिति है। इस प्रत्येक चक्रमें प्राण जाता है और अपने अपने नियत कार्य करता है। जो सज्जन प्राणायामका अभ्यास करते हैं, उनको अपना प्राण इस चक्रमें पहुंचा है इस बातका अनुभव होता है, और वहांकी स्थितिका भी पता लगता है। ऊपर मस्तिष्कमें सहस्राक्षर चक्रका स्थान है। यही मस्तिष्कका मध्य और मुख्य भाग है। प्राणका एक केंद्र हृदयमें है। इस प्रकार एक केंद्रके साथ आठ चक्रोंमें सहस्र आरोंके द्वारा आगे और पीछे चलनेवाला यह प्राणचक्र है। श्वास उच्छ्वास तथा प्राण अपान द्वारा प्राणचक्रकी आगे और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पीछे गति है। पाठकों को उचित है कि वे इन बातोंको जानने और अनुभव करनेका यत्न करें। प्राणका एक भाग शरीरकी शक्तियोंके साथ संबंध रखता है और दूसरा भाग आत्माकी शक्तिके साथ संबंध रखता है। शारीरिक शक्तिके साथ संबंध रखनेवाले प्राणके भागका ज्ञान प्राप्त करना बडा सुगम है, परंतु आत्मिक शक्ति के साथ संबंध रखनेवाले प्राणके भागका ज्ञान प्राप्त करना बडा कठिन है। अर्धे भागके साथ सब भुवनको बनाता है, जो इसका दूसरा अर्ध है वह किसका चिह्न है अर्थात् उसका ज्ञान किससे हो सकता है? आत्माके ज्ञानके साथ ही उसका ज्ञान हो सकता है।

नमन और पार्थना।

यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः ॥
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥२३॥
यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ॥
अतंद्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो माऽनु तिष्ठतु॥२४॥

"हे प्राण! (विश्व-जन्मनः) सब को जन्म देनेवाले और इस सब (चेष्टतः) हलचल करनेवाले जगत् का जो ईश है, सब अन्योंमें (क्षिप्र-धन्वने) शीघ्र गतिवाले तेरे लिये नमन है। सब जन्म धारण करनेवाले और हलचल करनेवाले सब का जो स्वामी है, वह धैर्यमय प्राण आलस्यरहित होकर (ब्रह्मणा) आत्मशक्तिसे युक्त होता हुआ (मा) मेरे पास (अनुतिष्ठतु) सदा रहे।"

प्राण सबकाही ईश है, इस विषयमें पहिले ही मंत्रमें कहा है। सबमें गतिमान् और सबमें मुख्य यह प्राण है। ब्रह्म अर्थात् आत्मशक्तिके साथ रहनेवाला यह प्राण आलस्यरहित होकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और धैर्यके साथ कार्य करनेमें समर्थ बनकर मेरे शरीरमें अनुकूलताके साथ रहे। यह इच्छा उपासकको मनमें धारण करना चाहिए। अन्य इंद्रियोंमें आलस्य होता है, प्राणमें आलस्य कभी नहीं होता; इस लिये प्राणका विशेषण 'अ-तंद्र' अर्थात् आलस्यरहित ऐसा रखा है। यही भाव निम्न मंत्रमें कहा है।

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते॥
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन॥ २५॥

"(सुप्तेषु) सब सो जानेपरभी यह प्राण (ऊर्ध्वः) खडा रहकर जागता है। कभी तिरछा गिरता नहीं। सबके सो जानेपर इसका सोना किसीने भी सुना नहीं है।"

सब इंद्रियां आराम लेतीं हैं, आलसी बनतीं हैं, सो जातीं हैं और नीचे गिर जातीं हैं; परंतु प्राणही रातदिन खडा रहकर जागता है, अथवा मानो इस मंदिरका संरक्षण करनेके लिये खडा रहकर पहारा करता है। कभी सोता नहीं, कभी आराम नहीं करता और अपने कार्यसे कभी पीछे नहीं हटता। सब इंद्रियां सोतीं हैं परंतु इस प्राणका सोना कभी किसीने सुना ही नहीं। अर्थात् विश्राम न लेता हुआ यह प्राण रातदिन शरीरमें कार्य करता है।

इसी लिये प्राण उपासना निरंतर हो सकती है। देखिए, किसी आलंबनपर दृष्टि रखकर ध्यान करना हो तो दृष्टि थक जाती है। दृष्टि थकनेपर उसकी उपासना नेत्रों द्वारा नहीं हो सकती। इसी प्रकार अन्य इंद्रियां थकतीं हैं और विश्राम चाहतीं हैं, इसलिये अन्य इंद्रियों के साथ उपासना निरंतर नहीं हो सकती। परंतु यह प्राण कभी थकता नहीं और कभी विश्राम नहीं चाहता। इसलिये इसके साथ जो प्राण उपासना की जाती है वह निरंतर हो सकती है। विना रुकावट प्राणो-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पासना हो सकती है, इसलिये इसका अत्यंत महत्त्व है। तथा और देखिए—

> प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
> अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥२६

"हे प्राण! मेरेसे पृथक् न होओ। मेरेसे दूर न होओ। पानीके गर्भके समान, हे प्राण! जीवनके लिये मेरे अंदर तुझ को बांधता हूं।"

"हे प्राण! मेरेसे दूर न हो जाओ, दीर्घ कालतक मेरे अंदर रहो; मैं दीर्घ जीवन व्यतीत करूंगा, मैं दीर्घ आयुष्यसे युक्त होकर सौ वर्षसेभी अधिक जीवन व्यतीत करूंगा। इस लिये मेरेसे पृथक् न होओ!" यह भावना उपासकको मनमें धारण करना चाहिए। अन्नमय मन है और आपोमय प्राण है, इस लिये प्राणको पानीका गर्भ कहा है। उपासकके मनमें यह भावना स्थिर रहनी चाहिए, कि मैंने प्राणायामादि द्वारा अपने शरीरमें प्राणको बांधकर रख दिया है। इसलिये यह प्राण कभी वियुक्त होकर दूर नहीं होगा। प्राणायामादि साधनोंपर दृढ विश्वास रखकर, उन साधनोंके द्वारा मेरे शरीरमें प्राण स्थिर हुआ है, ऐसा दृढ भाव चाहिए और कभी अकालमृत्युका विचारतक मनमें नहीं आना चाहिए। आत्मापर विश्वास रखनेसे उक्त भावना दृढ हो जाती है। इस प्राणसूक्तमें निम्न भाव हैं—

प्राणसूक्तका सारांश।

(१) प्राणके आधीन ही सब कुछ है, प्राणही सबका मुखिया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२) प्राण पृथ्वीपर है, अंतरिक्षमें है और द्युलोकमें है।

(३) द्युलोकका प्राण सूर्यकिरणों द्वारा पृथ्वीपर आता है, अंतरिक्षका प्राण वृष्टिद्वारा पृथ्वीपर पहुंचता है, और पृथ्वीपर का प्राण यहां सदाही वायुरूपसे रहता है।

(४) अंतरिक्षस्थ और द्युलोकस्थ प्राणसे ही सबका जीवन है। इस प्राणकी प्राप्तिसे सबको आनंद होता है।

(५) एक ही प्राण व्यक्तिके शरीरमें प्राण, अपान आदि रूपमें परिणत होता है। शरीरके अंग, अवयव और इंद्रियोंमें अर्थात् सर्वत्र प्राण ही कार्य करता है।

(६) प्राणही सब औषधियोंकी औषधि है। प्राणके कारण ही सब शरीरके दोष दूर होते हैं। प्राणकी अनुकूलता न होनेपर कोई औषध कार्य नहीं कर सकता, और प्राणकी अनुकूलता होनेपर विना औषध आरोग्य रह सकता है।

(७) प्राण ही दीर्घ आयु देनेवाला है।

(८) प्राण ही सबका पिता और पालक है और सर्वत्र व्यापक भी है।

(९) मृत्यु, रोग और बल ये सब प्राणके कारण ही होते हैं। सब इंद्रिय प्राणके साथ रहनेपर बल प्राप्त करते हैं। श्रेष्ठ पुरुष प्राणको वशमें करके बल प्राप्त कर सकते हैं। सत्यनिष्ठ पुरुष प्राणकी प्रसन्नतासे उत्तम योग्यता प्राप्त करते हैं।

(१०) प्राणके साथ ही सब देवताएं हैं। सबको प्रेरणा करनेवाला प्राण ही है।

(११) धान्यमें प्राण रहता है। वह भोजनके द्वारा शरीरमें जाकर शरीरका बल बढाता है।

(१२) गर्भमें भी प्राण कार्य करता है। प्राणकी प्रेरणासे ही गर्भ बाहिर आता है और बढता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१३) प्राणके द्वारा ही पिताके सब गुण कर्म स्वभाव और शक्तियां पुत्रमें आतीं हैं ।

(१४) प्राण ही हंस है और यह हृदयके मानस सरोवरमें क्रीडा करता है। जब यह चले जाता है, तब कुछ भी ज्ञान नहीं होता ।

(१५) शरीरके आठ चक्रोंमें, मस्तिष्कमें तथा हृदयके केंद्रमें भिन्न रूपसे प्राण रहता है। यह स्थूल शक्तिसे सब शरीरका धारण करता है और सूक्ष्म शक्तिसे आत्माके साथ गुप्त संबंध रखता है।

(१६) प्राणमें आलस्य और थकावट नहीं होती है। भीति और संकोच नहीं होता। क्योंकि इसका ब्रह्म अथवा आत्माके साथ संबंध है।

(१७) यह शरीरमें रहता हुआ खडा पहारा करता है। अन्य इंद्रिय थकते, दमते और सोते हैं; परंतु यह कभी थकता नहीं और कभी विश्राम नहीं लेता । इसका विश्राम होनेपर मृत्यु ही होता है।

(१८) इसलिये सबको प्राणकी स्वाधीनता प्राप्त करना चाहिए और उसकी शक्तिसे बलवान् होना चाहिए ।

इस प्रकार इस सूक्तका भाव देखनेके पश्चात् वेदोंमें अन्यत्र प्राणविषयक जो जो उपदेश हैं उनका विचार करते हैं।

ऋग्वेदमें प्राणविषयक उपदेश ।

ऋग्वेदमें प्राणविषयक निम्न मंत्र हैं, उनको देखनेसे ऋग्वेदका इस विषयमें उपदेश ज्ञात हो सकता है। —

प्राणाद्वायुरजायत ॥ ऋ० १०-९०-१३; अ० १९-६-१७

" परमेश्वरीय प्राणशक्तिसे इस वायुकी उत्पत्ति होगई है। "

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह वायु हमारा पृथ्वीस्थानीय प्राण है। वायुके विना क्षणमात्र भी जीवन रहना कठिन है। सबही प्राणी इस वायुको चाहते हैं। परंतु कोई यह न समझे कि यह वायुही वास्तविक प्राण है, क्यों कि परमेश्वरकी प्राणशक्तिसे इसकी उत्पत्ति है। यह वायु हमारे फेफडोंके अंदर जब जाता है, तब उसके साथ परमेश्वर-की प्राणशक्ति हमारे अंदर जाती है, और उससे हमारा जीवन होता है। यह भाव है कि जो प्राणायामके समय मनमें धारण करना चाहिए। प्राणही आयु है, इस विषयमें निम्न मंत्र देखिए-

आयुर्न प्राणः ॥ (ऋ. १।६६।१)

" प्राणही आयु है । " जबतक प्राण रहता है, तब तक ही जीवन रहता है। इसलिये जो दीर्घ आयु चाहते हैं उनको उचित है, कि वे अपने प्राणको तथा प्राणके स्थानको बलवान् बनावें। प्राणका स्थान फेफडोंमें बलवान् करनेसे प्राणमें बल आजाता है और उसके द्वारा दीर्घ आयु प्राप्त हो सकती है।

असु-नीति ।

राजनीति, समाजनीति, गृहनीति इन शब्दोंके समान "असु-नीति" शब्द है। राज्य चलानेका प्रकार राजनीतिसे व्यक्त होता है, इसी प्रकार "असु" अर्थात् प्राणोंका व्यवहार करनेकी रीति "असुनीति" शब्दसे व्यक्त होती है। Guide to life, way to life अर्थात् "जीवनका मार्ग" इस भावको "असु-नीति" शब्द व्यक्त कर रहा है, ऐसा प्रो॰मोक्षमुल्लर, प्रो. रॉथ आदिका कथन सत्य है। देखिए—

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो
धेहि भोगं ॥ ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरंतमनुमते
मृळया न स्वस्ति ॥ ऋ॰ १०।५९।६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हे असुनीते ! यहां हमारे अंदर पुनः चक्षु, प्राण और भोग धारण करो। सूर्यका उदय हम बहुत देर तक देख सकें। हे अनुमते ! हम सबको स्वास्थ्यसे युक्त रखो।"

"असुकी नीति" अर्थात् "प्राण धारण करनेकी रीति" जब ज्ञात होती है, तब चक्षकी शक्ति हीन होनेपर भी पुनः उत्तम दृष्टि प्राप्त की जा सकती है; प्राण जानेकी संभावना होनेपर भी पुनः प्राणकी स्थिरता की जा सकती है, भोग भोगनेकी अशक्यता होनेपरभी भोग भोगनेकी शक्यता हो सकती है। मृत्यु पास आनेके कारण सूर्य-दर्शन अशक्य होनेपर भी दीर्घ आयुष्यकी प्राप्ति होनेके पश्चात् पुनः सूर्यकी उपासना हो सकती है। प्राण-नीतिके अनुकूल मति रखनेसे यह सब कुछ हो सकता है, इसमें कोई संदेह ही नहीं। तथा—

असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे सुप्र तिरानु
आयुः॥ रारंधि नः सूर्यस्य संदृशि घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व॥
(ऋ. १०।५९।५)

"हे असुनीते ! हमारे अंदर मनकी धारणा करो और हमारी आयु बडी दीर्घ करो। सूर्यका दर्शन हम करें। तू घीसे शरीर बढाओ।"

आयुष्य बढानेकी रीति इस मंत्रमें वर्णन की है। पहिली बात मनकी धारणाकी है। मनकी धारणा ऐसी दृढ और पक्की करनी चाहिए कि, मैं योग-साधनादि द्वारा अवश्यही दीर्घ आयु प्राप्त करूंगा, तथा किसी कारण भी मेरी आयु क्षीण नहीं होगी। इस प्रकार मनकी पक्की धारणा करनी चाहिए। मनकी दृढ शक्तिपर ही और मनके दृढ विश्वास परही सिद्धि अवलंबित होती है। सूर्यप्रकाशका दीर्घ आयुके साथ संबंध वेदमें सुप्रसिद्ध ही है। प्राणायाम आदि द्वारा जो मनुष्य प्राणका बल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बढाना चाहते हैं, उनको घी बहुत खाकर अपना शरीर पुष्ट रखना चाहिए। प्राणायाम बहुत करनेपर घी न खानेसे शरीर कृश होता है। इसलिये प्राणायाम करनेवालोंको उचित है कि वे अपने भोजनमें घी अधिक सेवन करें।

इस प्रकार यह प्राणनीतिका शास्त्र है। पाठक इन मंत्रोंका विचार करके दीर्घ आयु प्राप्त करनेके उपायोंका साधन प्राणायामादि द्वारा करें।

यजुर्वेदमें प्राणविषयक उपदेश।

प्राणकी वृद्धि।

प्राणस्त आप्यायताम् ॥ (यजु० ६।१५)

"तेरा प्राण संवर्धित करो।" प्राणकी शक्ति बढानेकी बडी ही आवश्यकता है, क्योंकि प्राणकी शक्तिके साथही सब अवयवोंकी शक्ति संबंध रखती है। इसकी सूचना निम्न मंत्र दे रहा है—

ऐंद्रः प्राणो अंगे अंगे निदिध्यदैंद्र उदानो अंगे अंगे निधीतः ॥
(यजु० ६।२०)

"(ऐंद्रः प्राणः) आत्माकी शक्तिसे प्रेरित प्राण प्रत्येक अंगमें पहुंचा है, आत्माकी शक्तिसे प्रेरित उदान प्रत्येक अंगमें रखा है।" इस प्रकार आंतरिक शक्तिका वर्णन वेदने किया है। प्रत्येक अंगमें प्राण रहता है परंतु वहां आत्माकी प्रेरणासे कार्य करता है। इस मंत्रसे यह सूचना मिलती है, कि जिस अंग, अवयव अथवा इंद्रियमें प्राणकी शक्ति न्यून होगी, वहां आत्माकी प्रबल इच्छाशक्ति द्वारा प्राणकी शक्ति बढाई जा सकती है। यही पूर्व सूक्तोक्त "आंगि-रस-विद्या" है। अपने किस अंगमें प्राणकी न्यूनता है, इसको जानना और वहां अपनी आत्मिक इच्छाशक्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वारा प्राणको पहुंचाना चाहिए । यही अपना आरोग्य बढानेका उपाय है । वेदमें जो "आंगिरस-विद्या" है, वह यही है। प्राणका रक्षण करनेके विषयमें निम्न मंत्र देखिए—

प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि ॥ (यजु० १४।८;१७)

"मेरे प्राण, अपान, व्यान का संरक्षण करो ।" इनका संरक्षण करनेसे ही ये प्राण सब शरीरका संरक्षण कर सकते हैं । तथा-

प्राणं ते शुंधामि ॥ (यजु० ६।१४)

प्राणं मे तर्पयत (यजु० ६।३१)

" प्राणकी पवित्रता करता हूं । प्राणकी तृप्ति कीजिए।" तृप्ति और पवित्रतासे ही प्राणका संरक्षण होता है ।

अतृप्त इंद्रिय होनेसे मनुष्य भोगोंकी ओर जाता है,और पतित होता है । इस प्रकार भोगोंमें फंसे हुए मनुष्य अपनी प्राणकी शक्ति व्यर्थ खो बैठते हैं । इसलिये प्राणका संवर्धन करनेवाले मनुष्योंको उचित है कि वे अपना जीवन पवित्रतासे और नित्य-तृप्त वृत्तिसे व्यतीत करें। अपवित्रता और असंतुष्टता ये दो दोष प्राणकी शक्ति घटानेवाले हैं । शक्ति घटानेवाला कोई कार्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि—

प्राणं न वीर्यं नसि । (यजु० २२।४९)

" नाकमें प्राणशक्ति और वीर्य बढाओ । " प्राणशक्ति नासिका के साथ संबंध रखती है, और जब यह प्राणशक्ति बलवान् होती है,तब वीर्य भी बढता है और स्थिर होता है। वीर्य और प्राण ये दोनों शक्तियां साथ साथ रहती हैं । शरीरमें वीर्य रहनेसे प्राण रहता है, और प्राणके साथ वीर्य भी रहता है । एक दूसरेके आश्रयसे रहनेवाली ये शक्तियां हैं । जो मनुष्य ब्रह्मचर्यकी रक्षा करके ऊर्ध्वरेता बनते हैं, उनका प्राण भी बलवान् हो जाता है, और उनको आसानीसे प्राणायामकी सिद्धि होती है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा जो प्रारंभसे प्राणायामका अभ्यास नियमपूर्वक करते हैं, उनका वीर्य स्थिर हो जाता है । यद्यपि किसीका किसी कारण-वश प्रथम आयुमें ब्रह्मचर्य न रहा हो, तो भी वह नियमपूर्वक अनुष्ठानसे उत्तर आयुमें प्राणसाधनसे अपने शरीरमें प्राणशक्ति का संवर्धन और वीर्यरक्षण कर सकता है। जिसका ब्रह्मचर्य आदि प्रारंभसेही सिद्ध होता है, उसको शीघ्र और सहज सिद्धि होती है; परंतु जिसको प्रारंभ से सिद्ध नहीं होता, उसको वह बात प्रयत्न से सिद्ध होती है । प्राणशक्तिके संवर्धनके उपायोंमें गायन भी एक उपाय है—

गायन और प्राणशक्ति ।

साम प्राणं प्रपद्ये । य. ३६।१

'प्राणको लेकर सामकी शरण लेता हूं ।' सामवेद गायन और उपासनाका वेद है । ईश उपासना और ईशगुणोंके गायन से प्राणका बल बढता है । केवल गानविद्यासे भी मनकी एका-ग्रता और शांति प्राप्त होती है । इसलिये गायनसे दीर्घ आयु और आरोग्य प्राप्त हो सकता है । गायक लोक यदि दुर्व्यसनोंमें न फसेंगे तो वे अन्योंकी अपेक्षा अधिक दीर्घ आयु और आरो-ग्य प्राप्त कर सकते हैं । गायनका आरोग्यके साथ अत्यंत संबंध है । उपासनाके साथ भी गायनका अत्यंत संबंध है । मन गायन से उपासनामें अत्यंत तल्लीन होता है और यही तल्लीनता प्राण-शक्तिको प्रबल करनेवाली है । यह बात और है कि गायनका धंदा करनेवाले आजकलके स्त्रीपुरुषोंने अपने आचरण बहुतही गिरा दिये हैं । परंतु यह दोष गायनका नहीं है, वह उन मनुष्यों का दोष है । तात्पर्य यह है कि जो पाठक अपने प्राणको बल-वान् करना चाहते हैं, वे सामगान अवश्य सीखें, अथवा साधा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रण गायन सीखकर उसका उपासनामें उपयोग करके मनकी तल्लीनता प्राप्त करें।

मयि प्राणापानौ। य० ३६।१

'मेरे अंदर प्राण और अपान बलवान रहें।' यह इच्छा हर एक मनुष्य स्वभावतः धारण करता ही है। परंतु कभी कभी व्यवहार उस इच्छासे विरुद्ध करता है। जब इच्छाके अनुसार व्यवहार हो जायगा, तब सिद्धिमें किसी प्रकारका विघ्न हो नहीं सकता। प्रस्तुत प्राणका प्रकरण चला है, इसका संबंध बाहिरके शुद्ध वायुके साथ है, और अंदरका संबंध नासिका आदि स्थानके साथ है इसलिये कहा है—

वातं प्राणेन अपानेन नासिके॥ य० २५।२

"प्राणसे वायुकी प्रसन्नता और अपानसे नासिकाकी पूर्तता करना चाहिए।" वाह्य शुद्ध और प्रसन्न वायुके साथ प्राण हमारे शरीरोंमें जाता है, और नासिका ही उसका प्रवेश द्वार है। वाह्य वायुकी प्रसन्नता और नासिकाकी शुद्धि अवश्य करना चाहिए। नाककी मलिनता और अपवित्रताके कारण प्राणकी गतिमें रुकावट होती है। प्राणकी प्रतिष्ठाके लिये ही हमारे सब प्रयत्न होने चाहिए, इसकी सूचना निम्न मंत्रोंसे मिलती है—

प्राणकी प्रतिष्ठा।

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय॥

य० १३।१९; १४।१२; १५।६४

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ॥

य० १३।२४; १४।१४; १५।५८

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा॥

य० २२।२३; २३।१८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" प्राण, अपान, व्यान, उदान आदि सब प्राणोंकी प्रतिष्ठा और उनका व्यवहार उत्तम रीतिसे होना चाहिए। सब प्राणोंको तेजस्वी करो। सब प्राणोंके लिये त्याग करो। "

प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह देखे कि, अपने आचरणसे अपने प्राणोंका बल बढ रहा है या घट रहा है, अपने प्राणोंकी प्रतिष्ठा बढ रही है या घट रही है; अपने प्राणोंके सबही व्यवहार उत्तम चल रहे हैं अथवा किसीमें कोई त्रुटी है; अपने प्राणोंका तेज बढ रहा है या घट रहा है। इसका विचार करना हरएकका कर्तव्य है। क्योंकि इनका विचार करनेसे ही हरएक जान सकता है कि मैं प्राणविषयक अपना कर्तव्य ठीक प्रकार कर रहा हूं या नहीं। प्राणविषयक कर्तव्यका स्वरूप " स्वाहा " शब्द द्वारा व्यक्त हो रहा है। सब अन्य इंद्रिय गौण हैं और प्राण मुख्य है इस लिये अन्य इंद्रियोंके भोगोंका स्वाहाकार संवर्धनके लिये होना चाहिए। अर्थात् इंद्रियोंके भोग भोगनेके लिये जो शक्ति खर्च हो रही है, उसका बहुतसा हिस्सा प्राणकी शक्ति बढानेके लिये खर्च होना चाहिए। मनुष्योंके सामान्य व्यवहारमें देखा जायगा तो प्रतीत होगा कि इंद्रियभोग भोगनेमें यदि शक्तिके १००मेंसे ९९ भागका खर्च हो रहा है तो प्राण संवर्धनमें एक भाग भी खर्च नहीं होता है। मुख्य प्राणके लिये कुछभी शक्ति नहीं खर्च होती परंतु गौण इंद्रियभोगके लिये ही सब शक्तिका व्यय हो रहा है !! क्या यह आश्चर्य नहीं है? वास्तवमें मुख्यके लिये अधिक और गौणके लिये कम व्यय होना चाहीए यही वेदमे कहा है, कि प्राणसंवर्धनके लिये अपनी शक्तिका स्वाहा करो। अपना समय, अपना प्रयत्न, अपना बल और अपने अन्य साधन प्राणसंवर्धनके लिये कितने खर्च किये जाते हैं और भोगोंके लिये कितने खर्च किये जाते हैं, इसका विचार कीजिए। मनुष्योंका उलटा व्यवहार हो रहा है, इसलिये इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयमें सावधानता रखना चाहिए। प्रतिदिनका ऐसा विभाग करना चाहिये कि जिसमें बहुतसा हिस्सा प्राणवर्धनके कार्यके लिये समर्पित हो सके। देखिए—

राजा मे प्राणः ॥ य. २०।२

" मेरा प्राण राजा है " सब शरीरका विचार कीजिए तो आपको पता लग जायगा कि सबका राजा प्राण ही है। आप समझ लीजिए कि अपना प्राण यह सचमुच राजा है। जब आपके घरमें राजा ही अतिथी आता है, उस समय आप राजाका ही अदरातिथ्य करते हैं, और उनके नौकरोंके तरफ ध्यान अवश्य देते हैं, परंतु जितना राजाकी ओर ध्यान दिया जाता है उतना अन्योंके विषयमें नहीं दिया जाता। यही न्याय यहां है। इस शरीरमें प्राण नामक राजा अतिथी आया है और उसके अनुचर अन्य इंद्रियगण हैं। इसलिये प्राणकी सेवा शुश्रूषा अधिक करना चाहिए, क्योंकि वह ठीक रहा, तो अन्य अनुचर ठीक रह सकते हैं। परंतु यदि राजा असंतुष्ट होकर चले गया तो एकभी अनुचर आपकी सहायता नहीं कर सकेगा।

आजकल इंद्रियोंके भोग बढानेमें सब लोक लगे हैं। प्राणकी शक्ति बढानेका कोई ख्याल नहीं करता ! !! इसलिये प्राण अप्रसन्न होकर शीघ्रही इस शरीरको छोड देता है। जब प्राण छोडने लगता है, तब अन्य इंद्रियशक्तियां भी उसके साथ इस शरीरको छोड देती हैं। यही अल्पायुताका कारण है। परंतु इसका विचार बहुतही थोडे लोग प्रारंभसे करते हैं। तात्पर्य इंद्रिय भोग भोगनेके लिये शक्ति कम खर्च करनी चाहिए, इसका संयमही करना चाहिए; और जो बल होगा उसको अर्पण करके प्राणकी शक्ति बढानेमें पराकाष्ठा करनी चाहिए। अपने प्राणको बुरे कार्योंमें समर्पित करने से बडी ही हानी होती है। कितने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दुर्व्यसन और कितने कुकर्म हैं कि जिनमें लोक अपने प्राण अर्पण करनेके लिये आनंदसे प्रवृत्त होते हैं!! वास्तवमें सत्कर्मके साथही अपने प्राणोंको जोडना चाहिए। देखिए वेद कहता है—

सत्कर्म और प्राण।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां ॥
य० ९।२१; १८।२९; १२।३३

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मे असुश्च मे .. ...
... यज्ञेन कल्पंताम् ॥ य० १८।२
प्राणश्च मे यज्ञेन कल्पताम् ॥ य० १८।२२

"मेरी आयु यज्ञसे बढे, मेरा प्राण यज्ञसे समर्थ हो। मेरा प्राण, अपान, व्यान और साधारण प्राण यज्ञद्वारा बलवान बने। मेरा प्राण यज्ञके लिये समर्पित हो।"

यज्ञका अर्थ सत्कर्म है। जिस कर्मके साथ बडोंका सत्कार होता है, सबमें विरोध हटकर एकताकी वृद्धि होती है और परस्पर उपकार होता है वह यज्ञ हुआ करता है। यज्ञ अनेक प्रकारके हैं, परंतु सूत्र रूपसे सब यज्ञोंका तत्व उक्त प्रकारकाही है। इसलिये यज्ञके साथ प्राणका संबंध आनेसे प्राणमें बल बढने लगता है। स्वार्थ तथा खुदगर्जीके कर्मोंमें लगे रहनेसे प्राण-शक्तिका संकोच होता है, और जनताके हितके व्यापक कर्म करनेमें प्रवृत्त होनेसे प्राणकी शक्ति विकसित होती है। आशा है कि पाठक इस प्रकारके शुभ कर्मोंमें अपने आपको समर्पित करके अपने प्राणको विशाल करेंगे। वेदमें अग्नि आदि देवता-ओंका जहां वर्णन आया है वहां उनका प्राणरक्षक गुण भी वर्णन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किया है । क्यों कि जो देवता प्राणरक्षक होगी उसकी ही उपासना करनी चाहिए । देखिए—

प्राणदाता अग्नि ।

प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः ॥

य० १७।१५

प्राणपा मे अपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे ॥
वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः ॥

य० २०।३४

" तू प्राण, अपान, व्यान, तेज और स्वातंत्र्य देनेवाला है । तू मेरे प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र आदिका संरक्षक है, मेरे वाणी के दोष दूर करनेवाला तथा मनको शुद्ध और पवित्र करनेवाला है । "

प्राणका सत्कर्ममें प्रदान करना, प्राणका संरक्षण करना, इंद्रियोंका संयम करना, वाचाके दोष दूर करने और मनकी पवित्रता करना, यह कार्य सूक्ष्मरूपसे उक्त मंत्रमें कहा है । इतना करनेसे ही मनुष्यका बेडा पार हो सकता है । मन और वाणी की शुद्धता न होनेसे जगत्‌में कितने अनर्थ हो रहे हैं, इनकी कोई गिनती नहीं हो सकती । मन, वाणी, इंद्रियां और प्राण इन की स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिये ही सब धर्म और कर्म होते हैं । इसलिये अपनी उन्नति चाहनेवालोंको इस कर्तव्यकी ओर अपना ख्याल सदा रखना चाहिए । अब प्राणकी विभूति बतानेवाला अगला मंत्र है, देखिए—

अयं पुरो भुवः । तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनः ॥

य० १३।५४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" यह आगे भुवर्लोक है, उसमें रहता है इसलिये प्राणको भौवायन कहते हैं । वसन्त प्राणायन है । "

भूलोक पृथ्वी है, और अंतरिक्ष लोक भुवर्लोक है । यह प्राण का स्थान है, इस आकाशमें प्राण व्यापक है, वायुका और प्राण का एकही स्थान है । अंतरिक्षमें ही दोनों रहते हैं । वसंत प्राण का ऋतु है । क्यों कि इस ऋतुमें सब जगतमें प्राणशक्तिका संचार होकर सब वृक्षोंको नवजीवन प्राप्त होता है । यह प्राणका अवतार हरएकको देखना चाहिए । प्राणके संचारसे जगतमें कितना परिवर्तन होता है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव यहां दिखाई देता है । इस ऋतुमें सब वृक्ष आदि नूतन पल्लवोंसे सुशोभित होते हैं, फलोंसे युक्त होनेके कारण पूर्णताको प्राप्त होते हैं । फल फूल और पल्लव ही सब सृष्टीके नवजीवनकी साक्षी देते हैं । इसीप्रकार जिनको प्राण प्रसन्न होता है उनको भी स-फल-ता प्राप्त होती है । जिसप्रकार सब सृष्टि प्राणकी प्रसन्नतासे पुष्पवती और फलवती होती है, उसी प्रकार मनुष्य भी प्राणको वश करनेसे अपने अभीष्टमें सफलता प्राप्त कर सकता है ।

प्राणके साथ इंद्रियोंका विकास ।

सोनेके समय अपने इंद्रिय कैसे लीन होते हैं और फिर जागृतिके समय कैसे व्यक्त होते हैं, इसका विचार प्रत्येकको करना चाहिए । इससे अपने आत्मा और प्राणशक्तिके महत्वका पता लगता है । इसका प्रकार देखिए—

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन्पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन् ।
पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन् वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा
अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥ य० ४।१५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"मेरा मन, आयुष्य, प्राण, आत्मा, चक्षु, श्रोत्र आदि पुनः मुझे प्राप्त हुए हैं। शरीरका रक्षक, सब जनोंका हितकारी आत्मा पापोंसे हम सबको बचावे।"

सोनेके समय मन आदि सब इंद्रियां लीन हो गई थीं, यद्यपि प्राण जागता था तथापि उसके कार्यका भी पता हमको नहीं था। वह सब कलके समान आज पुनः प्राप्त हुआ है। यह आत्माकी शक्तिका कितना आश्चर्यकारक प्रभाव है ? वह आत्मशक्ति हमको पापोंसे बचावे। प्राणशक्तिके साथ इन शक्तियोंका लीन होना और पुनः प्राप्त होना, प्रतिदिन हो रहा है। इसका विचार करनेसे पुनर्जन्मका ज्ञान होता है। क्यों कि जो बात निद्राके समय होती है वह ही वैसीही मृत्युके समय होती है। और उसीप्रकार महाप्रलयके समयमें भी होती है। नियम सर्वत्र एकही है। प्राणके साथ अन्य इंद्रियां कैसीं रहतीं हैं, प्राण कैसा जागता है और अन्य इंद्रियां कैसीं थक कर लीन होतीं हैं, इसका विचार करनेसे अपनी आत्मशक्तिका ज्ञान होता है, और वह ज्ञान अपनी शक्तिका विकास करनेके लिये सहायक होता है। अपने प्राणका विश्वव्यापक प्राणके साथ संबंध देखना चाहिए, इसकी सूचना निम्न मंत्र देते हैं—

विश्वव्यापक प्राण।

सं प्राणः प्राणेन गच्छताम् य० ६।१८
सं ते प्राणो वातेन गच्छताम्॥ य० ६।१०

"अपना प्राण विश्वव्यापक प्राणके साथ संगत हो। तेरा प्राण वायुके साथ संगत हो।" तात्पर्य अपना प्राण अलग नहीं है, वह सार्वभौमिक प्राणका एक हिस्सा है। इस दृष्टिसे अपने प्राणको जानना चाहिए। सब अंतरिक्षमें प्राणका समुद्र भरा है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसमेंसे थोडासा प्राण मेरे अंदर आकर मेरे शरीरको जीवन दे रहा है, श्वास प्रश्वास द्वारा वह ही सार्वभौमिक प्राण अंदर जा रहा है, इत्यादि भावना मनमें धारण करना चाहिए। तात्पर्य यह सार्वभौमिक दृष्टि सदा धारण करनी चाहिए। सबकी उन्नतिमें एककी उन्नति है, समष्टिकी उन्नतिमें व्यष्टिकी भलाई है यह वैदिक सिद्धांत है। इसलिये समष्टिकी व्यापक दृष्टि प्रत्येक उपासकके अंदर उत्पन्न होनी चाहिए। वह उक्त प्रकार से हो सकती है। इस प्राणकी और बातें निम्न मंत्रमें देखिए-

लडनेवाला प्राण ।

अविर्न मेषो नसि वीर्याय, प्राणस्य पंथा अमृतो ग्रहाभ्याम् ॥
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥

य० १९।९०

"(मेषः न) मेंढेके समान लडनेवाला (अविः) संरक्षक प्राणवायु वीर्यके लिये (नसि) नाकमें रखा है। (ग्रहाभ्यां) श्वास उच्छ्वास रूप दोनों प्राणोंसे प्राणका अमृतमय मार्ग बना है। (बदरैः उपवाकैः) स्थिर स्तुतियोंके द्वारा (सरस्वती) सुषुम्ना नाडी (व्यानं) सर्व शरीर व्यापक व्यान प्राणको तथा (नस्यानि) नासिकाके साथ संबंध रखनेवाले अन्य प्राणोंको (बर्हिः जजान) प्रकट करती है।"

स्पर्धा करनेवाला, शत्रुके साथ युद्ध करके उसका पराजय करनेवाला मेंढा होता है। यही प्राणका कार्य अपने शरीरमें है। सब व्याधियों और शरीरके सब शत्रुओंके साथ लडकर शरीरका आरोग्य नित्य स्थिर रखनेका बडा कार्य करनेवाला महावीर अपने शरीरमें मुख्य प्राण ही है। यह मेंढेके समान लढता है। इसका नाम "अविः" है क्यों कि यह अवन अर्थात् सब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शरीरका संरक्षण करता है। अवनके अन्य अर्थ भी यहां देखने योग्य हैं-रक्षण, गति, कांति, प्रीति, तृप्ति, ज्ञान, प्रवेश, श्रवण, स्वामित्व, प्रार्थना, कर्म, इच्छा, तेज, प्राप्ति, आलिंगन, हिंसा, दान, भाग और वृद्धि इतने अव् धातुके अर्थ हैं। ये सब अर्थ प्राणवाचक "अवि" शब्दमें हैं। प्राणके कार्य इन शब्दोंसे व्यक्त होते हैं। पाठक इन अर्थोंको लेकर अपने प्राणके धर्म और कर्म जाननेका यत्न करें।

इतने कार्य करनेवाला संरक्षक प्राण हमारी नासिकामें रहा है। नासिका स्थानीय एकही प्राण हमारे शरीरमें उक्त कार्य करता है। यही इसका महत्व है। यह प्राणका मार्ग "अ-मृत" मन है। अर्थात् इस मार्गसे मरण नहीं है। इस मार्गका रक्षण करणेवाले दो ग्रह हैं। "श्वास और उच्छ्वास" ये दो ग्रह इस मार्गका संरक्षण कर रहे हैं। सबको स्वाधीन रखनेवाले, सबका ग्रहण करनेवाले ग्रह होते हैं। श्वास और उच्छ्वासोंसे सब शरीरका उत्तम ग्रहण हो रहा है, इसलिये ये ग्रह हैं। इन दो ग्रहोंके कार्यसे प्राणका मार्ग मरणरहित हुआ है, जब तक श्वास और उच्छ्वास चलते हैं, तब तक मरण होता ही नहीं, इसलिये श्वासोच्छ्वासके अस्तित्वतक शरीरमें "अमृत" ही रहता है। परंतु जब ये दो ग्रह दूर हो जाते हैं, तब मरण आता है।

"इडा पिंगला और सुषुम्ना" ये तीन नाडियां शरीरमें हैं। इनहीको क्रमसे "गंगा यमुना और सरस्वती" कहा जाता है। अर्थात् सरस्वती सुषुम्ना है। इसमें प्राणकी प्रेरक शक्ति है। स्थिर चित्तसे जो उपासना करते हैं, अर्थात् दृढ विश्वाससे जो परमात्मभक्ति करते हैं, उनके अंदर सुषुम्ना द्वारा यह प्राण विशेष प्रभाव बताता है। तात्पर्य उपासनाके साथही प्राणका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बल बढता है। व्यान प्राण वह है कि जो सब शरीरमें व्यापक है, और अन्य नस्य अर्थात् नासिकाके साथ संबंध रखनेवाले प्राण हैं। इन सब प्राणोंकी प्रेरणा उक्त सुषुम्ना करती है। परमेश्वरभक्तिका बल इस सुषुम्नामें बढता है और इसके द्वारा प्राणोंका सामर्थ भी प्रकट होता है।

सरस्वतीमें प्राण

इस मंत्रमें प्राणायाम साधनकी बहुतसीं गुह्य बातें सरल शब्दोंद्वारा लिखीं हैं, इसलिये पाठकोंको इस मंत्रका विशेष विचार करना चाहिए। इसमंत्रमें जिस सरस्वतीका वर्णन आया है उसीका वर्णन निम्न मंत्रमें देखिए—

अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् ॥
वाचेंद्रो बलेनेंद्राय दधुरिंद्रियम् ॥ य. २०।८०

" अश्विदेव तेजके साथ चक्षु देते हैं, सरस्वती प्राण शक्तिके साथ वीर्य देती है, इंद्र (इंद्राय) जीवात्माके लिये वाणी और बलके साथ इंद्रियशक्ति अर्पण करता है। "

इसमें सरस्वती जीवनशक्तिके साथ वीर्य देती है ऐसा कहा है। अश्विनौ शब्द भी पूर्वोक्त सुषुम्ना नाडीका वाचक है। अश्विनौ शब्द धन और ऋण शक्तियोंका वाचक है। इस मंत्रमें दो इंद्र शब्द हैं। पहिला परमात्माका वाचक और दूसरा जीवात्माका वाचक है। इंद्रिय शब्द आत्माकी शक्तिका वाचक है। कई लोक सरस्वती शब्दका नदी आदि अर्थ लेकर विलक्षण अर्थ करते हैं, उनको यह बात स्मरण रखना चाहिए कि वैदिक शब्द आध्यात्मिक शक्तियोंके वाचक मुख्यतः हैं, पश्चात् अन्य पदार्थोंके वाचक हैं। अस्तु अब प्राणविषयमें और दो मंत्र देखिए—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भोजन और प्राण।

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय
त्वा व्यनाय त्वा ॥ दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां ॥ य. १।२०
प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा
वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व ॥ य. ७।२७

"तू धान्य है। देवोंको धन्य करो। प्राण, उदान और व्यान-के लिये तेरा स्वीकार करता हूं। आयुष्यकेलिये मर्यादा धारण करता हूं॥ मेरे प्राण, व्यान और उदानके तेजकी वृद्धि लिये शुद्ध बनो।"

सात्विक धान्यका आहार इंद्रियादिक देवोंको शुद्ध, पवित्र और प्रसन्न करता है। सात्विक भोजनसे प्राणका बल बढता है और आयुष्य बढता है। शुद्धतासे प्राणकी शक्ति विकसित होती है, इत्यादि बहुत उत्तम भाव उक्त मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं। तथा और एक मंत्र देखिये –

सहस्राक्ष अग्नि।

अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्ध्वं छतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः ॥
त्वं साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥
य. १७।७१

"हे सहस्रनेत्रवाले अग्ने? तेरे सैंकडों प्राण, सैंकडों उदान और सहस्र व्यान हैं। सहस्रों धनोंपर तेरा प्रभुत्व है। इसलिये शक्तिके लिये हम तेरी प्रशंसा करते हैं।"

इस मंत्रका "सहस्राक्ष अग्नि" आत्मा ही है। शतक्रतु, इंद्र, सहस्राक्ष आदि शब्द आत्मावाचक ही हैं। सहस्रतेजोंका धारण करनेवाला आत्माही सहस्राक्ष अग्नि है। प्राण उदान व्यान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि सब प्राण शैंकडों प्रकारके हैं। प्रत्येक प्राणका स्थान शरीरमें निश्चित है। हृदयमें प्राण है, गुदाके प्रांतमें अपान है। नाभिस्थानमें समान है,कंठमें उदान है और सर्व शरीरमें व्यान है। प्रत्येक स्थानमें छोटे मोटे अनेक अवयव हैं, और प्रत्येक अवयवके सूक्ष्म भेद सहस्रों हैं। प्रत्येक स्थानमें और सूक्ष्मसे सूक्ष्म भेदमें उस उस प्राणकी अवस्थिति है, तात्पर्य प्रत्येक प्राणके सैंकडों और सहस्रों भेद हो सकते हैं। इस प्रकार यह प्राणशक्तिका विस्तार हजारों रूपोंसे सब शरीर भर सूक्ष्मसे सूक्ष्म अंशमें हुआ है। यही कारण है, कि प्राणशक्ति वश होनेके कारण सब अंग प्रत्यंग अपने आधीन हो जाते हैं और प्राणशक्तिके वश होनेसे सब शरीरकी निरोगता भी सिद्ध हो सकती है।

इस प्रकार यजुर्वेदका प्राण विषयक उपदेश है। यजुर्वेदका उपदेश क्रिया-प्रधान होता है। इसलिये पाठक इस उपदेशकी ओर अनुष्ठानकी दृष्टिसे देखें और इस उपदेशको अपने आचरणमें ढालनेका यत्न करें।

सामवेद उपासनात्मक होनेसे प्राणके साथ उसका घनिष्ठ संबंध है। कई उसको उक्त कारणसे " प्राण वेद " भी समझते हैं। उपासना द्वारा जो प्राणका बल बढाना है उतनीही सहायता सामवेदसे इस विषयमें होती है। अन्य बातोंका उपदेश करना अन्य वेदोंका ही कार्य है। इसलिये यहां इतनाही लिखते हैं कि जो परमात्मोपासनाका विषय है, उसको प्राणशक्तिका विकास करनेके लिये पाठक अत्यंत आवश्यक समझें और अनुष्ठान करनेके समय उसको किया करें॥ अब अथर्ववेदका प्राणविषयक उपदेश देखते हैं—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथर्ववेदका प्राणविषयक उपदेश ।

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥ अ० ३।१६।१
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानः ॥ अ० २।२८।३

" प्राण अपान मुझे मृत्युसे बचावें। प्राण अपान इसको न छोडें।" इन मंत्रोंमें प्राणकी शक्तिका स्वरूप बताया है। प्राणकी सहायतासे मृत्युसे संरक्षण होता है। प्राण वशमें आ जायगा तो मृत्युका भय नहीं रहता। मृत्युका भय हटानेके लिये प्राणकी प्रसन्नता करनी चाहिए। देखिए—

प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड ।
निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुंच ॥ ४ ॥
वातः प्राणः ॥ ५ ॥ अ० १९।४४

" हे प्राण ! हमारे प्राणका रक्षण करो। हे जीवन ! हमारे जीवनको सुखमय करो। हे अनियम ! अनियमके पाशोंसे हमें बचाओ।"

अपनी प्राण शक्तिका संरक्षण करना चाहिए, अपने जीवनको मंगलमय बनाना चाहिये। निर्ऋतिके जालोंसे बचाना चाहिए। " ऋति " का अर्थ-" प्रगति, उन्नति, सन्मार्ग, उत्कर्ष, अभ्युदय, योग्यता, सत्य, सीधा मार्ग, संरक्षण, पवित्रता " इतना है। अर्थात् निर्ऋतिका अर्थ-अवनति, कुमार्ग, अपकर्ष,अयोग्य रीति, असन्मार्ग, तेढीचाल, घातपातकी रीती, अपवित्रता यह होता है। निर्ऋतिके साथ जानेवाला निःसंदेह अधोगतिको चले जाता है। इसलिये इस तेढेमार्गके भ्रमजालसे बचनेकी सूचना उक्त मंत्रमें दी है। हरएक मनुष्य, जो उन्नति चाहता है, सावधान रहता हुआ अपने आपको इस अधोगतिके मार्गसे बचावे। निर्ऋतिके जाल प्रारंभमें बडे सुंदर दिखाई देते हैं। परंतु जो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनमें एकवार फंसता है, उनको उठाना बडा मुष्किल प्रतीत होता है। सब प्रकारके दुर्व्यसन, भ्रम, आलस्य, छल कपट आदि सबही इस निर्ऋतिके जालके रूप हैं। जो लोक इस जाल में फंसते हैं उनको उठना मुष्कील हो जाता है। इसलिये उन्नति चाहनेवाले सज्जनोंको उचित है कि, वे इस बुरे रास्तेसे अपने आपको बचावें। योग साधन करनेवालोंको यह उपदेश अमूल्य है। योगके यम नियम इसी उपदेशके अनुसार बने हैं। अपने विषयमें किस प्रकारकी भावना करनी चाहिए इसका उपदेश निम्न मंत्रमें किया है—

मैं विजयी हूँ।

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणो अंतरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं निदधे द्यावापृथि-
वीभ्यां गोपीथाय॥ अ० ५।९।७

सूर्य मेरा नेत्र है, वायु मेरा प्राण है, अंतरिक्षस्थ तत्व मेरा आत्मा है, पृथिवी मेरा स्थूल शरीर है। इस प्रकारका मैं अपराजित हूं। मैं अपने आपको द्यु और पृथिवी लोकके अंतर्गत जो कुछ है उस सबके संरक्षण के लिये अर्पण करता हूं।"

आत्मशक्तिका विकास करनेकेलिये समष्टिकी भलाईके लिये अपने आपको समर्पित करना चाहिए। और अपने आँतरिक शक्तियोंके साथ बाह्यदेवताओंका संबंध देखना चाहिए। इतना ही नही प्रत्युत बाह्य देवताओंके अंश अपने शरीरमें रहे हैं,और बाह्य देवताओंके सूक्ष्म अंशोंका बना हुआ मैं एक छोटासा पुतला हूं, ऐसी भावना धारण करके अपने आपको देवताओं का अंशरूप, तथा अपने शरीरको देवतओंका संघ अथवा मंदिर समझना चाहिए। योग साधनमें यही भावना मुख्य है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपने आपको निकृष्ट और हीन दीन समझना नहीं चाहिए परंतु (अहं अस्तृतः अस्मि I am invincible) मैं अपराजित हूं, मैं शक्तिशाली हूं, इस प्रकारकी भावना धारण करना चाहिए। देखिए वेदका कैसा उपदेश है, और साधारण लोक क्या समझ रहे हैं। जैसे जिसके विचार होंगे वैसीही उसकी अवस्था बनेगी। इसलिये अपने विषयमें कदापि तुच्छ बुद्धि धारण करना उचित नहीं है। प्राणायाम करनेवाले सज्जनको तो अत्यंत आवश्यक है कि अपने शरीरको देवताओंका मंदिर, ऋषियोंका आश्रम समझे और अपने आपको उसका अधिष्ठाता तथा परमात्माका सहचारी समझे। अपनी भावना जैसी दृढ होगी वैसाही अनुभव आ सकता है। वेदमें—

पंचमुखी महादेव।

प्राणापानौ व्यानोदानौ अ० ११।८।२६

प्राण, अपान, व्यान, उदान आदि नाम आगये हैं। उप प्राणों के नाम वेदमें दिखाई नहीं दिये। किसी अन्य रूपसे होंगे तो पता नहीं। यदि किसी विद्वानको इस विषयमें ज्ञान हो तो उस को प्रकाशित करना चाहिए। पंच प्राणही पंचमुखी रुद्र हैं, रुद्रके जितने नाम हैं वे सब प्राणवाचकही हैं। महादेव, शंभु आदि सब रुद्रके नाम प्राणवाचक हैं। महादेवके पांच मुख जो पुराणोंमें हैं उनका इस प्रकार मूल विचार है। महादेव मृत्युंजय कैसा है, इसका यहां निर्णय होता है। शतपथमें एकादश रुद्रों-का वर्णन है।

कतमे रुद्रा इति। दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशः॥

शत-ब्रा. १४।५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" कौनसे रुद्र हैं ? पुरुषमें दश प्राण हैं और ग्यारहवां आत्मा है। ये ग्यारह रुद्र हैं।" अर्थात् प्राणही रुद्र है, और इसलिये भव, शर्व, पशुपति आदि देवताके सब सूक्त अपने अनेक अर्थोंमें प्राणवाचक एक अर्थ भी व्यक्त करते हैं। पशुपति शब्द प्राणवाचक माननेपर पशु शब्दका अर्थ इंद्रिय ऐसाही होगा। इंद्रियोंका घोडे, गौवें, पशु आदि अनेक प्रकारसे वर्णन कियाही है। इस रीतिसे वेदमें अनेक स्थानमें प्राणकी उपासना दिखाई देगी। आशा है कि पाठक इस प्रकार वेदका विचार करेंगे। इस लेखमें रुद्रवाचक सब सूक्तोंका प्राणवाचक भाव बतानेके लिये स्थान नहीं है, इस लिये इस स्थानपर केवल दिग्दर्शनही किया है। अग्नि शब्दभी विशेष प्रसंगमें प्राणवाचक है। पंच प्राण, पंच अग्नि, प्राणाग्निहोत्र आदि शब्दोंद्वारा प्राणकी अग्निरूपता सिद्ध है। इस भावको देखनेसे पता लगता है कि, अग्निदेवताके मंत्रोंमें भी प्राणका वर्णन गौण वृत्तिसे है। मध्यस्थानीय देवताओंमें वायु और इंद्र ये दो देवताएं प्रमुख हैं। वायु देवताकी प्राणरूपता सुप्रसिद्धही है। स्थान सान्निध्यसे इंद्रमें भी प्राणरूपत्व आसकता है। इस दृष्टिसे इंद्र देवताके मंत्रोंसे भी वेदमें प्राणका वर्णन मिल सकता है। इस प्रकार अनेक देवताओं द्वारा वेदमें प्राणशक्तिका वर्णन है। किसी स्थानपर व्यष्टिदृष्टिसे है और किसी स्थानपर समष्टिदृष्टिसे है। यह सब प्राणका वर्णन एकत्र करनेसे ग्रंथविस्तार बहुत हो सकता है, इसलिये यहां केवल उतनाही लेख लिखा जाता है कि जिन मंत्रोंमें स्पष्ट रूपसे प्राणका वर्णन आगया है। अब प्राणकी सत्ता कितनी व्यापक है, उसका वर्णन निम्न मंत्रोंमें देखिये—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राणका मीठा चाबुक।

महत्पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः॥
यत एति मधुकशा रराणा तत्प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ॥२॥
मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः॥
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान्गर्भश्चरति मर्त्येषु ॥४॥
अथर्व. ९।१

" (अस्याः) इस पृथिवीकी और समुद्रकी बडी (रेतः) शक्ति तू है ऐसा सब कहते हैं। जहांसे चमकता हुआ मीठा चाबुक चलता है वह ही प्राण और वह ही अमृत है॥ आदित्योंकी माता वसुओंकी दुहिता, प्रजाओंका प्राण और अमृतकी नाभि यह मीठा चाबुक है। यह तेजस्वी, तेज उत्पन्न करनेवाली और (मर्त्येषु गर्भः) मर्त्योंके अंदर संचार करनेवाली है॥ "

इस मंत्रमें "मधु-कशा" शब्द है। "मधु" का अर्थ मीठा स्वादु है। और "कशा" का अर्थ चाबुक है। चाबुक घोडा गाडी चलानेवालेके पास होता है। चाबुक मारनेसे गाडीके घोडे चलते हैं। उक्त मंत्रोंमें "मधु-कशा" अर्थात् मीठा-चाबुकका वर्णन है। यह मीठा-चाबुक अश्विनी देवोंका है। अश्विनी देव प्राणरूपसे नासिका स्थानमें रहते हैं। प्राण, अपान, श्वास, उच्छ्वास, दांये और बांये नाकका श्वास यह अश्विनीदेवोंका प्राणमयरूप शरीरमें है। इस शरीरमें अश्विनीरूप प्राणोंका 'मीठा-चाबूक' कार्य कर रहा है और शरीररूपी रथके इंद्रियरूप घोडोंको चला रहा है। इस चाबूकका यह स्वरूप देखनेसे वेदके इस अद्वितीय और विलक्षण अलंकारकी कल्पना पाठकोंके मनमें स्थिर हो सकती है। यह प्राणोंका मीठा चाबुक हम सबको प्रेरणा कर रहा है। इसकी प्रेरणाके विना इस शरीरमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कोई कार्य होता नहीं है। इतनाही नहीं परंतु सब जगत्में यह 'मीठा-चाबुक' ही सबको गति दे रहा है। सब जगत्में यह प्राणका कार्य देखने योग्य है। मंत्र कहता है कि "इस मीठे-चाबुकमें पृथ्वी और जलकी सब शक्ति रहती है। जहांसे यह मीठा-चाबुक चलाया जाता है वहां ही प्राण और अमृत रहता है।" प्राण और अमृत एकत्रही रहता है, क्यों कि जब तक शरीरमें प्राण रहता है, तबतक मरणकी भीति नहीं होती। और सब ही जानते हैं कि प्राणियोंके शरीरोंमें प्राणही सबका प्रेरक है, इसीलिये उसके चाबुककी कल्पना उक्त मंत्रमें कही है। क्यों कि शरीररूपी रथके घोडे चलानेका कार्य यह ही चाबूक कर रहा है। दूसरे मंत्रमें कहा है कि "यह चाबूक शरीरस्थ वसु आदि देवताओंका सहायक है, यह प्रजाओंका प्राण ही है, अमृतका मध्य यह ही है। यह प्राण मर्त्योंमें तेज और चेतना उत्पन्न करता है, और सब प्राणियोंके बीचमें यह चलता है।" यह वर्णन उत्तम अलंकारसे युक्त है, परंतु स्पष्ट होनेके कारण हरएक इसका उपदेश जान सकता है।

अपनी स्वतंत्रता और पूर्णता।

अ० १९।६०

नसोः प्राणः ॥

श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥१॥

अ० १९।५८

अयुतोऽहमयुतो म आत्माऽयुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्र-मयुतो मे प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयु-तोऽहं सर्वः ॥१॥

अ० १९।५१

"मेरे नाकमें प्राण स्थिरतासे रहे। मेरा कान, नेत्र और प्राण छिन्नभिन्न न होता हुआ मेरे शरीर में कार्य करे। मेरी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आयु और तेज अविच्छिन्न अर्थात् दीर्घ होवे। मैं अपना आत्मा, चक्षु, श्रोत्र, प्राण, अपान, व्यान आदि सब मेरी शक्तियां पूर्ण स्वतंत्र और उन्नत होकर मेरे शरीरमें रहें॥"

आयु और प्राण अविच्छिन्न रूपसे अपने शरीरमें रहनेकी प्रबल इच्छा उक्त मंत्रमें है। सब इंद्रियां तथा सब अन्य शक्तियां अविच्छिन्न तथा पूर्ण उन्नत रूपसे अपने शरीरमें प्रकट होनेकी व्यवस्था हरएकको करनी चाहिये। उक्त मंत्रमें कई शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं —

अहं अयुतः।
अहं सर्वः अयुतः।

"मैं संपूर्ण रूपसे स्वतंत्र, दूसरे किसीकी सहायताकी अपेक्षा न करने योग्य समर्थ, किसी कष्टसे खिलबिली न मचने योग्य दृढ हूं।" यह भावना यदि मनमें आ जायगी तो मनुष्य की शक्ति कितनी बढ सकती है इसका विचार पाठक भी कर सकते हैं। मेरी इंद्रियां, मेरे प्राण तथा मेरे अन्य अवयव ऐसे दृढ और बलवान् होने चाहिए कि मुझे उनके कारण कभी क्लेश न हो सके, तथा किसी दूसरी शक्तिकी अपेक्षा न करता हुआ, मैं पूर्ण स्वतंत्रता के साथ आनंदसे अपने महान् महान् पुरुषार्थ कर सकूं। कोई यह न समझे कि यह केवल ख्यालही है। परंतु मैं यहां कह सकता हूं कि यदि मनुष्य निश्चय करेंगे, तो निःसन्देह वे अपने आपको इस प्रकार पूर्ण स्वतंत्र बना सकते हैं और उक्त शक्तियोंका पूर्ण विकास वे अपने अंदर कर सकते हैं। तथा—

प्राणकी मित्रता।

इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन्
पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि॥ अ. १३।१।१७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"यहां ही प्राण हमारा मित्र बने । हे परमेष्ठिन् ! अपने आयुष्य और तेजके साथ आपकी ही मैं धारणा करता हूं ।" प्राण के साथ मित्रता का तात्पर्य इतनाही है कि अपने शरीरमें प्राण बलिष्ठ होकर रहे । कभी अल्प आयुमें प्राण दूर न हो । अपने आयुष्यमें परमेष्ठी परमात्माकी ही सेवा और उपासना करना चाहिए । परमात्मा सर्वश्रेष्ठ गुणोंका केंद्र होनेसे परमात्मचिंतन-द्वारा सब ही श्रेष्ठ सद्गुणोंका ध्यान होता है और मनुष्य जिसका सदा ध्यान करता है उसके समान बन जाता है, इस नियमके अनुसार परमेश्वरके गुणोंके चिंतनसे मनुष्य भी श्रेष्ठ बनता है । यह उपासनाका और मानवी उन्नतिका संबंध है । इस प्रकार जो सत्पुरुष अपनी प्राणशक्तिको बढाता है, उसकी प्राणशक्ति कितनी विस्तृत होती है,इसकी कल्पना निम्न मंत्रोंसे हो सकती है । देखिए—

तस्य व्रात्यस्य ॥ सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥
योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः ॥
योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ॥
योऽस्य तृतीयः प्राणोऽभ्यूढो नामासौ स चंद्रमाः ॥
योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं स पवमानः ॥
योऽस्य पंचमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः ॥
योऽस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः ॥
योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः ॥

अ० १५।१५।१-९

"उस (व्रात्यस्य) संन्यासी सत्पुरुषके सात प्राण, सात अपान, सात व्यान हैं । उसके सातों प्राणोंके क्रमशः नाम ऊर्ध्व, प्रौढ, अभ्यूढ, विभू, योनि, प्रिय और अपरिमित हैं । और उन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के सात स्वरूप क्रमशः अग्नि, आदित्य, चंद्रमा, पवमान, आपः, पशु और प्रजा हैं । " इसी प्रकार इसके अपान और व्यानका वर्णन उक्त स्थानमें ही वेदने किया है । वहांही उसको पाठक देखें । विस्तार होनेके भयसे उस सबको यहां नहीं लिया है। मनुष्य अपनी शक्तिको इस प्रकार बढा सकता है। जो मनुष्य अपने सातों प्राणोंको अपरिमित रूपमें बढा सकता है, वह ही अपने आपको सब प्रजाजनोंके हितके कार्यमें अर्पण करता है। जो अपने प्राणको ऊर्ध्व अर्थात् उच्च करता है,वह अग्निके समान तेजस्वी होता है । इत्यादि प्रकार उक्त कथनका भाव समझना चाहिए । तथा –

समयकी अनुकूलता ।

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ॥
कालेन सर्वा नंदन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥ ७ ॥

अ० १९।५३

" कालकी अनुकूलतासे मन, प्राण और नाम रहता है । काल की अनुकूलतासे सब प्रजाओंको आनंद होता है । "

कालका नियम पालन करना चाहिए। पुरुषार्थके साथ कालकी अनुकूलता होनेसे उत्तम फल प्राप्त होता है । कालका धिक्कार नहीं करना चाहिए। जो अनुकूलता प्राप्त होती है उसका उपयोग अवश्य करना चाहिए। प्राणायामादि साधन करनेवाले को उचित है कि वह योग्य कालमें नियमपूर्वक अपना अभ्यास किया करे, तथा जिस समय जो करना योग्य है उसको अवश्य ही उस समय करना चाहिए। अब प्राणके संरक्षक ऋषियोंका वर्णन निम्न मंत्रमें देखिये—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राणरक्षक ऋषी ।

ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः ।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् ॥
अ० ५।३०।१०

" बोध और प्रतिबोध अर्थात् स्फूर्ति और जागृति ये दो ऋषि हैं । ये दोनों तेरे प्राणकी रक्षा करते हुए दिनरात जागते रहें । "

प्रत्येक मनुष्यमें ये दो ऋषी हैं । " स्फूर्ति और जागृति " ये दो ऋषी हैं । एक उत्साहकी प्रेरणा करता है और दूसरा सावधान रहनेकी चेतना देता है । उत्साह और सावधानता ये दो सद्गुण जिस मनुष्यमें जितने होंगे, उतनी योग्यता उस मनुष्यकी हो सकती है । ये दो ऋषी प्राणके संरक्षणका कार्य करते हैं, और यदि ये दिनरात जागते रहेंगे तो मनुष्यको मृत्युकी बाधा नहीं हो सकती । जबतक मनुष्यका मन उत्साहसे परिपूर्ण रहेगा और जबतक सावधानताके साथ वह अपना व्यवहार करेगा, तबतक उसको मरणकी भीति नहीं होगी, यह साधारण नियम समझिये ।

जो लोग असावधानताके साथ अपना दैनिक व्यवहार करते हैं, तथा जो सदा हीन दीन और दुर्बलताके ही विचार मनमें धारण करते हैं, उनको इस मंत्रका भाव ध्यानमें धरना उचित है । वेद कहता है कि मनमें उत्साहके विचार धारण करो और प्रतिक्षण सावधान रहो । जो मनुष्य अपने आपको वैदिक धर्मी समझता है, उसको उचित है कि वह अपने मनमें वेदके ही अनुकूल भाव धारण करे । वैदिक धर्मी मनुष्यको उचित नहीं कि वह वेदके विरुद्ध हीन और दीनताके विचार अपने मनमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धारण करके मृत्युके वशमें होवे। वैदिक धर्मका विशेष उद्देश सर्वसाधारण जनताकी आयुष्यवृद्धि और आरोग्यवृद्धि करना है, इसीलिये स्थान स्थानके वैदिक सूक्तोंमें दीर्घायुत्वके अनेक उपदेश आते हैं। पाठक इन बातोंको ठीक प्रकार अपने मनमें धारण करें।

वृद्धताका धन।

प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्।
अयं जरिम्णः शेवधिररिष्ट इह वर्धताम्॥ ५॥
आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते।
आयुर्नो विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः॥ ६॥

अ० ७।५३

"जिस प्रकार बैल अपने स्थानपर वापस आते हैं, उस प्रकार प्राण और अपान अपने स्थानपर आ जावें। वृद्धावस्था का जो खजाना है, वह यहां कम न होता हुआ बढता रहे। तेरे अंदर प्राणको प्रेरित करता हूं और बीमारीको दूर फेंकता हूं। यह श्रेष्ठ अग्नि हम सबको सब प्रकारके दीर्घ आयु देवे।"

बैल शामके समय वेगसे अपने स्थानपर आजाते हैं। उस प्रकारके बलयुक्त वेगसे प्राण और अपान अपने अपने स्थानमें रहें। जब प्राण और अपान बलवान् बनकर अपना अपना कार्य करेंगे, तब मृत्युका भय नहीं हो सकता और मनुष्य दीर्घ आयुष्यरूपी धन प्राप्त कर सकता है। सब धनोंमें आयुष्यरूपी धन ही सबसे श्रेष्ठ है, क्यों कि सब अन्य धनोंका उपयोग इसके होनेपर ही हो सकता है। उक्त मंत्रमें—

जरिम्णः शेवधिः इह वर्धतां॥ अ० ७।५३।५

ये शब्द मनन करने योग्य हैं। "वृद्ध आयुका खजाना यहां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बढता रहे।" अर्थात् इस लोकमें आयु बढती रहे। ये शब्द स्पष्टतासे बता रहे हैं कि आयु निश्चित नहीं, प्रत्युत बढनेवाली है। जो मनुष्य अपनी आयु बढाना चाहेगा वह उस प्रकारके आयुष्यवर्धक सुनियमोंका पालन करके आयु बढा सकता है। इस प्रकार वेदका उपदेश अत्यंत स्पष्ट है। परंतु कई वैदिक धर्मी समझते ही हैं कि आयु निश्चित है और घट बढ नहीं सकती। जिन बातोंमें वेदका कथन स्पष्ट है उन बातोंमें कमसे कम भिन्न विचार वैदिक धर्मियोंको धारण करना उचित नहीं है।

बोध और प्रतिबोध।

पूर्व स्थानमें बोध और प्रतिबोध ये दो ऋषि हैं, ऐसा कहा ही है। वही भाव थोडेसे फरकसे निम्न मंत्रमें आया है, देखिये-

बोधश्च त्वा प्रतिबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वाऽनवद्राणश्च
रक्षताम्। गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम्॥ अ० ८।१।१३

"उत्साह और सावधानता तेरा रक्षण करें। स्फूर्ति और जागृति तेरा संरक्षण करें। रक्षक और जागृत तेरा पालन करें।"

इस मंत्रमें संरक्षक गुणोंका वर्णन है। उत्साह, सावधानता, स्फूर्ति, जागृति, रक्षण और खबरदारी ये गुण संरक्षण करने-वाले हैं। इनके विरुद्ध गुण घातक हैं। इसलिये अपनी अभि-वृद्धिकी इच्छा करनेवालेको उचित है कि वह उक्त गुणोंकी वृद्धि अपने में करें। इस मंत्रके साथ पूर्व मंत्र, जिसमें दो ऋषियोंका वर्णन है, तुलना करके देखें। अब निम्न मंत्र देखिये-

उन्नति ही तेरा मार्ग है।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आ हि रोहेममममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि॥
अ० ८।१।६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" हे मनुष्य ! तेरी गति (उत् यानं) उन्नतिकी ओर ही होनी चाहिये । कभी भी (अव यानं न) अवनतिकी ओर होनी नहीं चाहिये । तेरे दीर्घ आयुष्यके लिये मैं बलका विस्तार करता हूं । इस सुखमय शरीररूपी अमृतमय रथपर (आरोह) चढो । और जब तुम दीर्घ आयुसे युक्त हो जाओगे तब (विदथं) सभाओंमें (आवदासि) संभाषण करोगे । "

अपना अभ्युदय करनेका यत्न करना चाहिए,कभी ऐसा कर्म करना नहीं चाहिए कि जिससे अवनति होनेकी संभावना हो सके । जीवनके लिये प्राणका बल फैलाना चाहिए । प्राणका बल बढानेसे दीर्घ आयुष्य प्राप्त हो सकता है । यह शरीररूपी उत्तम रथ है जिसको इंद्रियरूपी दस घोडे जोते हैं । इस रथमें प्राणरूपी अमृत है, इस लिये इसको सुखमय रथ कहा जाता है। इस सर्वोत्तम रथपर आरूढ हो जाओ और अपनी उन्नतिके मार्गमें आगे बडो । जब तुम बल और दीर्घ आयु प्राप्त करोगे तब तुमको बडी बडी सभाओंमें अवश्यही संभाषण करना होगा, क्यों कि दूसरोंका सुधार करनेके लिये तुमको प्रयत्न करना चाहिए । जीवनार्थ युद्धमें सब जनताको उत्तम मार्ग बतानेका कार्य तुम्हाराही है । तुमको स्वार्थी बनाना नहीं चाहिए, प्रत्युत जनताकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझनी चाहिए । इस मंत्रसे पता लगता है कि प्राणायामादि साधनों द्वारा दीर्घ आयु, उत्तम आरोग्य, अद्वितीय बल, सूक्ष्म बुद्धि और विशाल मन प्राप्त करनेके पश्चात् मनुष्यको अपना जीवन सार्वजनिक हितका साधन करनेमें लगाना चाहिए। समाजसे अलग होकर अपनी ही शांति प्राप्त करनेमात्रसे मनुष्य कृतकार्य नहीं हो सकता, परंतु जब एक " नर " अपने आपको उन्नत करनेके पश्चात् " वैश्वा-नर" के लिये आत्मसमर्पण करता है,तब ही वह उच्चतम अवस्थाको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राप्त कर सकता है । यही सर्व-मेध-यज्ञ है । अस्तु । इस प्रकार उक्त मंत्रने योगी मनुष्यके सन्मुख अंतिम उच्च आदर्श रख दिया है । आशा है कि, सब श्रेष्ठ मनुष्य इस वैदिकआर्शको अपने सन्मुख रखकर अपना जीवन इसके अनुसार ढालनेका यत्न करेंगे । अब अन्य बातोंका विचार यहां करना है। योगी जनोंका अधिकार कहांतक पहुंचता है, इसका पता निम्न मंत्रोंसे लग सकता है—

यमके दूत ।

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ॥
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोपसेधामि सर्वान् ॥ ११॥
आराद‍रातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ॥
रक्षो यत्सर्वं दुर्भूतं तत्तम इवाप हन्मसि ॥ १२ ॥
अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः ॥
यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत् ते कृणोमि तदु ते
समृध्यताम् ॥ १३ ॥ अ. ८।२

" मैं तेरे अंदर प्राण और अपान का बल, दीर्घ आयु, (स्वस्ति) स्वास्थ्य आदि सब अच्छे भाव, वृद्धावस्थाके पश्चात् योग्य समयमें मृत्यु आदि स्थापन करता हूं। वैवस्वत यमके द्वारा भेजे हुए यमदूतोंको मैं ढूंढ ढूंढ कर दूर करता हूं ॥ (अरातिं) अदावत, (निर्ऋतिं) नियमविरुद्ध व्यवहार, (ग्राहिं) देरसे चलनेवाले रोग, (क्रव्यादः) मांसको क्षीण करनेवाली बीमारी, (पिशाचान्) रक्तको निर्बल करनेवाले रक्तके कृमि, (रक्षः=क्षरः) सब क्षयके कारण, (सर्वं दुर्भूतं) सब बुरा व्यवहार आदि जो कुछ विनाशक है उस सबको अंधकारके समान मैं दूर करता हूं ॥ तेरे लिये मैं तेजस्वी, अमर और आयुष्मान्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जातवेदसे प्राण प्राप्त करता हूं। जिस प्रकार तेरा अकालमृत्यु न होगा, तू अमर अर्थात् दीर्घजीवी बनोगे, (सजूः) मित्रभावसे संतुष्ट रहोगे और तुम्हें कष्ट न होगा, उस प्रकारकी समृद्धि तेरे लिये मैं अर्पण करता हूं ॥"

इन मंत्रोंमें प्राण साधन करके जो विलक्षण सिद्धि प्राप्त होती है उसका उत्तम वर्णन है। प्राणका बल प्राप्त करनेसे सब प्रकार का स्वास्थ्य, दीर्घ आयु, बल, तथा योग्य कालमें मृत्यु हो सकता है। परंतु प्राणका बल न होनेकी अवस्थामें नाना प्रकार के रोग, अल्प आयु, अशक्तता और अकाल मृत्यु होते हैं। इससे प्राणायामादि द्वारा प्राणकी शक्ति बढानेकी आवश्यकता स्पष्ट सिद्ध होती है। जो विद्वान् आयुको परिमित और निश्चित मानते हैं वे कहते हैं कि, यमके दूत सब जगत्में संचार करते हैं, वे आयुकी समाप्तिके समय मनुष्यके प्राणोंका हरण करते हैं। इसलिये आयु बढ नहीं सकती। इस अवैदिक मत का खंडन करते हुए वेद कहता है कि जो यमदूत इस जगत्में संचार करते होंगे, उनको भी प्राणके अनुष्ठानसे दूर किया जा सकता है। इसमें मनुष्य पराधीन नहीं है। अनुष्ठानकी रीति से प्राणका बल बढाइए, तो उसी क्षण यमदूत आपसे दूर हो सकते हैं। प्राणोपासना करनेवालोंके ऊपर यमदूत अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। इस प्रकारका अभयदान वेद दे रहा है, इसकी ओर हरएक वैदिक धर्मीका ध्यान अवश्य जाना चाहिए। इस विचार को धारण करके निर्भय बनकर प्राणायामद्वारा अपनी आयु हरएकको दीर्घ बनानी चाहिए तथा अन्य प्रकारका स्वास्थ्य भी प्राप्त करना चाहिए। प्राणायामके अनुष्ठान से मनुष्य इतना बल प्राप्त कर सकता है कि जिससे वह यमदूतों को भी दूर भगा सकता है। इतना सामर्थ्य प्राप्त होता है इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिये ही सब श्रेष्ठ पुरुष प्राणायामका महत्त्व वर्णन करते हैं।

प्राणायामसे सब ही प्रकारके व्याधी, दोष और रोगोंके मूल कारण दूर हो सकते हैं। दुष्ट भाव, बुरा आचार, विधिनियमोंके विरुद्ध व्यवहार आदि सब दोष इस अभ्याससे दूर होते हैं। सब प्रकारके रोगोंके बीज शरीरसे हट जाते हैं। जिस प्रकार सूर्य अपने किरणों द्वारा अंधकारका निर्मूलन करता है, उस प्रकार योगी अपनी प्राणशक्तिके प्रभावसे सब रोगबीजोंको दूर कर सकता है।

जो सब बने हुए पदार्थोंको यथावत् जानता है, वह आत्मा "जात-वेद अग्नि" है। वह आत्मा अमृतरूप तथा आयुष्मान् है। इसलिये वह ही सबको अमर और आयुष्मान् कर सकता है। जो उसके साथ अपने आत्माको योगसाधनद्वारा संयुक्त कर सकते हैं, वे अपने आपको दीर्घ आयुसे युक्त और अमरत्व से पूर्ण बना सकते हैं। इस प्रकारके साधन संपन्न योगी अकाल मृत्युसे मरते नहीं, अमर बनते हैं, सदा संतुष्ट और प्रेमपूर्ण बनते हैं, इसलिये सब प्रकारकी समृद्धिसे युक्त होते हैं। यही सच्ची समृद्धि है। मनुष्यका अधिकार है कि वह इस समृद्धिको प्राप्त करे।

अथर्वाका सिर।

चित्तवृत्तियोंका निरोध करना और मनकी सब वृत्तियोंको स्वाधीन रखकर उनको अच्छेही कर्ममें लगाना योग कहलाता है। इस प्रकारका पुरुषार्थ जो करता है उसको योगी कहते हैं। योगीके अंदर चंचलता नहीं रहती और दृढ स्थिरता मनोवृत्तियोंमें शोभा बढाने लगती है। इस प्रकारके योगीका नाम "अ-थर्वा" होता है। 'अ-चंचल' यह अथर्वा शब्दका भाव है। एकाग्रताकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिद्धि उसको प्राप्त होती है। इस अथर्वाका जो वेद है वह अथर्ववेद है। अथर्ववेद सर्व सामान्य मनुष्योंके लिये नहीं है। योगसाधनका इसमें मुख्य भाग होनेसे तथा सिद्ध अवस्थाकी बातें इसमें होनेसे यह अथर्ववेद योगियोंका वेद है। इसमें इसी कारण प्राणायामविषयक उपदेश सब अन्य वेदोंकी अपेक्षा अधिक है। इस वेदमें अथर्वाके सिरका वर्णन निम्न प्रकार किया है -

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ॥
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत्पवमानोऽधि शीर्षतः ॥२६॥
तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः ॥
तत्प्राणो अभिरक्षति शिरो अन्नमथो मनः ॥२७॥
यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ॥
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥२९॥
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ॥
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥३०॥
अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ॥
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥३१॥
तस्मिन् हिरण्मये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ॥
तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥३२॥
प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सं परिवृताम् ॥
पुरं हिरण्मयीं ब्रह्मा प्रविवेशापराजिताम् ॥३३॥

अ. १०।२

"(अ-थर्वा) स्थिरचित्त योगी अपने (मूर्धानं) मस्तिष्क के साथ हृदयको सीता है, और सिरके मस्तिष्कके ऊपर अपने (पवमानः) प्राणको भेज देता है॥ वह ही अथर्वाका सिर है कि जिसको देवोंका कोश कहा जाता है॥ उसका रक्षण प्राण, अन्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और मन करता है ॥ अमृतसे परिपूर्ण इस ब्रह्मकी नगरीको जो जानता है, उसको ब्रह्म और इतर देव चक्षु प्राण और प्रजा देते हैं ॥ वृद्धावस्थाके पूर्व चक्षु और प्राण उसको छोडते नहीं । जो इस ब्रह्मपुरीको जानता है, और जिसमे रहनेके कारण आत्माको पुरुष कहते हैं ॥ आठ चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त यह देवोंकी अयोध्या नगरी है, इसमें तेजस्वी कोश है वह ही देदीप्यमान स्वर्ग है । तीन आरोंसे युक्त और तीन स्थानोंपर रहे हुए उस तेजस्वी कोशमें जो पूज्य आत्मा है, उसको ब्रह्मज्ञानी लोक जानते हैं । इस देदीप्यमान मनोहर यशस्वी और अपराजित नगरीमें ब्रह्मा प्रवेश करता है । ''

योगसाधन करनेवालोंके लिये यह उपदेश अमूल्य है । इसमें सबसे पहिली बात यह कही है कि हृदयका धर्म भक्ति है और मस्तिष्कका धर्म विचार है । भक्ति और विचार का विरोध नहीं होना चाहिये । दोनों एक ही कार्य में सम अधिकारसे प्रवृत्त होने चाहिये । जहां ये दोनों केंद्र विभक्त होते हैं उसमें दोष उत्पन्न होते हैं । धर्म में विशेषतः मस्तिष्क की तर्कना और हृदयकी भक्तिको समान स्थान मिलना चाहिए । जिस धर्ममें इनको समान स्थान नहीं होता, उस धर्म में बडे दोष होते हैं । शिक्षाविभागमें भी मस्तिष्क और हृदयका सम विकास होने योग्य शिक्षा होनी चाहिए । जिस शिक्षामें केवल मस्तिष्ककी तर्कशक्ति बढती है, उस शिक्षाप्रणालीसे नास्तिकता उत्पन्न होती है और जिससे केवल भक्ति बढती है, उस प्रणालीसे अंधविश्वास बढता है। इसलिये तर्क और भक्ति का समविकास होनेसे दोनों दोष दूर होते हैं और सब प्रकार की उन्नति होती है । योगसाधन करनेवाले को उचित है कि वह अपने में मस्तक की तर्कशक्ति और हृदय की भक्ति समप्रमाणमें विकसित करे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यही भाव "मूर्धा और हृदय को सीने" के उपदेशमें है। दोनों को सीकर एक करना चाहिए और दोनों को मिलाकर आत्मोन्नतिके कार्य में समर्पित करना चाहिए।

ब्रह्मलोककी प्राप्ति।

"मस्तिष्क के ऊपर के स्थानमें प्राणको प्रेरित करना" यह दूसरा उपदेश उक्त मंत्रों में है। मस्तिष्कमें सहस्रार चक्र है और इसके नीचे पृष्ठवंशके साथ कई चक्र हैं। प्राणायामद्वारा नीचेसे एक एक चक्रमें प्राण भरनेकी क्रिया साध्य होती है। और सबसे अंतमें इस मस्तिष्कके सहस्रार चक्रमें प्राण भेजा जाता है, इस अवस्थासे पूर्व पृष्ठवंशके नाडियोंमें प्राण का उत्तम संचार होता है। तत्पश्चात् मिस्तष्कके सहस्रार चक्र में प्राण पहुंचता है और ब्रह्मरंध्रतक प्राणकी गति होती है। यह प्राणकी सर्वोत्तम गति है। यही ब्रह्मलोक होनेसे तथा इस स्थानमें प्राणके साथ आत्माकी गति होनेसे, उस अवस्थामें मुमुक्षुको ब्रह्मलोकप्राप्ति होती है। इसलिए इस अवस्थाको सबसे श्रेष्ठ अवस्था कहते हैं। यह सबसे श्रेष्ठ अवस्था प्राणायामके नियमपूर्वक अभ्याससे प्राप्त होती है, इस कारण यह योगियोंको प्राप्त होनेवाली अवस्था है।

देवोंका कोश।

अ-थर्वा अर्थात् योगीका उक्त प्रकारका सिर सचमुच देवोंका खजाना है। इस प्रकारके अथर्वाके सिरमें सब दिव्य भावनाएं रहतीं हैं। सब दिव्य श्रेष्ठ दैवी शक्तियोंका निवास उसके शरीरमें होता है, इसलिये उसका देह देवताओंका सच्चा मंदिर है। इस देवोंके मंदिरकी रक्षा करनेवाले जो वीर हैं उनके नाम प्राण, मन और अन्न हैं। बलवान् प्राण सब रोगबीजों और शारीरिक दोषोंको हटाता है। श्रेष्ठ सद्गुणी और सत्यनिष्ठ मन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपने सुविचारों द्वारा इसको सुरक्षित रखता है । मनकी प्रबल इच्छाशक्तिद्वारा सब हीं दोष दूर हो सकते हैं और आदर्श अवस्था प्राप्त हो सकती है । सात्त्विक अन्नके सेवन करनेसे शरीर निर्दोष बनता है, मन भी सात्त्विक बनता है और प्राणका बलभी बढता है । इस प्रकार ये तीन वीर - "प्राण, मन और अन्न "- परस्परोंका संवर्धन करते हुए, सब मिलकर योगीकी सहायता करते हैं । यहही प्राणायामका यश है ।

ब्रह्मकी नगरी ।

ब्रह्मकी नगरी हृदयमें है और उसमें अमृत है । यह अमृत देव प्राशन करते हैं और पुष्ट होते हैं । अर्थात् हृदयस्थानीय रुधिरही सब इंद्रियोंमें जाकर वहां का आरोग्य स्थिर रहता है । इस अमृतपूर्ण ब्रह्मकी नगरीको जो ठीक प्रकार जानता है, इस पुरीके सब गुणधर्मोंसे जो परिचित होता है, अपने इस हृदयकी शक्तियोंको जो जानता है, उसको ब्रह्म और ब्रह्मकी शक्तियां चक्षु, प्राण और प्रजा देतीं हैं । चक्षु शब्दसे सब इंद्रिय और अवयवोंकी सूचना होती है, प्रजा शब्द सुप्रजा का बोध करता है और प्राण शब्द से सामर्थ्ययुक्त जीवन का ज्ञान होता है । तात्पर्य इस अपने हृदय की शक्तियोंका उत्तम ज्ञान प्राप्त करनेसे उक्त प्रकार के लाभ हो सकते हैं । हृदयको तथा अपने आंतरिक इंद्रियों और अवयवोंको जानना, प्राणायामसे जो चित्तकी एकाग्रता होती है, उससे साध्य होता है । जब प्राणायामसे चित्तकी एकाग्रता होती है तब कई अज्ञात शक्तियों का विज्ञान होता है, उसी अवस्थामें आंतरिक उपकरणोंका विज्ञान होता है, इसी रीतिसे हृदयादि अंतरंगोंका पूर्ण ज्ञान होनेके पश्चात् वहां अपने आत्माकी शक्ति कैसी अद्भुत रीतिसे

५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कार्य कर रही है, इसका साक्षात्कार होता है। इस प्रकार अपने आत्मांकी शक्ति विदित होते ही उक्त फल प्राप्त होता है। सुप्रजा निर्माण करनेकी शक्ति, दीर्घ आयु और बलवान् इंद्रिय ये तीन फल अपने हृदयका तथा वहांकी आत्मशक्तिका ज्ञान प्राप्त करनेवालेको होते हैं।

जो पुरुष ब्रह्मज्ञानी बनता है, वह अकालमृत्यु से नहीं मरता, पूर्ण आयुष्यकी समाप्तिके पश्चात् स्वकीय इच्छासे वह मरता है। आयुष्यकी समाप्ति तक उसके संपूर्ण इंद्रिय, अवयव और अंग बलवान् और कार्यक्षम रहते हैं। यह ब्रह्मज्ञानका फल है। कई यहां शंका करेंगे कि ब्रह्मज्ञान का यह फल कैसा प्राप्त होता है? इस शंकाके उत्तरमें निवेदन है कि ब्रह्मज्ञानसे आत्मिक शांति होती है और उस कारण उसको उक्त फल प्राप्त हो सकते हैं। तथा जो ब्रह्मज्ञानी होता है उसका आचार विचारशक्ति क्षीण करनेवाला न होनेके कारण उसकी शक्ति कभी क्षीण होती ही नहीं, प्रत्युत उसकी शक्ति विकसित होती है। जिसकी शक्तिकी अभिवृद्धि होती है, उसको उक्त बातें प्राप्त करनी शक्य ही है।

अयोध्या नगरी।

आठ चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त यह देवताओंकी नगरी है, इसका नाम "अयोध्या" है। जिसमें देवभावना और आसुरी भावनाओंका संग्राम नहीं होता, अर्थात् जहां दैवी वृत्ति ही सदा शांतिके साथ निवास करती है। इसलिये उसका नाम "अ-योध्या" नगरी है। जब तक यह नगरी देवोंके आधीन होती है तब तक उसमें शांतिका रामराज्य हो जाता है। इंद्रियों के नौ द्वार हैं और इसमें पृष्ठवंशमें मूलधार आदि आठ चक्र हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस नगरीमें हृदयस्थानमें प्रकाशमय स्वर्ग है। वह ही प्राणायामादि साधनोंके द्वारा प्राप्तव्य स्थान है। प्राप्तव्यका अर्थ स्वकीय इच्छासे प्राप्तव्य है, अन्यथा वह स्थान सब ही प्राणिमात्रके पास है ही, परंतु बहुत ही थोडे हैं कि जो अपनी इच्छासे उसमें प्रवेश कर सकते हैं। आत्मशक्तिका प्रभाव जानते हुए उस स्थानको जानना और ज्ञानके साथ उसमें निवास करना योगसाधनसे साध्य है।

अयोध्याका राम ।

इस नगरीमें जो पूजनीय देव है वह ही आत्माराम है, उसको ब्रह्मज्ञानी लोक ही जानते हैं, अन्योंको उसका पता नहीं लग सकता।

इस यशस्वी नगरीमें विजयी ब्रह्मा प्रवेश करता है, जीवात्मा जब आसुरी भावनाओंपर विजय प्राप्त करता है, तब वह अपनी राजधानीमें विजयोत्सव करता हुआ प्रवेश करता है। यह राजधानी अयोध्या नगरी यशसे परिपूर्ण है, दुःखोंका हरण करनेवाली है और तेजसे प्रकाशित है। इसका पराजय आसुरी भावनाओंके द्वारा कभी हो ही नहीं सकता। इसलिये इसका नाम ही "अपराजित अयोध्या" है। अपने हृदयकी इस शक्तिको जानना चाहिए। 'मैं अपराजित हूं। दुष्ट भावोंसे मैं कभी पराजित नहीं हो सकता। मैं सदा विजयी ही रहूंगा। मेरा नामही "विजय" है।' इत्यादि भाव उपासकको अपने अंदर धारण करने चाहिए। 'मैं हीन दीन दुर्बल और अधम हूँ' इस प्रकारके भाव कदापि मनमें धारण नहीं करने चाहिए। ये अवैदिक भाव हैं। इस मंत्रमें आत्माका विजयी स्वरूप बताया है। आशा है कि वैदिक धर्मी सज्जन इस भावको धारण करेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपने आत्माकाही यह वर्णन है। आत्मा किस प्रकारके भावसे पराजित होता है और किस भावनाके धारण करनेसे विजयी होता है, इसका सूक्ष्म वर्णन इसमें दिया है। आत्माही ब्रह्मा है। वह हृदयकमलमें निवास करता है, हंस अर्थात् प्राण उसका वाहन है, यही देवोंकी पुरी अमरावती है, यही सब कुछ है। पाठक प्रयत्न करके अपने अंदर इस शक्तिका अनुभव करें और अपना विजय संपादन करें।

अब चारों वेदोंमेंसे अनेक मंत्रोंद्वारा जो जो उपदेश ऊपर दिया है उसका सारांश नीचे देता हूं, जिसको पढनेसे पूर्वोक्त सब कथनका भाव हृदयमें प्रकाशित हो सकेगा—

(१) आंतरिक प्राणका बाह्य वायुके साथ नित्य संबंध है।

(२) जितना प्राण होता है उतनी ही आयु होती है। इसलिये प्राणशक्तिकी वृद्धि करनेसे आयुष्यकी वृद्धि हो सकती है।

(३) प्राणरक्षणके नियमोंके अनुकूल आचरण करनेसे न केवल प्राणका बल बढता है, प्रत्युत चक्षु आदि सबही इंद्रियों, अवयवों और अंगोंकी शक्ति बढती है, और उत्तम आरोग्य प्राप्त हो सकता है।

(४) प्राणायामके साथ मनमें शुभ विचारोंकी धारणा करनेसे बडा लाभ होता है।

(५) सूर्यप्रकाशका सेवन तथा भोजनमें घीका सेवन करनेसे प्राणायामकी शीघ्र सिद्धि होती है।

(६) प्राणशक्तिका विकास करना हरएक का कर्तव्य है। क्यों कि आत्माकी शक्तिके साथ प्रेरित प्राण शरीरके अंगमें जाकर वहांके स्वास्थ्यकी रक्षा और बलकी वृद्धि करता है।

(७) एकही प्राणके प्राण अपान व्यान उदान और समान ये भेद हैं, तथा अन्य उपप्राण भी उसीके प्रभेद हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(८) संतोषवृत्ति और पवित्रतासे प्राणका सामर्थ्य बढता है।

(९) प्राणका वीर्यके साथ संबंध है। वीर्यरक्षणसे प्राण-शक्तिकी वृद्धि होती है और प्राणायामसे वीर्यकी स्थिरता होती है, इस प्रकार इनका परस्परसंबंध है।

(१०) परमेश्वर की उपासना और संगीतका अभ्यास इन दोनोंसे प्राणका बल बढ जाता है।

(११) प्राणशक्तिकी रक्षा और अभिवृद्धिके लिये सब अन्य इंद्रियोंके सुखोंको त्यागना चाहिए; अर्थात् अन्य इंद्रियोंके सुख प्राप्त करनेके लिये प्राणकी हानि करना नहीं चाहिए।

(१२) सब शक्तियोंमें प्राणशक्तिही मुख्य और प्रमुख शक्ति है।

(१३) सत्कर्मके साथ प्राणका पोषण करना चाहिए।

(१४) वाचा, मन और कर्ममें शुद्धता और पवित्रता रखना चाहिए। इससे बल बढता है।

(१५) सोनेके समय अपनी सब इंद्रियशक्तियां किस प्रकार आत्मामें लीन होतीं हैं, और उठनेके समय पुनः किस प्रकार व्यक्त रूपमें कार्य करने लगतीं हैं, इसका विचार करना और इसमें प्राणके कार्यका अनुभव लेना चाहिए। इस अभ्याससे आत्माकी विलक्षण शक्ति जानी जाती है।

(१६) संपूर्ण रोगबीजों और शारीरिक दोषोंको प्राण ही दूर करता है। जबतक प्राण है, तबतक शरीरमें अमृत है।

(१७) भोजनके साथ, प्राणशक्ति आयुष्य आरोग्य आदिका संबंध है। इसलिये ऐसा उत्तम सात्त्विक भोजन करना चाहिए कि जो आयुष्य आरोग्य आदिकी वृद्धि कर सके।

(१८) सहस्रों सूक्ष्म रूपोंसे शरीरमें प्राण कार्य करता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१९) प्राणसंवर्धनके नियमोंके विरुद्ध व्यवहार करनेसे सब शक्ति क्षीण होकर अकालमृत्यु आता है । इसलिये इस प्रकार की नियमविरुद्ध आचरण करनेकी प्रवृत्तिको रोकना चाहिये ।

(२०) अग्नि, वायु, रवि आदि बाह्य देवताएं अपने शरीरमें वाचा, प्राण, चक्षु आदि रूपसे रही हैं। इस प्रकार अपना शरीर देवताओंका मंदिर है और मैं उन सब देवताओंका अधिष्ठाता हूं। यह भावना मनमें स्थिर करना चाहिये और अपने आपको उक्त भावनारूप समझना चाहिये ।

(२१) अपने आपको अपराजित, विजयी और शक्तिका केंद्र मानना उचित है ।

(२२) प्राण ही रुद्र है । रुद्रवाचक सब शब्द प्राणवाचक हैं ।

(२३) प्राणके आधारसे ही सब विश्व चल रहा है । प्राणियों के अंदर यह बडी विलक्षण शक्ति है ।

(२४) मैं पुरुषार्थसे अवश्यही अपनी सब शक्तियोंका विकास करूंगा, ऐसा दृढ निश्चय करना योग्य है ।

(२५) अपने आपको कभी हीन दीन दुर्बल नहीं समझना, परंतु अपने प्रभावका गौरव ही सदा देखना चाहिए ।

(२६) जगत् में ऐसी कोई शक्ति नहीं है कि जो मुझे कष्ट दे सकेगी। मैं सब कष्टोंको दूर करनेका सामर्थ्य रखता हूं। यह भाव मनमें रखना चाहिए ।

(२७) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर मेरा मित्र है, इस बातपर पूर्ण विश्वास रखना, तथा उसको अपना पिता, माता, भाई आदि समझना । उसमें और मेरेमें स्थान काल आदिका भेद नहीं है ।

(२८) योग्य कालमें योग्य कार्य करना । कालकी अनुकूलता प्राप्त होनेपर उसको दूर नहीं करना । आजका कर्तव्य कलके लिये नहीं रखना ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२९) स्फूर्ति और जागृति धारण करनेसे उन्नति होती है ।

(३०) दीर्घ आयु ही बडा धन है, उसको और भी बढाना चाहिए । निर्दोष बननेसे उस धनकी वृद्धि होती है ।

(३१) उत्साह, सावधानता, स्फूर्ति, जागृति, स्वसंरक्षणकी भावना और योजनासे उन्नतिका साधन किया जा सकता है ।

(३२) सदा ऊपर उठनेके लिये प्रयत्न होना चाहिए । ऐसा कोई कार्य करना नहीं चाहिए कि जिससे नीचे गिरनेकी संभावना हो सके ।

(३३) इस अमृतमय शरीरमें आकर व्यक्तिकी उन्नति और सब जनताकी उन्नति करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिए। जीवन का यही उद्देश्य है ।

(३४) संपूर्ण अनिष्टोंके साथ युद्ध करके अपना विजय संपादन करना चाहिए ।

(३५) हृदयकी भक्ति और मस्तिष्क का तर्क इन दोनों शक्ति-योंको एक ही सत्कार्य में लगाना चाहिए, तथा इन दोनों का सम विकास करना चाहिए ।

(३६) योगीका सिर सचमुच देवोंका वसतिस्थान है ।

(३७) अपने ही हृदयमें ब्रह्मनगरी है, वह ही स्वर्ग और वह ही अमरावति है । यही देवोंकी अयोध्या है । ब्रह्मज्ञानी इसको ठीक प्रकार जानते हैं ।

(३८) जो आत्मशक्ति का विकास करता है, वह ही स्वकीय गौरव के साथ इस अपनी राजधानीमें प्रवेश करता है ।

(३९) प्राणको अपने स्वाधीन करके मस्तिष्कके ऊपर भेजना चाहिए । जहां विचारों की गति नहीं है, वहां पहुंचना चाहिए। वह ही आत्माका स्थान है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(४०) निश्चय के साथ पुरुषार्थ-प्रयत्नसे, उन्नतिके पथपर चलनेवाला योगी अपनी सब प्रकारसे उन्नति कर सकता है ।

इस प्रकार वेदमंत्रों का आशय है। पाठक इसका वारंवार विचार करें और अपनी उन्नतिके लिये उपयोगी बोध ले लें। तथा प्राप्त बोधके अनुसार आचरण करके अपने और जनताके अभ्युदय और निश्रेयस् प्राप्तिके साधनमें सदा तत्पर रहें।

इस लेखमें थोडेसे वेदमंत्र दिये हैं जिनमें प्राणविषयक उपदेश विशेष रीतिसे स्पष्ट है। परंतु इसके अतिरिक्त अन्य देवताओंके सूक्तोंमें गुप्त रीतिसे जो प्राणविद्याका वर्णन है उसकी भी खोज होनी चाहिए। आशा है कि पाठक स्वयं प्राणविद्या का अभ्यास करके उक्त खोज करनेके पवित्र कार्यमें अपने आपको समर्पित करेंगे ।

स्वयं अनुभव लेनेके विना उक्त प्रकारकी खोज नहीं हो सकती इसलिए प्रथम प्राणायामका साधन स्वयं करना चाहिए। जो सज्जन प्राणायामका साधन स्वयं करेंगे और उच्च भूमिकाओंमें जाकर वहां का प्रत्यक्ष अनुभव करेंगे, उनको ही वैदिक संकेतों का उत्तम ज्ञान होना संभव है। इसलिये पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे प्रथम अनुष्ठानद्वारा स्वयं अनुभव लेनेका यत्न करें, और पश्चात् वैदिक प्राणविद्याकी खोज करके पीछेसे आनेवाले सज्जनोंका मार्ग सुगम करें। हरएकके थोडे थोडे प्रयत्नसे महान् कार्य सिद्ध हो सकता है। आशा है कि पाठक उत्साहके साथ अपूर्व प्रयत्न करेंगे।

उपनिषदोंमें प्राण-विद्या ।

वेदमंत्रोंमें जो अध्यात्मविद्या है, वह ही उपनिषदोंमें बतलाई है। अध्यात्मविद्याके अनेक अंगोंमें प्राणविद्या नामक एक मुख्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंग है । वह जैसा वेदके मंत्रोंमें है वैसा उपनिषदोंके मंत्रोंमें भी है । इससे पूर्व वेदमंत्रोंकी प्राणविद्या सारांश रूपसे बताई है, अब उपनिषदोंकी प्राणविद्या देखना है ।

प्राणकी श्रेष्ठता ।

प्राण सब शक्तियोंमें सबसे श्रेष्ठ शक्ति है, इस विषयमें निम्न वचन देखिये—

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात् । प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि
जायंते । प्राणेन जातानि जीवंति । प्राणं प्रयंत्यभि सं विशंतीति॥
तै० उ० ३।३

" प्राणही ब्रह्म है, क्यों कि प्राणसे ये सब भूत उत्पन्न होते हैं, प्राणसे जीवित रहते हैं और अंतमें प्राणमें ही जाकर मिल जाते हैं । "

यह प्राणशक्तिका महत्त्व है । प्राण सबसे बडी शक्ति है, सब अन्य शक्तियां प्राणपर ही अवलंबित रहतीं हैं । जबतक प्राण रहता है, तबतक अन्य शक्तियां रहतीं हैं । प्राण जाने लगा, तो अन्यशक्तियां प्रथम चलीं जातीं हैं, और पश्चात् प्राण निकल जाता है । न केवल प्राणियोंकोही प्राणका आधार है, परंतु औषधि वनस्पति तथा अन्य स्थिरचर पदार्थ इन सबको भी प्राणशक्तिका ही आधार है । प्राणशक्ति सर्वत्र व्यापक है और सबके अंदर रहती हुई सबका धारण पोषण कर रही है । प्रजापति परमात्माने सबसे प्रथम जो दो पदार्थ उत्पन्न किये उनमेंसे एक प्राण है और दूसरी रयि हैं । इस विषयमें देखिये—

स मिथुनमुत्पादयते । रयिं च प्राणं च ॥ ४ ॥
आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चंद्रमा रयिर्वा ।
एतत्सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ॥५॥
प्रश्न उ० १

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" परमेश्वरने सबसे प्रथम स्त्री-पुरुषका एक जोडा उत्पन्न किया। उसमें एक प्राण है और दूसरी रयि है। जगत् में आदित्य ही प्राण है, और चंद्रमा तथा मूर्तिमान् जगत् दृश्य और अदृश्य पदार्थमात्र हैं, रयि है।"

अर्थात् एक प्राणशक्ति और दूसरी रयिशक्ति सबसे प्रथम उत्पन्न हुई। इसका भाव निम्न कोष्टकसे ज्ञात होगा, देखिये—

प्राण	रयि
आदित्य	चंद्रमा
पुरुष	स्त्री, प्रकृति
Positive	Negative

जगत् के ये मातापिता हैं,इनसे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है। संपूर्ण जगत् में इनका कार्य है। सूर्यमालामें सूर्य प्राण है, अन्य चंद्र आदि रयि है। शरीरमें मुख्य-प्राण प्राण है और अन्य स्थूल शरीर रयि है, देहमें सीधी बगल प्राण है और बाईं बगल रयि है। इस प्रकार एक दूसरेके अंदर रयि और प्राणशक्तियां व्यापक हैं, किसी स्थानपर ये दोनों शक्तियां नहीं है, ऐसा नहीं है। सर्वत्र रहकर सब स्थिरचरमें इनका कार्य हो रहा है; इसको देखनेसे प्राणकी सर्वव्यापकताका पता लग सकता है। इस प्रकार सब देवोंका देव प्राण है, इसलिये कहा है कि-

कतम एको देव इति प्राण इति ॥ बृ० ३।९।९

" एक देव कौनसा है? प्राण है।" अर्थात् सब देवोंमें मुख्य एक देव कौनसा है? उत्तरमें निवेदन है कि प्राणही सबसे मुख्य और श्रेष्ट देव है। और देखिये—

प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ॥ छां० ५।१।१; बृ० ६।१।१

" प्राणही सबसे मुख्य और श्रेष्ट है।" सब अन्य देव इसके आधारसे रहते हैं। तथा—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१) प्राणो वै बलं तत्प्राणे प्रतिष्ठितम् ॥ बृ० ५।१४।४
(२) प्राणो वा अमृतम् ॥ बृ० १।६।३
(३) प्राणो वै सत्यम् ॥ बृ० २।१।२०
(४) प्राणो वै यशो बलम् ॥ बृ० १।२।६

"(१) प्राणही बल है, वह बल प्राणमें रहता है। (२) प्राणही अमृत है। (३) प्राणही सत्य है। (४) प्राणही यश और बल है।" इस प्रकार प्राणका महत्त्व है। प्राणकी श्रेष्ठता इतनी है कि उसका वर्णन शब्दोंसे नहीं हो सकता।

प्राण कहांसे आता है ?

परमात्माने प्राणकी उत्पत्ति की है, इसका वर्णन पूर्व स्थलमें हो चुका है। परंतु इस प्राणशक्तिकी प्राप्ति प्राणियोंको कैसी होती है, इस विषयमें निम्न मंत्र देखने योग्य हैं—

आदित्य उदयन् यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधते॥ यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते ॥६॥ स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते ॥ तदेतदृचाभ्युक्तम् ॥७॥ विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपंतम्॥ सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥८॥ प्रश्न उ० १।६-८

" सूर्यका जब उदय होता है, तब सबही दिशाओंमें सूर्य-किरणोंके द्वारा प्राण रखा जाता है। इस प्रकार सर्वत्र सूर्यकिर-णोंके द्वाराही प्राण पहुंचता है ॥ यह सूर्यही प्राणरूप वैश्वानर अग्नि है। यह सूर्य (विश्व-रूपं) सब रूपका प्रकाशक,(हरिणं) अंधकारका हरण करनेवाला, (जात-वेदसं) धनोंका उत्पादक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक, श्रेष्ठ तेजसे युक्त, सैंकडों प्रकारोंसे सहस्रों किरणोंके साथ प्रकाशनेवाला यह प्रजाओंका प्राण उदयको प्राप्त होता है।"

यह सूर्यका वर्णन बता रहा है कि सूर्यका प्राणके साथ क्या संबंध है। सूर्यकिरणोंके विना प्राणकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इस सूर्यमालिकाका मूल प्राण यह सूर्य देवही है। इसी कारण वेदमंत्रोंमें आयु, आरोग्य, बल आदिके साथ सूर्यका संबंध वर्णन किया है। सूर्यप्रकाशका हमारे आरोग्यके साथ कितना घनिष्ठ संबंध है इसका यहां पता लग सकता है। जो लोग सदा अंधेरे स्थानमें रहते हैं, सूर्यप्रकाशमें क्रीडा नहीं करते, सूर्यके प्रकाशसे अपना आरोग्य नहीं संपादन करते हैं और अपने आरोग्यके लिये वैद्यों, हकीमों और डाक्टरोंके घर भरते रहते हैं, विषरूप दवाइयां पीते हैं, उनकी अज्ञानताकी सीमा कहां है? परमात्माने अपार दयासे सूर्य और वायु उत्पन्न किया है और उनसे पूर्ण आरोग्य संपादन हो सकता है। योग्य रीतिसे प्राणायामद्वारा उनका सेवन किया जायगा,तो स्वभावतः ही आरोग्य मिल सकता है। इतना सस्ता आरोग्य होनेपर भी मनुष्य ऐसी अवस्थातक आपहुंचे हैं कि अनंत संपत्तिका व्यय करनेपर भी उनको आरोग्य नहीं प्राप्त होता। पाठको! देखिये कि वेदके उपदेशोंसे जनता कितनी दूर गयी है। अस्तु। विश्वव्यापक प्राण प्राप्त होनेका मार्ग इस प्रकार है। वह प्राण सूर्यमें केंद्रित हुआ है, वहां से सूर्यकिरणोंद्वारा वायुमें आता है और वायुके साथ हमारे खूनमें जाकर हमारा जीवन बढाता है जो प्राणायाम करना चाहते हैं; उनको इस बातका ठीक ठीक पता होना चाहिये। इसी प्राणका और वर्णन देखिये—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवोंकी घमंड ।

एक समय ऐसा हुआ कि बाह्य सृष्टिमें पृथिवी, आप, तेज, वायु ये देव, तथा शरीरके अंदर वाचा, मन, चक्षु और श्रोत्र ये देव समझने लगे कि हम ही इस जगत्को धारण करते हैं और हमारेसे कोई श्रेष्ठ शक्ति नहीं है। इन देवोंका यह गर्व देखकर प्राण कहने लगा कि, हे देवो ! ऐसी घमंड न कीजिए, मैंही अपने आपको पांच विभागोंमें विभक्त करके इसकी धारणा कर रहा हूं। परंतु इस कथनको उन देवोंने माना नहीं, उस समय मुख्य प्राण वहांसे हटने लगा, तब सब देव कांपने लगे। फिर जब प्राण आगया तब देव प्रसन्न हुए। इससे देवोंको पता लगा कि यह सब प्राणकी शक्ति है कि जिसके कारण हम कार्य कर रहे हैं। हमारी ही केवल शक्तिसे हम इस कार्यको चलानेमें सर्वथा असमर्थ हैं।" इस प्रकार जब देवोंने प्राणकी महिमा विदित की, तब वे प्राणकी स्तुति करने लगे। यह स्तुति निम्न मंत्रोंमें है—

प्राण–स्तुति ।

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुरेष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत् ॥५॥ अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् । ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥ ६ ॥ प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रति जायसे । तुभ्यं प्राणः प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रति तिष्ठसि ॥७॥ देवानामसि वह्नितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा । ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ॥८॥ इंद्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता । त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः॥९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदा त्वमभि वर्षस्यथेमाः प्राण ते प्रजाः। आनंदरूपास्तिष्ठंति कामायान्नं भविष्यतीति ॥ १० ॥ व्रात्यस्त्वं प्राणैक ऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः। वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्वनः ॥ ११ ॥ या ते तनू वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोते या च चक्षुषि। या च मनसि संतता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः ॥ १२ ॥ प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्। मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि इति ॥१३॥ प्रश्न उ. २

"यह प्राण अग्नि, वायु, सूर्य, पर्जन्य,इंद्र, पृथिवी, रयि आदि सब है ॥ जिस प्रकार रथनाभिमें आरे जुडे होते हैं, उसी प्रकार प्राणमें सब जुडा हुआ है ॥ ऋचा, यजु, साम, यज्ञ, क्षत्र और ज्ञान सबही प्राणके आधारसे हैं ॥ हे प्राण ! तू प्रजापति है और गर्भमें तूही जाता है। सब प्रजायें तेरे लिये ही बली अर्पण करती हैं। तूं देवोंका श्रेष्ठ संचालक और पितरोंकी स्वकीय धारणशक्ति है। अथर्वा आंगिरस ऋषियोंका सत्य तपाचरण भी तेरा ही प्रभाव है। तू इंद्र, रुद्र,सूर्य है। तू ही तेजसे तेजस्वी हो रहा है। जब तू वृष्टि करता है, तब सब प्रजायें आनंदित होती हैं, क्योंकि उनको वहुत अन्न इस वृष्टिसे प्राप्त होता है ॥ तू ही व्रात्य एक ऋषि और सब विश्वका स्वामी है, हम दाता हैं और तू हम सबका पिता है। जो तेरा शरीर, वाचा, चक्षु, श्रोत्र और मनमें है, उसको कल्याणरूप करो और हमारेसे दूर न हो। जो कुछ त्रिलोकीमें है वह सब प्राणके वशमें है। माता के समान हमारा संरक्षण करो और शोभा तथा प्रज्ञा हमें देओ"।

यह देवोंका बनाया प्राणसूक्त देखनेसे प्राणका महत्त्व ध्यानमें आ सकता है। यह सूक्त कई दृष्टियोंसे विचार करने योग्य है। पहिली वात जो इसमें कही है वह यह है कि चक्षु श्रोत्र आदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इंद्रियां शरीरमें तथा सूर्य चंद्र वायु आदि जगत्में देव हैं और ये सब प्राणके वशमें हैं। प्राणकी शक्ति इनके अंदर जाती है और इनके द्वारा कार्य करती है। जिस प्रकार प्राणकी शक्ति आंखमें जाकर आंखको देखनेके कार्य करनेके लिये समर्थ बनाती है, उसी प्रकार सूर्यके अंदर विश्वव्यापक प्राणशक्ति रहकर प्रकाश कर रही है। इसलिये आंखकी दृष्टि और सूर्यकी प्रकाशशक्ति न आंख और सूर्यकी है प्रत्युत प्राणकी है। इसी प्रकार अन्य इंद्रियों और देवताओंके विषयमें जानना उचित है। देव शब्द जैसा शरीरमें इंद्रियवाचक है, उसी प्रकार जगत्में अग्नि वायु आदि देवताओंका भी वाचक है। पाठक इस दृष्टिको धारण करके अग्नि आदि देवताओंके सूक्तोंका विचार करें।

उक्त सूक्तमें दूसरी बात यह है कि, अग्नि, सूर्य, इंद्र, वायु, पृथिवी, रुद्र आदि शब्द प्राणवाचक होनेसे इन देवताओंके सूक्तोंमें भी प्राणविद्या प्रकाशित हुई है। इसलिये जो सज्जन अग्नि आदि सूक्तोंका विचार करते हैं, वे उक्त सूक्तोंमें विद्यमान प्राणविद्याका भी विचार करें। अर्थात् अग्नि सूर्य आदि देवताओंके नामोंका "प्राण" अर्थ समझकर उन सूक्तोंका अर्थ करें। जो सूक्त सामान्य अर्थवाले होंगे उनके अर्थ इस प्रकार हो सकते हैं। देखिये—

प्राणरूप अग्नि।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे ॥
यशसं वीरवत्तमम् ॥ ऋ० १।१।३

"(अग्निना) प्राणसे (रयिं) शोभा और (पोषं) पुष्टि (दिवे दिवे) प्रतिदिन (अश्नवत्) प्राप्त होती है और वीर्ययुक्त यशभी मिलता है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह अत्यंत स्पष्ट ही है कि प्राण चले जायगा तो न तो शरीरकी शोभा बढेगी और न शरीरकी पुष्टि होगी, फिर यश मिलना तो दुरापास्त ही है। इस प्रकार बहुत विचार हो सकता है। यहां उतना स्थान नहीं है, इसलिये यहां केवल दिग्दर्शन ही किया है। वेदके गूढ रहस्यों का इस प्रकार पता लग जाता है, इसलिये पाठकोंको उचित है कि वे वेदका स्वाध्याय प्रतिदिन किया करें। स्वाध्याय करते करते किसी न किसी समय वैदिक दृष्टि प्राप्त होगी और पश्चात् कोई कठिनता नहीं रहेगी।

उक्त सूक्तोंमें तीसरी बात यह है कि अग्नि आदि शब्दोंके गूढ अर्थोंसे प्राणविद्याका महत्त्व उसमें वर्णन किया है। इसका थोडासा स्पष्टीकरण देखिये—

(१) देवानां वह्नितमः असि।=प्राण "इंद्रियोंको" चलानेवाला है, "सूर्यादिकोंको" चलाता है, प्राणायामद्वारा "विद्वान्" उन्नति प्राप्त करते हैं।

(२) पितॄणां प्रथमा स्वधा असि।=संपूर्ण पालक शक्तियों में सबसे श्रेष्ठ और (प्रथमा) अव्वल दर्जेकी पालकशक्ति प्राण है और वह ही (स्व-धा) आत्मत्वकी धारणा करती है।

(३) ऋषीणां सत्यं चरितं असि।=सप्त ऋषियोंका सत्य (चरितं) चालचलन अथवा आचरण प्राण ही करता है। दो आंख, दो कान,दो नाक और एक मुख ये सप्त ऋषी हैं,ऐसा वेद और उपनिषदोंमें कहा है।

(४) अथर्वांगिरसां चरितं असि।=(अ-थर्वा, अंगिरसां) स्थिर अंगोंके रसोंका (चरितं) चलन अथवा भ्रमण प्राण ही करता है। प्राणके कारण पोषक रस सब अंगोंमें भ्रमण करता है और सर्वत्र पहुंचकर सर्वत्र पुष्टि करता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस प्रकारका भाव उक्त सूक्तके वाक्योंमें गुप्त रीति से है। प्रत्येक शब्दका आशय देखनेसे इसका पता लग सकता है। साधारण सूचना देनेके लिये यहां उपयोगी होनेवाले शब्दार्थ नीचे देता हूं- (१) अग्निः=गति देनेवाला, उष्णता और तेज उत्पन्न करनेवाला; (२) सूर्य=प्रेरणा करनेवाला, प्रकाश देनेवाला; (३) पर्जन्यः (पर-जन्यः)=पूर्णता करनेवाला; (४) मघवान्=महत्त्वसे युक्त; (५) वायुः=हिलानेवाला और अनिष्टको दूर करनेवाला; (६) पृथिवी=विस्तृत, आधार देनेवाली; (७) रयिः=तेज, संपत्ति, शरीरसंपत्ति आदि; (८) देवः=क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, तेज, आनंद, हर्ष, निद्रा, उत्साह, स्फूर्ति आदि देनेवाला, दिव्य;(९) अ-मृत=अमरत्वसे युक्त; (१०) प्रजा-पतिः=चक्षु आदि सब प्रजाओंका पालक, प्रजा उत्पन्न करनेवाला; (११) वह्नितमः=अत्यंत प्रेरक; (१२) इंद्रः=ऐश्वर्यवान्, भेदन करनेवाला; (१३) रुद्रः=(रुत्-रः) शब्दका प्रेरक; (रुद्-रः) दुःखको दूर करके आरोग्य देनेवाला; (१४) व्रात्यः=(व्रत) नियमके अनुसार आचरण करनेवाला। इस प्रकार शब्दोंके अर्थ देखनेसे पता लगेगा, कि उक्त शब्दोंद्वारा प्राणकी किस शक्तिका कैसा उत्तम वर्णन किया गया है। वैदिक शब्दोंके गूढ आशय देखनेसेही वेदकी गंभीरता व्यक्त होती है। आशा है कि पाठक उक्त प्रकार उक्त सूक्तका विचार करेंगे।

इस प्रकार प्राणकी मुख्यता और श्रेष्ठता है और वह प्राण सूर्यकिरणोंके द्वारा प्राणियोंतक पहुंचता है। प्राण सूर्यकिरणों से वायुमें आता है, वायु श्वाससे अंदर जाता है, उस समय वह मनुष्यके शरीरमें पहुंचता है। प्राणायामके समय इस प्रकार इस प्राणका महत्त्व ध्यानमें धरना चाहिए।

६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राणका प्रेरक ।

केन उपनिषद्में प्राणके प्रेरकत्वका विचार किया है । प्राणके आधीन संपूर्ण जगत् है, तथापि प्राण को प्रेरणा देनेवाला कौन है ? जिस प्रकार दीवान के आधीन सब राज्य होता है, उसी प्रकार प्राणके आधीन सब इंद्रियादिकोंका राज्य है । परंतु राजा की प्रेरणासे दीवान कार्य करता है,उस प्रकार यह प्राणका प्रेरक कौन है? यह प्रश्नका तात्पर्य है ।

केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः ॥ केन उ. १।१

" किससे नियुक्त होता हुआ प्राण चलता है?" अर्थात् प्राण की प्रेरक शक्ति कौनसी है ? इसके उत्तरमें उपनिषद् कहता है कि—

स उ प्राणस्य प्राणः ॥ केन उ० १।२

" वह आत्मा प्राणका प्राण है " अर्थात् प्राणका प्रेरक आत्मा है । इसका और वर्णन देखिये—

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्राणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥
केन उ० १।८

" जिसका जीवन प्राणसे नहीं होता, परंतु जिससे प्राणका जीवन होता है, वह (ब्रह्म) आत्मा है, ऐसा तू समझ लो । यह नहीं कि जिसकी उपासना की जाती है । "

अर्थात् आत्माकी शक्तिसे प्राण अपना सब कारोबार चला रहा है, इसलिये प्राणकी प्रेरक शक्ति आत्मा ही है । इस विषयमें ईशोपनिषद्का मंत्र देखने योग्य है—

योऽसावसौ पुरुषः सोहमस्मि ॥ ईश. १६
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ॥ वा० यजु० १७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"जो यह (असौ) असु अर्थात् प्राणके अंदर रहनेवाला पुरुष है, वह मैं हूं ।"

मैं आत्मा हूं, मेरे चारों ओर प्राण विद्यमान है और मैं उसका प्रेरक हूं। मेरी प्रेरणासे प्राण चल रहा है और सब इंद्रियों की शक्तियोंको उत्तेजित कर रहा है। इस प्रकार विश्वास रखना चाहिए और अपने प्रभावका गौरव देखना चाहिए। इस विषयमें ऐतरेय उपनिषद्का वचन देखिये—

नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुः ॥
ऐ० उ० १।१।४

वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् ॥
ऐ० उ० १।२।४

"नासिकाके स्थानमें इंद्रिय हो गये, नासिकासे प्राण और प्राणसे वायु हो गया।" अर्थात् प्राण से वायु हो गया। आत्माकी प्रबल इच्छाशक्ति थी कि मैं सुगंधका आस्वाद ले लूं। इस इच्छाशक्तिसे नासिकाके स्थानमें दो छेद बन गये, ये ही नासिकाके दो छेद हैं। इस प्रकार नाक बनते ही प्राण हुआ और प्राणसे वायु बना है । आत्माकी इच्छाशक्ति कितनी प्रबल है इसकी कल्पना यहां स्पष्ट हो सकती है। इस प्रकार शरीरमें छेद करनेवाली शक्ति जो शरीरके अंदर रहती है वह ही आत्मा है। इसको इंद्र कहते हैं क्यों कि यह आत्मा (इदं-द्र) इस शरीरमें सुराख करनेकी शक्ति रखता है। इसकी प्रबल इच्छाशक्तिसे विलक्षण घटनायें यहां सिद्ध हो रहीं हैं, इसका अनुभव अपने शरीरमें ही देखा जा सकता है। जो ऐसा समर्थ जीवात्मा है, वह ही प्राणका प्रेरक है। इसका सेवक प्राण है, यह प्राण वायुका पुत्र है, क्यों कि ऊपर दिये मंत्रमें कहा है कि "वायु प्राण बनकर नासिकामें प्रविष्ट हुआ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है।" इसलिये यह प्राण वायुका पुत्र है। यही "मारुती" है, मारुतीका अर्थ 'मारुत्' अर्थात् वायुका पुत्र। विश्वमें व्यापनेवाला पवन वायु है, उसका एक अंश शरीरमें अवतार लेता है, इसलिये इसको 'पवनात्मज' कहते हैं। यही हनुमान्, मारुती, राम-सखा है। अवतारकी मूल कल्पना यहां व्यक्त हो सकती है। विश्वव्यापक शक्तियां अवताररूपसे कर्मभूमिमें अर्थात् इस देहमें आकर कार्य करतीं हैं। वायुके पुत्रोंकी जो कल्पना पौराणिक वाङ्मयमें है वह यही है। इसको चिरंजीव कहा है, इसका कारण इस लेखमें पूर्व स्थलमें बतायाही है। प्राणके अमरत्वके साथ इसका चिरंजीवत्व सिद्ध होना है। इस प्रकार यह हनुमानजीका रूपक है। इसका संपूर्ण वर्णन किसी अन्य स्थानमें किया जायगा। यहां संक्षेपसे सूचना मात्र लिखा है। अर्थात् हनुमानजीकी उपासना मूलमें प्राणोपासना ही है। यह "दशरथके राम" का सहायक है, दश इंद्रियोंके रथमें जो आनंदरूप आत्मा है, उसका यह प्राण नित्य सहायक ही है। तथा "दशमुखकी लंका" को जलानेवाला है। दश इंद्रियोंसे मुख्यतया भोगमें जो प्रवृत्तियां होतीं हैं, उसका प्राणायामके अभ्याससे दहन होता है। इत्यादि विचारसे पूर्वोक्त कल्पना अधिक स्पष्ट होगी। पाठक इसका विचार करें। पूर्वोक्त उपनिषद्में "प्राणका प्रेरक आत्मा" कहा है, और उक्त इतिहासमें "वायुपुत्रका प्रेरक दाशरथी राम" कहा है, दोनोंका तात्पर्य एकही है। सूज्ञ वाचक विचारके द्वारा इसके मूल भावको जान सकते हैं।

पूर्वोक्त ईशोपनिषद् के वचनमें "असौ अहं" शब्द आगये हैं। "प्राणके अंदर रहनेवाला मैं आत्मा" यही भाव बृहदारण्यक के निम्न वचनमें है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यः प्राणे तिष्ठन्प्राणादंतरो यं प्राणो न वेद यस्य प्राणः शरीरं यः प्राणमंतरो यमयति,एष त आत्मा अंतर्याम्यमृतः॥
बृ. ३।७।१६

"जो प्राणके अंदर रहता है, प्राणके अंदर रहनेपर भी जिसको (प्राणः न वेद) प्राण जानता नहीं, जिसका शरीर प्राण है, जो अंदरसे (प्राणं यमयति) प्राणका नियमन करता है, (एषः) यह तेरा अंतर्यामी अमर आत्मा है।"

प्राणके अंदर रहनेवाला और प्राणका नियमन करनेवाला यह आत्मा है; इस कथनके अनुसार आत्माका प्राणके साथ नित्यसंबंध है, यह बात स्पष्ट होती है। 'मैं आत्मा हूं, प्राण मेरा अनुचर है और प्राणके आधीन संपूर्ण इंद्रियां और शरीर है। यह मेरा वैभव और साम्राज्य है। इसका मैं सच्चा सम्राट् बनूंगा और विजयी तथा यशस्वी बनूंगा,' यह वैदिक धर्मकी आदर्श कल्पना है। इस प्राणका वर्णन अन्य वचनोंमें हुआ है-

प्राणो वै रं प्राणे हीमानि भूतानि रमंते ॥ बृ. ५।१२।१
प्राणो वा उक्थं प्राणे हीदं सर्वमुत्थापयति ॥१॥
प्राणो वै यजुः प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि युज्यंते॥२॥
प्राणो वै साम प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि सम्यंचि॥३॥
प्राणो वै क्षत्रं प्राणो हि वै क्षत्रं त्रायते ॥४॥ बृ०उ.५।१३

"प्राण 'र' है, क्योंकि सब भूत प्राणमें रमते हैं। प्राण 'उक्थ' है, क्योंकि प्राण सबको उठाता है। प्राण 'यजु' है, क्योंकि प्राण में सब भूत संयुक्त होते हैं। प्राण 'साम' है, क्योंकि सब भूत प्राणमें सम्यक् रीतिसे रहते हैं। प्राण 'क्षत्र' है, क्योंकि प्राणही क्षतों अर्थात् कष्टोंसे बचाता है।"

इसका प्रत्येक मुख्य शब्द प्राणकी शक्तिका वर्णन कर रहा है। 'साम, यजु' आदि शब्द अन्यत्र वेदवाचक होते हुए भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहां केवल गुणवाचक हैं। इस शब्दप्रयोगसे स्पष्ट पता लग जाता है कि वैदिक समयमें शब्दोंका विशेष रीतिसे भी उपयोग होता था और सामान्य रीतिसे भी होता था। यहां सामान्य रीतिका प्रयोग है। जहां सामान्य रीतिसे प्रयोग होगा, वहां उसका यौगिक अर्थ करना चाहिये और जहां विशेष रीतिसे प्रयोग होगा, वहां योग-रूढिका अर्थ समझना चाहिए। इस प्रकार एकही शब्द के दोनों अर्थ होनेपर भी अर्थविषयक ठीक व्यवस्था लगाई जा सकती है। आशा है कि पाठक इस व्यवस्थाको वेदमंत्रोंमें देखेंगे। यह बात वेदका अर्थ करनेके समय विशेष महत्त्वकी है, इसलिये यहां लिखी है।

अंगोंका रस।

शरीरके अंगोंमें एक प्रकारका जीवनका आधाररूप रस है। इसका वर्णन निम्न मंत्रमें है—

आंगिरसोऽगानां हि रसः, प्राणो वा अंगानां रसः ...
... ... तस्माद्यस्मात्कस्माच्चांगात् प्राण उत्क्रामति,
तदेव तच्छुष्यति॥ बृ० १।३।१९

"प्राण ही अंगोंका रस है, इसलिये जिस अंग से प्राण चले जाता है, वह अंग सूख जाता है।"

वृक्षोंमें भी यही बात दिखाई देती है। यह अंगरसका महत्त्व है। जीवात्माकी इच्छासे प्राण के द्वारा यह रस सब शरीरमें घुमाया जाता है और प्रत्येक अंगमें आरोग्य और बल बढाया जाता है। प्रबल इच्छाशक्तिद्वारा आरोग्य संपादन करनेका उपाय इससे विदित होता है। इच्छाशक्ति और प्राण इनका बल बढानेसे उक्त सिद्धि होती है। आत्माकी प्रेरणा प्राणमें होती है, प्राणसे मन संलग्न रहता है, मनसे इच्छाशक्तिका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नियमन होता है, इच्छासे रुधिरमें परिणाम होकर इसके द्वारा संपूर्ण शरीरमें इष्ट कार्य होता है। देखिये —

> पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि संपद्यते, मनः प्राणे,
> प्राणस्तेजसि, तेजः परस्यां देवतायाम् ॥छां० उ० ६।८।६

"पुरुषकी वाणी मनमें, मन प्राणमें, प्राण तेज में और तेज परदेवतामें संलग्न होता है।" यही परंपरा है। परदेवताका तात्पर्य यहां आत्मा है। प्राणविद्याकी परम सिद्धि इस प्रकारसे सिद्ध होती है।

प्राण और अन्य शक्तियां ।

प्राणके आधीन अनेक शक्तियां हैं, उनका प्राणके साथ संबंध देखनेके लिये निम्न मंत्र देखिये—

> प्राणो वाव संवर्गः। स यदा स्वपिति, प्राणमेव
> वागप्येति, प्राणं चक्षुः, प्राणं श्रोत्रं,प्राणं मनः, प्राणो
> ह्येवैतान् संवृङ्क्ते ॥३॥ छां० ४।३।३

"जब यह सोता है तब वाक्, चक्षु, श्रोत्र, मन आदि सब प्राणमेंही लीन होतीं है, क्यों कि प्राणही इनका संवारक है।"

जिस प्रकार सूर्य उगनेके समय उसके किरण फैलते हैं और अस्तके समय फिर अंदर लीन होते हैं, इसी प्रकार प्राण-रूपी सूर्यका जागृतिके प्रारंभ में उदय होता है, उस समय उसकी किरणें इंद्रियादिकोंमें फैलतीं हैं और निद्राके समय फिर उसीमें लीन होतीं हैं। इस प्रकार प्राणका सूर्य होना सिद्ध होता है। इसका सादृश्य एक अंशमें है, यह बात भूलना नहीं चाहिये। सूर्यके समान प्राणकाभी कभी अस्त नहीं होता, परंतु अस्त और उदय ये शब्द हमारी अपेक्षासे उसमें प्रयुक्त हो रहे हैं। इस विषयमें निम्न वचन और देखिये —

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पतंग।

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो, दिशं दिशं पतित्वा, अन्यत्रायतनमलब्ध्वा, बंधनमेवोपश्रयत, एवमेव खलु, सोम्य, तन्मनो दिशं दिशं पतित्वा अन्यत्रायतनमलब्ध्वा, प्राणमेवोपश्रयते, प्राणबंधनं हि सोम्य मनः ॥

छां० उ० ६।८।२

"जिस प्रकार पतंग, डोरीसे बंधा हुआ, अनेक दिशाओंमें घूमकर, दूसरे स्थानपर आधार न मिलनेके कारण, अपने मूल स्थानपरही आजाता है; इसी प्रकार निश्चयसे, हे प्रिय शिष्य ! वह मन अनेक दिशाओंमें घूम धाम कर, दूसरे स्थान पर आश्रय न मिलनेके कारण, प्राणकाही आश्रय करता है, क्यों कि, हे प्रिय शिष्य! मन प्राणके साथही बंधा है।"

इस प्रकार प्राणका मनके साथ संबंध है। यही कारण है कि प्राणायामसे प्राण बलवान् होनेपर मन भी बलिष्ठ होता है, प्राणका निरोध होनेसे मन का संयम होता है। प्राणकी चंचलता से मन चंचल होता है और प्राणकी स्थिरतासे मन भी स्थिर होता है। इससे प्राणायामका महत्त्व और उसका मनके संयम के साथ संबंध विदित हो सकता है।

प्राणसे मनका संयम होनेके कारण अन्य इंद्रियां भी प्राणके निरोधसे स्वाधीन होतीं हैं, यह स्पष्ट ही है; क्यों कि प्राणसे मनका संयम और मनके वश होनेसे अन्य इंद्रियोंका वश होना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार प्राणायामसे संपूर्ण शक्तियां वशीभूत होतीं हैं। यही भाव निम्न वचनमें गुप्त रीतिसे है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वसु रुद्र आदित्य।

प्राणा वाव वसव एते हीदं सर्वं वासयंति ॥१॥
प्राणा वाव रुद्रा एते हीदं सर्वं रोदयंति ॥२॥
प्राणा वावादित्याः एते हीदं सर्वमाददते ॥३॥
छां० उ० ३।१६

"प्राण वसु हैं क्यों कि ये सबको वसाते हैं। प्राण रुद्र हैं, क्यों कि इनके चले जानेसे सब रोते हैं। प्राण आदित्य हैं, क्योंकि ये सबको स्वीकारते हैं।"

इस स्थानपर "प्राणा वाव रुद्राः एते हीदं सर्वं रोदनं द्रावयन्ति" अर्थात् "प्राण रुद्र हैं, क्योंकि ये इस सब दुःखको दूर करते हैं।" ऐसा वाक्य होता तो प्राणका दुःखनिवारक कार्य व्यक्त हो सकता था। परंतु उपनिषद्में "एते हीदं सर्वं रोदयंति।" अर्थात् ये प्राण जब चले जाते हैं, तब वे सबको रुलाते हैं, इतना प्राणोंपर प्राणियोंका प्रेम हैं, ऐसा लिखा है। शतपथादिमें भी रुद्रका रोदनधर्मही वर्णन किया है, परंतु दुःखनिवारक धर्म भी उनमें उससे अधिक प्रबल है। इसका पाठक विचार करें। इस प्रकार प्राणका महत्त्व होनेसे ही कहा है-

प्राणो ह पिता, प्राणो माता, प्राणो भ्राता,
प्राणः स्वसा, प्राण आचार्यः, प्राणो ब्राह्मणः॥ छां. उ. ७।१५।१

"प्राण ही माता, पिता, भाई, बहन, आचार्य, ब्राह्मण आदि है।" ये शब्द प्राणका महत्त्व बता रहे हैं- (१) माता-मान्य हित करनेवाला; (२) पिता-पाता, पालक, संरक्षक; (३) भ्राता-भरण पोषण करनेवाला; (४) स्वसा-(सु-असा) उत्तम प्रकार रखनेवाला; (५) आचार्य-आत्मिक गुरु है, क्योंकि प्राणके आयामसे आत्माका साक्षात्कार होता है इसलिये; (६)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्राह्मणः- यह ब्रह्मके पास ले जानेवाला है ।

ये शब्दोंके मूलभाव यहां प्राणके गुण बता रहे हैं । यह प्राण-वर्णन है। इतना प्राणका महत्त्व है,इसलिये अपने प्राणके विषयमें कोईभी उदासीन न रहे । सब लोक स्वर्ग प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, वह स्वर्ग प्राणही है । देखिये—

तीन लोक ।

वागेवायं लोको मनो अंतरिक्षलोकः प्राणोऽसौ लोकः॥

बृ० १।५।४

" वाणी यह पृथ्वीलोक है, मन अंतरिक्षलोक है और प्राण ही स्वर्गलोक है । "

इसलिये ही प्राणायामके अभ्याससे स्वर्गधामकी प्राप्ति होती है । देखिये प्राणकी कितनी श्रेष्ठता है !! इस प्रकार उपनिषदोंमें प्राणविद्या है। अब विस्तार करनेकी कोई जरूरत नहीं है । संक्षेपसे आवश्यक बातोंका उल्लेख यहां किया है । इससे उपनिषदों की प्राण विद्याकी कल्पना हो सकती है । जो पाठक इसकी और अधिक गहराई देखना चाहते हैं, वे स्वयं उपनिषदोंमेंही इसको देख सकते हैं । आशा है कि पाठक इस प्रकार इस विद्याका अभ्यास करेंगे ।

प्राणायामसे बहुत प्रकारकी शक्तियां प्राप्त होतीं हैं, ऐसा प्राण के विविध शास्त्रोंमें लिखा है । प्राणायामका अभ्यास करनेसेही उक्त शक्तियोंकी प्राप्ति होनाही संभव है । अभ्यास के विना उन्नति की प्राप्ति सर्वथाही असंभव है । प्राणायामका अभ्यास करनेके लिये प्राणकी शक्तिकी कल्पना प्रथम होनेकी आवश्यकता है । वह कार्य सिद्ध होनेके लिये इस पुस्तकका उपयोग हो सकता है । इस पुस्तकको अच्छी प्रकार पढनेके पश्चात् मनन-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वारा अपनी प्राणशक्तिका आकलन करना चाहिए। अपने प्राण का यह स्वरूप है, उसका यह महत्त्व है और इसकी उपासनासे इस प्रकार लाभ हो सकता है, इत्यादि विषयकी उत्तम कल्पना इस पुस्तकके अभ्याससे होगी। इतनी कल्पना दृढ होनेके पश्चात् प्राणायामका अभ्यास करनेसे बहुत लाभ हो सकता है। इस प्राणायामके अनुष्ठानका प्रकार विस्तारपूर्वक उत्तरार्ध में लिखा है। इसके अभ्यासके पश्चात् पाठक उस पुस्तकको अवश्य पढें और उस प्रकार अनुष्ठान करके अपनी उन्नतिका साधन करें।

व्यक्तिमें शांति, जनतामें शांति और जगत्में शांति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक प्राण-विद्या ।

विषयसूची ।

विषय	पृष्ठ
अवैतनिक महावीरोंका स्वागत	२
वैदिक प्राणविद्या	३
प्रारंभ, प्राणसूक्त	,,
ईश्वर सबका प्राण है	,,
अंतरिक्षस्थ प्राण, प्राणका कार्य	५
वैयक्तिक प्राण	७
पूरक, कुंभक, रेचक और बाह्यकुंभक	,,
प्राणका औषधिगुण	९
प्राण और रुद्र	,,
सर्वरक्षक प्राण	१०
प्राण की उपासना	११
सत्येसे बालप्राप्ति	१२
सूर्यचंद्रमें प्राण	,,
प्राणोंका प्राण	१३
धान्यमें प्राण	,,
पृथिवीधारक बैल	१४
प्राणसे पुनर्जन्म	,,
आथर्वण-चिकित्सा	१५
मनुष्यज औषधि	१६
दैवी औषधि	,,
आंगिरसी औषधि	१७
आथर्वण औषधि	,,
प्राणकी वृष्टि	१८
प्राणको स्वाधीन करनेवालेकी योग्यता	१८
पितापुत्रसंबंध	१९
हंस	२०
सोऽहं, अहं सः	२१
ब्रह्माका वाहन हंस	,,
कमलासन	,,
मानस-सरोवर	२२
प्राणचक्र	२३
नमन और प्रार्थना	२४
जागनेवाला प्राण	२५
प्राणसूक्तका सारांश	२६
ऋग्वेदमें प्राणविषयक उपदेश	२८
असुनीति, प्राणनीति	२९
यजुर्वेदमें प्राणविषयक उपदेश	३१
प्राणकी वृद्धि	,,
गायन और प्राणशक्ति	३३
प्राणकी प्रतिष्ठा	३४
प्राण राजा	३६
सत्कर्म और प्राण	३७
प्राणदाता अग्नि	३८
भौवायन प्राण	,,
प्राणके साथ इंद्रियोंका विकास	३९
विश्वव्यापक प्राण	४०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषय	पृष्ठ
लडनेवाला प्राण	४१
इडा पिंगला सुषुम्ना	४२
गंगा यमुना सरस्वती	,,
सरस्वतीमें प्राण	४३
भोजन और प्राण	४४
सहस्राक्ष अग्नि	,,
सामवेद, प्राणवेद	४५
अथर्ववेदका प्राणविषयक उपदेश	४६
मैं विजयी हूं	४७
पंचमुखी महादेव	४८
ग्यारह रुद्र, पशुपति	,,
पंच अग्नि, प्राणाग्निहोत्र	४९
प्राणका मीठा चाबुक	५०
अपनी स्वतंत्रता और पूर्णता	५१
प्राणकी मित्रता	५२
व्रात्यके सप्त प्राण	५३
समयकी अनुकूलता	५४
प्राणरक्षक ऋषी	५५
वृद्धताका धन	५६
बोध और प्रतिबोध	५७
उन्नति ही तेरा मार्ग है	,,
यमके दूत	५९
अथर्वाका सिर	६१
ब्रह्मलोककी प्राप्ति	६४
देवोंका कोश	६४
ब्रह्मकी नगरी	६५
अयोध्या नगरी	६६
अयोध्याका राम	६७
वेदोंके प्राणविषयक उपदेशका सारांश	६८
उपनिषदोंमें प्राणविद्या	७२
प्राणकी श्रेष्ठता	७३
रयि और प्राण	,,
प्राण कहांसे आता है	७५
सूर्य और प्राण	,,
देवोंकी घमंड	७७
प्राणस्तुति	,,
प्राणरूप अग्नि	७९
देव, पितर, ऋषि, अंगिरा	८०
प्राणका प्रेरक	८२
मारुती, वायुपुत्र,	८४
दाशरथी राम	,,
दशमुखकी लंका	,,
अंगोंका रस	८६
प्राण और अन्य शक्तियाँ	८७
पतंग	८८
वसु, रुद्र, आदित्य	८९
तीन लोक	९०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

योगसाधन-माला।

संध्योपासना।

योगकी दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया। (इसमें हमारा 'संध्या-का अनुष्ठान' यह पुस्तक संमिलित है) मू. १॥) डेढ रु. डा.व्य.।=)

ब्रह्मचर्य।

इस सचित्र पुस्तकमें "अथर्ववेदीय ब्रह्मचर्य-सूक्त" का विवरण है। ब्रह्मचर्य-साधनके योगासन तथा वीर्यरक्षणके अनुभवसिद्ध उपाय इस पुस्तकमें दिये हैं। मू. १) रु. डा. व्य.।-)

वैदिक प्राणविद्या।

प्राणायाम करने के समय जिस प्रकार मनकी भावना रखनी चाहिये, उसका वर्णन इस पुस्तकमें है। मू० ॥) डा. व्य.।-)

आसन।

इसमें आसनोंका वर्णन चित्रोंके समेत है। मू. २) रु. डा. व्य. ।≡) आसनोंका चित्रपट। २० " × ३० " इंच कागज पर सब आसन दिखाये दिये गये हैं। मू. ≡) डा. व्य -)

योगसाधनकी तैयारी।

योगाभ्याससे अपनी उन्नति करनेका पुस्तक मू.।॥) डा. व्य.।)

सूर्यभेदन व्यायाम।

(सचित्र) बलवर्धक योगके व्यायाम। मू. ॥) डा. व्य. =)

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा.)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संपूर्ण

महाभारत ।

अब संपूर्ण १८ पर्व महाभारत छप चुका है । सजिल्द अथवा विनाजिल्द जैसा आप चाहते हैं, वैसा तैयार है । इस महाभारत का मूल्य विनाजिल्द ६०) रु० और सजिल्द ६५) रु० रखा गया है । जो ग्राहक सब मूल्य म० आ० द्वारा पेशगी भेज देंगे, उनके लिये रेलसे भेजनेका व्यय माफ होगा । आप अपना रेलका स्टेशन लिखिये । इस स्टेशनपर हम रेलवे पार्सल द्वारा यह ग्रंथ भेजेंगे, जिससे आपको सब अंक सुरक्षित पहुंचेंगे । यदि रेलवे स्टेशन आपके पास नहीं है, तो डाकद्वारा भेज देंगे । रुपया म. आर्डरसे भेज दें, जिसे आधा डाकव्यय माफ होगा । वी. पी. से मंगवायेंगे तो सब डाकव्यय आपको देना होगा

महाभारतके फुटकर पर्वोंका (विनाजिल्द) डा. व्य. सहित मूल्य निम्न लिखित है-आदिपर्व ६॥≡) रु; सभापर्व ३॥) रु.; वनपर्व ९=) रु.; विराटपर्व २) रु०; उद्योगपर्व ५॥=) रु.; भीष्म-पर्व ४॥|≡)रु.;द्रोणपर्व ८॥) रु.; कर्णपर्व ३॥|)रु.; शल्यपर्व ३॥-) रु.; सौप्तिकपर्व ॥|-) रु.; स्त्रीपर्व ॥|-) रु.; शांतिपर्व १२) रु.; अनुशासनपर्व ६॥≡)रु.; आश्वमेधिकपर्व ३॥-) रु.; आश्रमवा-सिकपर्व १) रु.; मौसल-महाप्रास्थानिक-स्वर्गारोहणपर्व ॥|-) रु.

[सूचना-महाभारतका कोईभी फुटकर पर्व आप मंगवा सकते हैं । डाकव्ययसहित मूल्य भेज दें, जिससे आपका अधिक लाभ होगा ।] बडा सूचीपत्र और नमुनापृष्ठ मंगवाइये ।

मंत्री- स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा.)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कृत-पाठ-माला ।

चोवीस पुस्तकोंका मू० ६॥)और डा०व्य० ।॥-); बारह पुस्तकोंका मूल्य ४) और डा. व्य. ॥); प्रति भागका मूल्य ।=) छः आने और डा. व्य. -) एक आना । अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति ।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

१ प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग । इन भागोंमें संस्कृतके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है ।

२ चतुर्थ भाग । इस चतुर्थ भागमें संधिविचार बताया है ।

३ पंचम और षष्ठ भाग । इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया है ।

४ सप्तम से दशम भाग । इन चार भागोंमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसलिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है ।

५ एकादश भाग । इस भागमें "सर्वनाम" के रूप बताये हैं ।

६ द्वादश भाग । इस भागमें समासोंका विचार किया है ।

७ तेरहसे अठारहवें भागतकके ६ भाग । इन छः भागोंमें क्रियापद-विचार की पाठविधि बताई है ।

८ उन्नीससे चोवीसवें भागतकके ६भाग। इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है ।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे, उनको अल्प परिश्रमसे बडा लाभ हो सकता है ।

मंत्री–स्वाध्याय–मंडल, औंध, (जि०सातारा)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कृत-पाठ-माला ।

चोवीस पुस्तकोंका मू० ६।।) और डा० व्य० ।।।-); बारह पुस्तकों का मूल्य ४) और डा. व्य. ।।); प्रति भागका मूल्य ।=) छः आने और डा. व्य. -) एक आना । अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति ।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

१ प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग । इन भागोंमें संस्कृतके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है ।

२ चतुर्थ भाग । इस चतुर्थ भागमें संधिविचार बताया है ।

३ पंचम और षष्ठ भाग । इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया है ।

४ सप्तम से दशम भाग । इन चार भागोंमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसलिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है ।

५ एकादश भाग । इस भागमें "सर्वनाम" के रूप बताये हैं ।

६ द्वादश भाग । इस भागमें समासोंका विचार किया है ।

७ तेरहसे अठारहवें भागतकके ६ भाग । इन छः भागोंमें क्रियापद-विचार की पाठविधि बताई है ।

८ उन्नीससे चोवीसवें भागतकके ६भाग। इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है ।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे, उनको अल्प परिश्रमसे बडा लाभ हो सकता है ।

मंत्री-स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि०सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
भारत-मुद्रणालय, औंध, (जि. सातारा.)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ॐ

शिवसङ्कल्पका विजय

लेखक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडळ, औंध, (जि० सातारा.)

मूल्य ॥)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुद्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आगम-निबंध-माला। ग्रंथ ९

ॐ

शिवसंकल्पका विजय।

[इसमें निम्न निबंध हैं— (१) शिवसंकल्प, (२) मनकी विलक्षण शक्ति, (३) मनका वेग, (४) स्वप्नका अनुभव, (५) अपने प्रभावका गौरव, (६) पुरुषार्थके लिये उत्साहमय प्रेरणा, (७) शत्रु कौन है? (८) विजय प्राप्त करनेकी कला, (९) कर्मका तत्त्व, (१०) पुरुषार्थ करनेवालेको ही देवता सहायता करते हैं, (११) सब सुखोंकी एकसाथ प्राप्ति।]

लेखक और प्रकाशक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि॰ सातारा.)

तृतीय वार

संवत् १९९१, शक १८५६, सन १९३४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वास्तविक बात ।

वास्तविक बात यह है कि "जैसा आपका संकल्प होगा, वैसी ही आपकी योग्यता होती है ।" यदि यह सत्य है, तो अन्य सब विचार छोडकर अपने सब प्रयत्नोंसे अपनेही संकल्प शुद्ध, शिव और मंगलमय करनेकी पराकाष्ठा क्यों नहीं करते? एक-वार ऐसा करके तो देखिये ।

औंध, जि० सातारा,
११ वैशाख सं. १९९१

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मंडल ।

मुद्रक और प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा.)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ॐ

शिवसंकल्पका विजय।

शिव-संकल्प।

मनुष्यके मनका धर्म कल्पना करना है। जागृतिमें मनुष्यका मन तर्कवितर्क कुतर्कके बिना रह नहीं सकता। यदि मनुष्यका मन संकल्पविकल्पात्मक कल्पना करताही रहेगा, तो फिर उसको ठीक प्रकारकी कल्पना करनेकी शिक्षा क्यों न दी जावे? सुशिक्षाके विना मन कुतर्क करेगा और गिरेगा। सुशिक्षासे मन उत्तम मार्गपर चलता हुआ उत्तम संकल्प करके अपनी अवस्था उच्च बना सकता है।

मनुष्यकी उन्नतिकी कोई अवधि नहीं है। मनुष्यका अभ्युदय मर्यादासे परिमित नहीं है। परंतु जब वह अपने ही कुतर्कोंसे परिमित होता है, तब मनुष्यके सामने उदासीनता उत्पन्न होती है। इसलिये ऋषिमुनियोंने सिद्धान्त बनाया है कि 'मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः।' मनुष्योंका मनही उनके स्वातंत्र्य और पारतंत्र्यका कारण है। उत्तम सुसंस्कारोंसे शुद्ध मन धारण करनेवाले मनुष्य स्वातंत्र्यसुख अर्थात् मुक्तिका आनंद प्राप्त करते हैं, और जिनका मन गुलामीके कुत्सित विचारोंसे परिपूर्ण होता है, वे सदा परतंत्रताके विविध बंधनोंमें सडते और मरते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं । मनकी शक्ति इस प्रकार विलक्षण है । मनही 'कल्पतरु' है । कल्पनाओंका तरु अर्थात् वृक्ष मनही है । जैसी कल्पना आप करेंगे वैसेही आप बन जावेंगे । आपके मनकी इतनी विलक्षण शक्ति है, इसीलिये आपको सावधान रहना चाहिए । अन्यथा जैसी चाहे वैसी कल्पना मनमें आ जायगी, और उसका परिणाम बडा भयानक हो जायगा । इसलिये वेद्ने कहा है—

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ॥
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ यजु. ३४।६

"जिस प्रकार उत्तम सारथी रथके घोडोंको लगामोंके द्वारा उत्तम मार्गपर ही ले जाता है, उस प्रकार जो मन मनुष्योंके इंद्रियोंको चलाता है, वह हृदयनिवासी, उत्साही और वेगवान् मेरा मन सदा उत्तम संकल्प करनेवाला होवे ।"

वेद्का यह उत्तम उपदेश है। परंतु क्या इस प्रकार वैदिकधर्मी चल रहे हैं? जो मनुष्य इस उपदेशके अनुसार अपने मनकी शक्तिको जानेंगे, और उस विलक्षण शक्तिको अपने स्वाधीन रखकर योग्य कर्ममेंही उस शक्तिका उपयोग करेंगे, वे लोगही इस लोकमें अभ्युदय और परलोकका निश्रेयस निःसंदेह प्राप्त कर सकेंगे। वैदिक धर्मका यह प्रताप है, कि यह धर्म जहां रहेगा,वहां अभ्युदय और निश्रेयस सदा प्रकाशित होते रहेंगे । वैदिक धर्मके होनेका तात्पर्य आचरण होनेसे है; न कि केवल विचार और उच्चारणसे। केवल विचार, उच्चारण और लेखोंमें वैदिक धर्मको रखनेवाले कभी उन्नत नहीं हो सकते । यहां कटिबद्ध होकर सदा शुद्ध आचारका ही माहात्म्य है । उक्त वेदमंत्रका दिव्य उपदेश आचारप्रधानही है । इसलिये पाठकोंसे प्रार्थना है, कि जो कुच्छ वे वेदमंत्रोंमें पढेंगे,शीघ्रही आचरणमें लानेका यत्न करें। एक समय तोतेके समान कंठ करनेवाले वेदभक्त थे, अब अर्थका डंका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बजानेवाले वेदभक्त हो गये हैं। आचरणकी दृष्टिसे दोनोंके पास शून्यही है।

मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

इस मंत्रका केवल पाठ करनेवाले और केवल अर्थ जाननेवाले दोनों तबतक उन्नत नहीं होंगे, जबतक वे अपना मन शुभसंकल्प-मय नहीं करेंगे। एक कुली था जिसके सिरपर खांडकी बोरी थी, परन्तु उसको बोरीकेअंदर क्या वस्तु है,इसका पता न था। उसके पीछेसे दूसरा कूली आया, उसको पता था कि अपने सिरपरकी बोरीमें मिश्री है; परंतु वह बोरीका स्वामी न होनेके कारण उसको खा नहीं सकता था। मिश्रीका आस्वाद लेनेक दृष्टिसे दोनोंका अधिकार भार सहनेकाही है। इसी प्रकार वेदको केवल कंठ करने वाले और केवल घमंडके साथ अर्थोंका शास्त्रार्थ करनेवाले दोनों नीचेही रहेंगे; परंतु जो वेदके उच्च उपदेशके समान अपना आचरण बनावेगा,वही उच्च पदवी पा सकता है। इसलिये "वेदका पढना पढाना, सुनना सुनाना तथा वेदके उपदेशके अनुसार स्वयं आचरण करना और वैसाही उत्तम आचरण करनेके लिये दूसरोंको प्रेरणा करना उच्च श्रेणीके मनुष्योंका परम धर्म है।" इसलिये उक्त मंत्रका विचार मनमें सदा जागृत रखिए— (यहां पृष्ठसंख्या ६ पर का चित्र देखिये)

शरीररूपी इस उत्तम रथमें जीवात्मा बैठा है और उस रथको दश घोडे जोते हैं। मन इस रथमें सारथी है और आत्मा प्रवासी है। मालिक, स्वामी, धनी, इंद्र जीवात्माही है। जहां वास्तवमें उसको जाना है, उसी जानेवाले मार्गपरसे इस रथकी गति होनी चाहिए। यदि मनरूपो सारथी शराब पीकर उन्मत्त होगा, यदि दसही घोडे अपने योग्य मार्गको छोडकर जिधर चाहे उधर भटकने लगेंगे, तो इस शरीरकी और प्रवासी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

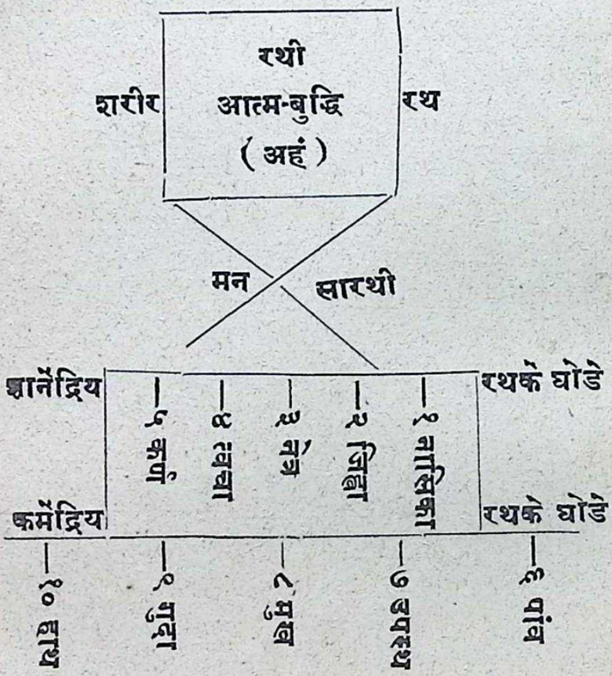

जीवात्माकी कैसी अवस्था होगी ? आपही सोच सकते हैं । और पश्चात् आप अपनी अवस्था भी सोचिए । क्या आप अपने मन, इंद्रिय और शरीरके सच्चे स्वामी बने हैं ? क्या आपके हितके मार्गपरसे आपका मन सब इंद्रियोंको चला रहा है ? क्या क्रोध काम आदि घातक पत्थरोंसे युक्त भयानक स्थानोंमें आपका रथ नहीं जा रहा है ? क्या सब मनोविकारोंपर आपका प्रभुत्व स्थापित हुआ है ? क्या आपका मन कभी कुविचारोंके गढ्ढोंमें मूर्च्छित होकर पडता नहीं ? क्या आपका मन सदा शुभ कल्पनाओंमें और शुभ कर्मोंमें ही रमता है ? यदि नहीं, तो आपको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उचित है कि वैदिक धर्मके शुभ नियमोंके अनुकूल चलकर आप अपने मनके उत्तम स्वामी बन जाइए । दूसरे व्यवहार आपके काम नहीं आवेंगे । जो इस बातको छोडकर दूसरेही कार्योंमें लगता है वही दस्यु होता है । देखिए वेद कहता है—

अकर्मा दस्युरभि नो अमंतुरन्यव्रतो अमानुषः ॥ ऋ. १०।२२।८

"मनुष्योंमें दस्यु वह होता है कि जो (अ-कर्मा) पुरुषार्थ प्रयत्न नहीं करता, (अ-मंतुः) सुविचार नहीं करता, (अन्य-व्रतः) दूसरेही कार्य करते रहता है, और उन्नतिके कार्योंको छोड देता है, और जो (अ-मानुषः) मनुष्यत्वके अयोग्य कुत्सित कर्म करता रहता है । ये दस्युके लक्षण हैं । (१) आलस्य, (२) अविचार, (३) कुकर्म और (४) अमानुष क्रूर कर्म, ये चार लक्षण हैं, कि जिनसे दस्यु पहचाने जाते हैं । हरएकको सोचना चाहिए कि अपने द्वारा किस श्रेणीके कर्म हो रहे हैं ?

आप जानते हैं कि सुख बाहिरसे प्राप्त नहीं होता है । आपकी मानसिक अवस्थापर ही सुख अवलंबित है । आप सुखी हैं या दुःखी हैं, इसका विचार कीजिए । आपको दुःख होनेपर आप दूसरोंको बुरा भला कहनेके लिये प्रवृत्त हो रहे हैं; यही बडी भारी गलती है । यही प्रवृत्ति बहुत बुरी है । अपने मनकी अवस्थाके कारणही आपको दुःख हो रहा है । देखिए सोचिए और अपने मनकी परीक्षा कीजिए ।

वेद कहता है कि—

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ॥ (ऋ. १०।२५।१)

"मनको (भद्रं) शुभ विचारमय, (दक्षं) दक्षतासे युक्त और (क्रतुं) पुरुषार्थके विचारोंसे उत्साही बनाइए ।" फिर आपके पास दुख कहां रहेगा ? इसलिये कहा है कि—

मनो यज्ञेन कल्पताम् ॥ (यजु. १८।२९)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"मन सत्कर्ममें लगाइए।" यही एक उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसको छोडकर यदि आप अन्य कुव्यवहारोंमें अपना कदम बढायेंगे तो आप "अन्य-व्रत" होनेके कारण दस्यु बनेंगे।

अपना समय व्यर्थ नहीं खोना चाहिए। अश्लील उपन्यास, निंदासे भरे हुए अखबार, व्यर्थ गपोडोंके पुस्तक, निरर्थक गप्पाष्टक आदिमें अपना समय न गँवाए। गया हुआ समय फिर नहीं मिलेगा। जो समय है, उसका अत्यंत योग्य उपयोग कीजिए। वेदने कहा है—

आयुः यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां
चक्षुः यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां
वाग् यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतां
आत्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां
ज्योतिः यज्ञेन कल्पतां स्वः यज्ञेन कल्पतां
पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् ॥

(यजु. १८।२९)

"हे लोगो! आपको उचित है कि आप अपनी आयु, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, वाणी, मन, आत्मा, ज्ञान, तेज, स्वत्व, आदि सब कुछ जो कुछ अपनी शक्ति है वह सब सत्कर्मके लिये अर्पण किजिए।" क्यों कि सत्कर्मके विना जो आयु चली जाती है, वह व्यर्थ है। समयपर योग्य सत्कार्य करनेका अभ्यास कीजिए, जिससे आप थोडे समयमें बहुत सत्कर्म कर सकेंगे। यदि आप सत्कर्म करनेमें देरी करेंगे, तो निश्चय जानिए कि उन्नति होनेमें भी उतनीही देरी लगेगी।

अपने पास आत्मविश्वास रखिए। बोलने चालनेमें अपना विश्वास और अपनी अचल श्रद्धा बताइए। श्रद्धा और विश्वास-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से ही उच्चता प्राप्त होती है। अपने विषयमें जिसको संशय है, वह अवश्य गिर जाता है। जिसके मनमें श्रद्धा नहीं है, वह अधोगतिमें जाता है। अपनी शक्ति, अपना प्रभुत्व और अपनी दक्षतापर निश्चयपूर्वक पूर्ण विश्वास रखिए। वेदने कहा है कि—

स्वं महिमानमायजतां ॥ (यजु. २१।४७)

Let him worship his own majesty. "अपने प्रभावका गौरव अपने मनमें रखिए।" इसीसे आत्मविश्वास बढता है, और अपनी शक्ति बढती है। 'अपने आपको तुच्छ समझनेवाले' प्रतिदिन तुच्छताकी ओरही जाते हैं। अपने विषयमें अविश्वास होनेसे अंतमें मनुष्य सब प्रकारसे निकम्मा हो जाता है जो विचार आप मनमें रखेंगे वैसे ही आप बनेंगे। इसीलिये 'शिव-संकल्प' करना सदा उचित है।

यदि दूसरोंका विश्वास आपपर न हो तो उसकी पर्वाह न कीजिए। क्योंकि दूसरोंके विश्वाससे आपकी उन्नति नहीं होगी। विरोधियोंके साथ युद्ध करते हुए और अपना सामर्थ्य बढाते हुए आप विजयी हो सकते हैं। परंतु यदि अपना विश्वास आपपर न होगा तो आपको कोई बचा नहीं सकता। जब आप दिनरात 'मैं हीन और दीन हूं' ऐसा जपते जांयगे, तब आपको उंठानेवाली शक्ति इस जगत्में कोई नहीं होगी; वेद कहता है कि—

अदीनाः स्याम शरदः शतं ॥ (यजु. ३६।२४)

'अदीनता' का जप कीजिए। मैं कभी दीन नहीं होऊंगा, मैं सदा श्रेष्ठ होऊंगा, मैं पराजित नहीं होऊंगा, मैं स्वयं श्रेष्ठ होकर दूसरोंको श्रेष्ठ करूंगा, मैं अपनी दीनताको दूर करके दूसरे दीनोंका उद्धार करूँगा। इस प्रकारके उच्च वैदिक विचार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सदा मनमें रखिए। मनुष्य जैसे विचार करता है, वैसाही बन जाता है।

मनकी शक्तियोंका ज्ञान प्राप्त कीजिए। आप अपने मनको कमजोर समझते हैं, परंतु वास्तवमें आप देखिए, आपका मन बडा ही शक्तिशाली है। उसमें शक्ति है इसी लिये वह बुरे कर्मोंमें प्रवृत्त होता है। यदि उसमें शक्ति न होती, तो बुरे कर्मभी उससे न होते। इसलिये बुरे कर्मोंसे अपने मनको रोकिए और उसका मार्ग अच्छा कीजिए। बस, इतना करनेसेही आपके मनका तेज चमकने लगेगा। मनके प्रभु बनकर रहिए, मनके गुलाम बनकर परतंत्र न रहिए। इसी लिये धर्म प्रवृत्त हुआ है। अपनी कमजोरियोंको चाहे आप न जानिए। केवल अपनी शक्तिको सबसे प्रथम जानिए। दूसरोंकी कमज़ोरियोंका विचारभी छोड दीजिए। यदि दूसरोंका विचार करना है तो आप उनके 'श्रेष्ठ गुणोंका विचार' कीजिए। इससे आपके मनमें श्रेष्ठ गुणोंका वायुमंडल जमा हो जायगा।

"मुखसे अच्छे शब्द बोलिए, कानसे अच्छे शब्द सुनिए आंखसे अच्छेही पदार्थ देखिए, शरीरसे अच्छेही कर्म कीजिए"

(ऋ. १।८९।८)

यह वेदका उपदेश है। जब आप अपने धर्मकी प्रतिष्ठा बढानेके लिये दूसरोंके मतमतांतरोंका खंडन करनेमें प्रवृत्त होते हैं, तब दूसरोंके छोटेसे दोषका पर्वत बना देते हैं। इससे गुणग्राहकता कम हो रही है। जिस प्रकार मधुमक्षिका वृक्षोंके कांटोंकी ओर न देखती हुई, फूलोंका मधु ग्रहण करती रहती है, उसी प्रकार दूसरोंके कांटोंमें आप न फँसते हुए जहाँसे आपको मधु मिले, लेते जाइए। आप काँटोंको इकट्ठा क्यों कर रहे हैं? फूलोंको इकट्ठा कीजिए। यही धर्म है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वेष करनेवालोंपर प्रीति कीजिए, क्रूरोंपर दया कीजिए, दुःख प्राप्त होनेपर हँसनेका अभ्यास कीजिए, दुःख देनेवालेकाभी स्वयं अहित न कीजिए। सारांश कि आपसे सदा अच्छे श्रेष्ठ विचार-उच्चार-आचारोंकाही स्रोत चलता रहे, ऐसी व्यवस्था कीजिए। दुनियाके कष्टोंमें अपनी ओरसे आप कष्टोंकी संख्या न बढाइए, परंतु आपके शुभ संकल्पोंसे विश्वमें शुभ विचारोंकी लहर चलने दीजिए।

'शिवसंकल्प' अपने मनमें सदा जागृत रखिए। किसी प्रकारकी अशिव, अशुभ, अभद्र बात आपके मनमें कभी न आने दीजिए। उत्साही और आत्मविश्वासी श्रेष्ठ लोगोंकी संगतिमें रहिए। अपने घरमें, और घरके बाहिर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कीजिए कि जो शुभ वायुमंडलसे पवित्रता बनानेवाली हो। उच्चता, अभ्युदय और उन्नति साधन करनेका यही एक 'सत्य मार्ग' है। इससे भिन्न नीचता, अवनति और दुःस्थिति प्राप्त करानेवाले कुमार्ग हजारों हैं। कुमार्गोंके प्रलोभनोंमें न फँसते हुए निश्चयसे एक शुद्ध वैदिक धर्मके सत्य मार्गपरसेही चलिए। सत्यनिष्ठा अर्थात् सत्यका आग्रहही इस मार्गका नेता है। जहां आप सत्यसे दूर होंगे वहाँ आप धर्मसे भ्रष्ट हो सकते हैं।

आपकी शांति, प्रसन्नता, सुख, आनंद और शक्तिकी हानि कोई नहीं कर सकता, जबतक की आपही इनका विरोध न करेंगे। न जानते हुए आप मनोविकारोंकी कुत्सित भावनाओंके गुलाम बन जाते हैं, और नाना प्रकारके हीन प्रलोभनोंमें फँस जाते हैं, दूसरोंकी व्यर्थ निंदामें कालक्षेप करते हैं, बडे पुरुषोंका महत्त्व सहन न होनेके कारण निष्कारण उनका मत्सर करते हैं, क्रूरताका अवलंबन करके दूसरेके घातसे अपनी उन्नति करनेकी व्यर्थ इच्छा धारण कर रहे हैं, कामोपभोगकी लालसा तृप्त करनेके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिये दूसरोंके सतीत्वकी आहुतियाँ लेनेका भयानक प्रयत्न किया जाता है, अयोग्य महत्त्वाकांक्षामें अपना सब जीवन व्यर्थ खो रहे हैं। कई लोग अपने अज्ञानकाही घमंड धरकर मूढ हो रहे हैं। ये ही मनके भाव हैं कि जो आत्माकी प्रसन्नताका नाश कर रहे हैं। इसीलिये वेद कहता है कि 'मे मनः शिवसंकल्पं अस्तु।' देखिए वेदका कितना उच्च उपदेश है।

मन जब 'शिव-संकल्प' करने लगता है तभी उसकी योग्यता बढती है, उसका तेज फैलने लगता है और वह जो कहता है, बन जाता है। शिव-संकल्प करनेवाला मनुष्य जहाँ जाता है, वहाँ सब शुभ मंगल बना देता है। बुरे समयको भला बना देता है, क्योंकि उत्साहपूर्ण अमृतका स्रोत उसके अंतःकरणसे बहने लगता है। इसलिये हीन गुण वहाँ नहीं रह सकते, जहां शिव-संकल्प रहता है।

निराशा और भय वहाँ नहीं रहता, जहाँ शिवसंकल्प रहता है। क्यों कि संकुचित भावमें भय है, व्यापक उच्च भावनामें भय कहां है? कितनाही भयका डरानेवाला प्रसंग आ जावे, बडे प्रबल विरोधियोंका मुकाबला करना पडे, बडी मुसीबतका घोर समय आ जावे, किंवा कोईभी सहायता करनेके लिये प्राप्त न होवे, तो उस समय एक मात्र 'शिव-संकल्प' है, जो सब कठिनाइयोंसे पार ले जा सकता है। यह शिवसंकल्प धैर्यका साथी और विजयका पिता है। जो मनुष्य शिवसंकल्प करता है वही मनुष्य योग्य बात योग्य समयमें उत्तम रीतिसे करनेके लिये नहीं डरता, क्यों कि उसके मनके अंदर एकही शिवमंगलमय परमेश्वरका शुभसंकल्प सदा जागृत रहता है।

यजुर्वेद अंदर (अ. ३४।१—६) शिवसंकल्पके केवल छः मंत्र हैं। परंतु उनमें मनके तत्वज्ञानकी सब बातें रखी हैं। मनकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विलक्षण अद्भुत शक्तिका वहाँ स्मरण दिलाया है। इसलिये पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे नित्य उन छः मंत्रोंका अवश्य मनन करें।

वास्तवमें सब वेदही शिवसंकल्पमय है। वेदके सूक्त सच्चे सु-उक्तियोंसे भरे हैं। उत्तम वचन अर्थात् वेदके सुभाषितोंके समान भाव मनमें रखने उचित हैं और उन्हीं बातोंको बोलना और सुनना चाहिए। मनुष्यका निरुत्साह हटानेवाले वेदमंत्रही हैं, इसलिये उद्धारकी इच्छा करनेवाले लोगोंको वेदके मंत्रोंका भाव मनमें धारण करना उचित है। देखिए वेदके भाव कैसे हैं-

अहमिंद्रो न पराजिग्य इद्धनं न मृत्यवे अवतस्थे कदाचन ॥ सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥ ५ ॥ अभीदमेकमेको अस्मि निष्षाळभी द्वा किमु त्रयः करन्ति ॥ खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निंदंति शत्रवोऽनिंद्राः ॥७॥ ऋ. १०।४८

(१) "अहं इंद्रः।"—मैं इन्द्र हूं। मैं आत्मा हूं। मैं ही मुख्य हूं। मेरी अर्थात् इंद्रकी विविध शक्तियाँही इंद्रिय (इंद्र-इ-य) रूपसे महान् कार्य कर रहीं हैं। आंखोंकी दर्शनशक्ति, कानोंकी श्रवणशक्ति, तथा अन्य इंद्रियों, अंगों और अवयवोंकी सब विलक्षण शक्ति मेरी ही है। मैं इंद्रियादिकोंका प्रेरक आत्मा हूं और मेरी शक्ति ही इस शरीरमें सर्वत्र कार्य कर रही है। मैं इंद्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् हूं और सब इंद्रियोंकी शक्तियां ही मेरी ऐश्वर्य हैं।

(२) "अहं इत् धनं न पराजिग्ये।"—मैं अपने ऐश्वर्यके कारण किसीसे पराभूत नहीं हो सकता। अर्थात् मेरा ऐश्वर्य, मेरा बल किसी अन्यसे न्यून नहीं है। मेरा कभी पराभव नहीं होगा। मैं विजय प्राप्त कर सकता हूं। सदा मेरा विजय ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता रहेगा। बुरी अवस्था मेरे सन्मुख खडी नहीं रह सकती। कितना भी कठिण प्रसंग आ गया, तो भी उसका मुझे डर नहीं है। मैं आपत्तियोंसे न डरता हुआ, अवश्य अपना सीधा मार्गक्रमण करके अपनी उच्चताको प्रकाशित करूँगा।

(३) " मृत्यवे कदाचन न अव तस्थे।"—मैं कदापि नहीं मर सकता। मैं अमर हूँ। मृत्यु मेरा क्या करेगा? जलसे मैं गीला नहीं होता, आग मुझे जला नहीं सकती वायु मुझे सुखा नहीं सकता, पृथ्वीसे मुझे ठोकर नहीं लग सकती। क्यों कि मैं आत्मा हूँ और मैं सबका प्रेरक स्वामी हूँ। मैं अपने आत्मस्वरूपको कभी नहीं भूलूँगा। बाल, तरुण, वृद्ध अवस्थाओंसे मैं भिन्न स्वतंत्र हूं। जागृत्, स्वप्न, सुषुप्तिसे मैं परे हूँ। जन्ममरणसे मैं मैं दूर हूँ। मैं अज, और अविनाशी हूँ। मुझे मृत्युका भय नहीं है। मैं व्याधि और बीमारियोंसे परे हूँ। शरीरसे भिन्न मैं अविकारी आत्मा हूँ। इस उच्च स्थितिसे मुझे कोई दूसरी शक्ती नीचे नहीं गिरा सकती।

(४) " सोमं सुन्वन्तः इत् वसु याचत।"- हे लोगो! अग्नि और सोम ये दो शक्तियाँ आपके अंदर हैं। शांति और प्रसन्नता देनेवाली सोमशक्तियाँ आपके मनके अंदरही हैं। उस सोमके शांतिपूर्ण रसका पान करते हुए (वसु) अपने निवासके साधनों-को प्राप्त कीजिए। मैं अपने शांत शक्तिको अपने स्वाधीन रखता हुआ, अपने निवासके लिये योग्य साधनसामग्रीको प्राप्त करता हूँ। मैं आत्मा, इंद्र अथवा अग्निरूप हूँ और इस शरीरमें मेरेसे भिन्न सब शारीरिक शक्तियाँ सोमरूप हैं। इन सोमशक्ति-योंसे मैं योग्य उपयोग लेता हुआ अपना विजयका मार्ग क्रमण कर रहा हूँ।

(५) " हे पूरवः! मे सख्ये न रिषाथन।—" हे नागरिको!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हे सज्जनो ! मैं जो आत्मा हूँ उसकी मित्रता करनेसे किसीका नाश न होगा। आत्माका विचार, आत्मशक्तियोंका चिंतन करने और अपनी शक्तिपर विश्वास रखनेवाले मनुष्योंका कभी नाश नही हो सकता । आत्मविश्वासही सब उच्चताका एक मात्र साधन है।

(६) "एकः अस्मि।"—मैं अकेला हूँ। मैं आत्मा अकेलाही हूँ। मन, चित्त, अहंकार, पंच ज्ञानेंद्रिय, पंच कर्मेंद्रिय आदि मेरेसे भिन्न शक्तियां बहुत हैं। परंतु हे विविध शक्तियाँ धारण करनेवाले विविध इंद्रियो ! यह आप न समझें कि मेरा मुकाबला कर सकोगे। मैं अपराजित आत्मा हूँ।

(७) "इंद्रं एकं निष्षाड् अभि इत्।"—इस एक एक इंद्रियके ऊपर मैं अपने विलक्षण सामर्थ्यके कारण अवश्य विजय प्राप्त करूंगा। मैं इंद्रियोंसे परास्त नहीं हो सकता। एक एक इंद्रिय चाहे जितना प्रयत्न करे उससे कभी मैं पराजित नहीं हो सकता। मैं इंद्रियोंको संयमद्वारा अपने आधीन ही रखूँगा। मैं कमजोर नहीं हूँ। मैं (निः-षाड्) सबसे अधिक बलवान् हूँ।

(८) "अभि द्वा किमु त्रयः करंति।"— हे इंद्रियो ! आप दो अथवा तीन किंवा इससे भी अधिक मिल जाओगी, तो भी आपसे मेरी क्या हानि होगी? मेरी शक्ति आपके अंदर जाकर आपके द्वारा कार्य कर रही है। इसलिये मैं आप सबका नियंता हूं। आप मेरा पराभव नहीं कर सकते। आप सबका दमन करके आपको मैं ही स्वाधीन रखूँगा। आप सबको मैं ही आधीन रख सकता हूँ। क्यों कि मैं आत्मा अर्थात् इंद्र हूँ। इस लिये आप सबको मेरे आधीन रह कर ही कार्य करना होगा।

(९) "पर्षान् खले न भूरि प्रति हन्मि।"— जिस प्रकार धानको चक्कीमें बहुत प्रकारसे पीसा जाता है, अथवा घासके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गट्ठोंको पत्थरोंपर अनेक वार मारने पर भी पत्थरका कुछ नहीं बिगडता, उसी प्रकार इन शत्रुओंको मैं पीस डालूँगा अथवा उनके हमलोंसे मेरा किसी प्रकार भी नुकसान नहीं होगा। मैं स्थिर और दृढ हूँ और ये मेरे सब शत्रु सबके सब कच्चे और कमजोर हैं। इस लिये ये मेरेद्वारा पीसे जांयगे,मेरे शत्रुओंका मैं पराभव निश्चयसे करूँगा।

(१०) "अन्-इद्राः शत्रवः मा निंदंति किं।"— क्या आत्म-ज्ञान न रखनेवाले मेरे शत्रु मेरी निंदा कर रहे हैं? करने दें। उनकी निंदाकी मैं पर्वाह नहीं करता। उनकी निंदासे मैं अपने मार्गको कभी नहीं छोडूंगा। मैं उनकी निंदा नहीं करूंगा। क्यों कि निंदा करनेसे मेरी वाणीमें अशुभ शब्द आ जांयगे और मेरी वक्तृत्वशक्ति मलिन होगी। इसलिये निंदाका स्वभाव शत्रुओंके पासही रहे। मैं कभी निंदा करनेवाला नहीं बनूंगा। जो निंदा करना चाहते हैं, वेशक करें। मैं उनके बुरे शब्दोंके कारण अपने सत्य मार्गसे कभी नहीं हटूंगा। यही मेरा पक्का दृढ निश्चय है। यही मेरी पूर्ण प्रतिज्ञा है। मैं कभी अपनी प्रतिज्ञासे पीछे नहीं हटूंगा। क्यों कि मैं इंद्र हूँ, मेरी शक्तियां सर्वत्र फैल रहीं हैं। सब शरीर भर मेरी शक्तियां कार्य कर रहीं हैं।

वेदके उत्साहपूर्ण मंत्र इस प्रकारकी भाषा बोल रहे हैं। यही विचार सबको मनमें सदा धारण करने उचित हैं। मन कल्पना करता ही है। प्रथम उसको सम्यक् कल्पना (सं-कल्प) करनेका अभ्यास सराइए। जब उत्तम कल्पना वह करने लगे तब शुभ संकल्प (शिव-संकल्प) केवल श्रेष्ठ उत्तम ही विचार करनेका अभ्यास कीजिये। बुरे विचारोंका ख्याल तक मनमें न आजाय ऐसी अवस्था उत्पन्न कीजिए। "शुभ विचार, शुभ उच्चार और शुभ आचार" ये तीन बातें हैं जो श्रेष्ठताके मार्गक्रमणमें सहायक हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कदाचित् प्रिय पाठकोंके मनमें संदेह होगा कि ऐसा मानने और कहनेसे क्या हो सकता है? कल्पनामात्रसे क्या होगा? ऐसी शंका करनेवालोंसे इतनी ही नम्र प्रार्थना है, कि केवल एक महीनेभर उक्त वैदिक विचार ही मनमें रखिए, अशुभ भावनाओंको एक मासतक दूर कीजिए। मुझे निश्चय है कि एक मासके पश्चात् आप उक्त शंका करेंगे ही नहीं। देखिए, अनुभव सबसे श्रेष्ठ प्रमाण है।

दूसरेकी निंदा करनेसे हानि क्यों होती है? इस प्रश्नका उत्तर यहां इतने विवरणसे पाठकोंको मिला ही होगा। "वह मनुष्य धोखा देता है, वह व्यभिचारी है, वह असत्य भाषण करता है" इत्यादि प्रकार प्रायः लोग दूसरेकी निंदा करते हैं। ऐसी निन्दा करनेसे क्या होता है, इसका विचार पाठकोंको करना चाहिये। इस तरहकी निन्दा करनेसे मनुष्यके मनमें उक्त दुर्गुणोंके संस्कार होते जाते हैं। पूर्वोक्त तीन वाक्योंमें 'धोखा देना, व्यभिचार और असत्य भाषण करना' ये तीन कुकल्पनाएं हैं। पूर्वोक्त निंदा करनेसे जिसकी निंदा की जाती है उसका कुछ भी बिगडता नहीं, परंतु जो निंदा करता है उसमें उन वाक्योंके संस्कार जमते जाते हैं। और यदि यही निंदा वारंवार की जायगी तो वे कुसंस्कार अधिकाधिक दृढ बनते जायेंगे।

ऐसी कल्पना कीजिये, एक मनुष्य दूसरेकी निंदा नहीं करता, परंतु अपनीहि निंदा करता है। कई लोग प्रार्थना करनेके समय कहते हैं कि "हे ईश्वर! मैं तुच्छ हूं, मलिन हूं, दीन हूं, दुष्ट हूं, कुकर्मी हूं, पापी हूं, अधम हूं, दुराचारी हूं।" इत्यादि प्रकार अपने अंदर जो दोष होंगे या न होंगे उनकी गिनती करते जाते हैं। अपने अन्दर जो दोष हैं उनका उच्चारण करना और उनको

२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूर करनेका यत्न करना चाहिये ऐसा इनका मत रहता है। कई लोगोंको तो प्रभुकी प्रार्थना करनेके समय अपनी नम्रता दिखानेका व्यसन ही हुआ करता है और उस व्यसनके मदमें आकर वे अपने योग्य और अयोग्य दोष बोलनेका यत्न करते हैं। वे मनसे समझते हैं कि ऐसा करनेसे अपनी भी उन्नति होती है और सुननेवालोंकी भी उन्नति होती है। परंतु वे बडी भारी गलती करते हैं।

पूर्वोक्त प्रकार अपने दोष बतानेकेलिये जो वाक्य उच्चारे जाते हैं उनका भी भाव वैसा ही अपने मनमें स्थिर होता जाता है। अपनी तुच्छता, मलिनता, दोषयुक्तता आदिका ध्यान किया जाय तो भी वही परिणाम होगा,जैसा दूसरेकी तुच्छता, मलिता, दोषमयताका ध्यान करनेसे होगा। मनुष्य जिसका वारंवार ध्यान करेगा वैसा बनेगा। यदि वह तुच्छताका ही विचार करता रहेगा तो वह निःसन्देह तुच्छ बनेगा। ऐसी प्रार्थनासे यही घातपात हो रहा है। वे विचारे उत्तम भावसे आत्मदोषोंका उच्चारण करते हैं और मानते हैं कि यह उन्नतिका मार्ग है। परंतु फंसते जाते हैं। उनपर उक्त हीन कल्पनाके संस्कार होते जाते हैं और उनकी अधिक मलिनता होती जाती है। न समझते हुए उनसे यह दोष होता रहता है।

हीनताके उच्चारणकी प्रणाली वैदिक नहीं है। कोई मंत्र आप लीजिये, उसमें उच्च विचार ही आपको दिखाई देंगे। क्वचित् कोई मंत्र ऐसा होगा कि जिसमें दुष्ट गुणोंका वर्णन हुआ हो। परंतु देवताके श्रेष्ठ गुणही सर्वत्र वर्णन किये हैं। श्रेष्ठ सद्गुणोंका महासागर परमेश्वर है, उसीके गुणोंका मनन करना वैदिक धर्मका अनुष्ठानका अंग है। ईश्वरस्तुति, ईश्वरोपासना आदिमें हीन विचार आवेंगे ही कहांसे? ईश्वरस्तुतिका अर्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ही श्रेष्ठ सद्गुणोंकी स्तुति है। श्रेष्ठ सद्गुण वारंवार कहनेसे उनका शुभ संस्कार अपने मनपर जमा होता है और वे सद्गुण अपने अंदर बढते हैं। यही मानवोंकी उन्नति करनेका एक मात्र साधन है।

अपनी हीनता उच्चारण करनेकी कुप्रथा बौद्धोंद्वारा प्रचलित हुई। उनके पास श्रेष्ठ सद्गुणोंका निधान परमेश्वर था ही नहीं। उनके पास तो मनुष्य ही कुसंस्कारोंवाले थे। उनको देखनेसे उनके हाथ दुष्ट भावही आनेवाले थे सो आगये और अतः वे "मैं हीन, मैं दीन, मैं पामर" इत्यादि बातें बोलने लगे। यह प्रथा बुद्धधर्मद्वारा उत्पन्न हो गयी और बढी और इसीका परिणाम वैदिकधर्मपर भी हुआ और हिंदू धर्ममें इसीकी नकल की गई। बुद्धधर्म में ईश्वरकी कल्पना नहीं है, इसलिये उनके मनन के लिये श्रेष्ठ सद्गुणोंका निधान कहां है? ईश्वर की अनुपस्थितिमें वे किसका ध्यान करें? और श्रेष्ठ कल्पना कहांसे लावें? उनका जगत् दुःखमय है, नश्वर है, दोषोंसे परिपूर्ण है। यही उनके सम्मुख प्रत्यक्ष है। यही बुद्धधर्मी लोग देखते हैं और उसीका मनन करते हैं। इस लिये उनकी उपासनामें दुःख, दोष और पापका उच्चारण प्रमुखतया है।

वैसा देखा जाय तो बुद्धधर्ममंदिर जगत्के दुःख, दोष और पापोंपर रचा गया है। परंतु वेदकी बात वैसी नहीं है। इसकी बुनियाद आनंदकन्द परमात्मापर है, जो दुःखदोषविकारोंसे पृथक् है, जो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव है। जो आनंदकंद है, स्वानंदसाम्राज्य जिसका निज सहजसिद्ध है। जो शुद्ध श्रेष्ठ परात्पर और दोषरहित है। भला इस परमेश्वरके उपासक मलिनता, दुष्टता और दोषमयताका मनन किस प्रकार कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सकते हैं? वैदिक धर्मी अपनी स्तुति प्रार्थना उपासना वेदमंत्रों द्वारा करते हैं। वेदमंत्रोंमें मलिनताका लेश भी नहीं। परमेश्वरके शुभ गुणोंका आप जितना मनन करेंगे उतना मन शुद्ध बुद्ध और मुक्त बनता जायगा। उसमें हीन विचारोंका लेश भी आनेका संभव नहीं है। जिस समय उपासनासे ईश्वरको दूर किया जायगा, तभी तो हीन विचार, हीन उच्चार और हीन आचारोंका संभव हो सकता है। यहां पाठकोंके मनमें वैदिक और अवैदिक धर्मोंकी उपासनाका भेद आगया होगा।

वेद वारंवार कहता है कि 'कानोंसे अच्छे शब्द सुनो, आंखोंसे अच्छे विचार देखो और पवित्र आचरण करो।' इसका हेतु ही यह है कि उपासकका वायुमंडल पवित्र बने, शुभ बने और उपासक पुनीत होता जाय। मानवी उन्नतिके लिये इस तरहकी पवित्रताकी अत्यंत आवश्यकता है। इस लिये पाठक अवैदिक रीतिकी प्रार्थना करके अपने आपको गिरानेका अभ्यास न करें, परंतु वैदिक प्रार्थनाओं द्वारा अपने आपको शुद्ध और पवित्र बनावें और शुद्ध बुद्ध मुक्त बननेके अधिकारी बनें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मनकी विलक्षण शक्ति ।

वेदमें मनकी अपूर्व और विलक्षण शक्तिका वर्णन है । देखिए-

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ॥
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥
यजु. ३४।१

"जो (दैवं) दिव्य शक्तिसे युक्त मन जागृत अवस्थामें दूर दूर जाता है, और निश्चयसे वह (सुप्तस्य) सोते हुए भी वैसा ही दूर चला जाता है, यह दूर जानेवाला, ज्योतियोंका एकमात्र प्रकाशक मेरा मन शुभ विचार करनेवाला होवे।" इस यजुर्वेदके मंत्रमें मनकी शक्तियाँ वर्णित हैं । इस प्रकार चारों वेदोंमें मनकी शक्तियोंका वर्णन करनेवाले अनेक मंत्र हैं । इन मंत्रोंका मनन करनेसे तथा मंत्रके विधानोंकी सत्यता प्रत्यक्ष अनुभवके व्यवहारोंमें देखनेसे वेदके उपदेशका महत्त्व व्यक्त हो सकता है । उक्त मंत्रमें मनके निम्न लिखित गुण लिखे हैं—

(१) जाग्रतः दूरं उदैति ।...मन जागृत अवस्थामें दूर दूरके स्थानोंपर चला जाता है ।

(२) सुप्तस्य तथा एव एति ।...सोनेवालेका मनभी उसी प्रकार दूर दूरके स्थानोंपर चला जाता है ।

(३) दूरंगमं ।...दूर दूरके स्थानपर चला जाना, यह मनका स्वाभाविक धर्मही है ।

(४) ज्योतिषां ज्योतिः ।...तेजोंका तेज मन है अर्थात् मन तैजस् पदार्थ है । विद्युत् तत्त्वका मन बना है ।

(५) एकं ।...मन एक है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब इन बातोंका अनुभवके प्रमाणोंसे निश्चय करना है। 'जागृत अवस्थामें मन दूरके स्थानोंमें चला जाता है' यह मंत्रका प्रथम विधान है। कई विद्वान् व्याख्याता कहते हैं कि मन एक क्षणमें सूर्यका विचार करता है तो दूसरे क्षणमें घरका विचार करता है, इस प्रकार वह मन क्षणमें सूर्यलोकसे पृथ्वीपर आता है। परंतु वेदके उक्त वचनका यह तात्पर्य नहीं है। जागृत अवस्थामें मन दूर जाता है न कि दूरके पदार्थका विचार करता है। केवल यहांसे सूर्यका विचार मनमें आगया, तो हमारा मन वहां गया था, ऐसा नहीं सिद्ध हो सकता। उक्त मंत्रमें 'दूरं एति' 'दूरंगमं' ये शब्द स्पष्ट कह रहे हैं कि जागृत मनुष्यका तथा सुप्त मनुष्यका मन एक स्थानसे निकलकर दूसरे स्थानमें जाता है और वहाँ कार्य करता है। हमारे जैसे साधारण मनुष्योंका ऐसा अनुभव नहीं कि जागृत अवस्थामें हमारा मन दूसरे स्थान-पर गया है और वहाँका ज्ञान उसको प्राप्त हुआ है।

जिसका मन जागृत अवस्थामें दूरके स्थानपर जा सकता है, उसको पता लग सकता है कि दूरके बंद कमरेके अंदर बैठा हुआ मनुष्य क्या कार्य कर रहा है। हमारा मन सुप्त अवस्थामें तथा स्वप्नमें दूरके स्थानपर चला जा सकता है, परंतु जागृति-में दूरके स्थानपर जानेका उनको अभ्यास ही नहीं है। ध्यान-योगके बहुत अभ्याससे इस प्रकार अपने मनको दूरके स्थानपर भेजा जा सकता है और वहाँका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, ऐसा योगके ग्रंथोंमें कहा है। परंतु इस प्रकार करनेवाले सत्पुरुष इस समयतक मैंने नहीं देखे।

मनकी गतिके लिये स्थानका प्रतिबंध नहीं है। एक स्थानपर बैठा हुआ मनुष्य, न केवल उस ग्रामके परंतु अत्यंत दूर देशके मनुष्यका वृत्तांत जान सकता है। जिसका मन इस प्रकार जागृत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवस्थामें दूर भेजा जा सकता है। यह बहुत मिहेनतका तथा अत्यंत दृढ अभ्यासका साधन होनेसे अत्यंत कष्टसे सिद्ध होता है। वैदिक धर्मकी यह एक मानसिक सिद्धि है। जो वैदिक धर्मका झंडा दुनियाभरमें फहराना चाहते हैं उन्हें उचित है कि वे अपने मनकी शक्तियोंका थोडासा अनुभव प्रथम ले लें। तत्पश्चात् दूसरोंको मनानेका प्रयत्न करें। प्रथम स्वयं मानना और पश्चात् दूसरोंको मनवाना होता है। जगत् भरमें वैदिक धर्मका प्रकाश वही फैला सकता है कि जो आद्योपांत वेदको जान सकता है। वेदको स्वयं न जानते हुए ही आजकल 'वेद-प्रचार' चल रहा है, इसी लिये प्रतिदिन अश्रद्धा बढ रही है। तात्पर्य केवल युक्तियोंसे धर्मकी श्रद्धा नहीं बढ सकती और न वैदिक धर्मका तेज फैल सकता है। योगसाधनसे प्रत्यक्ष अनुभव देखनेकी बडी भारी आवश्यकता है। जागृतिमें मनको दूसरे स्थानपर ले जानेकी शक्ति प्राप्त करनेसे ही उक्त मंत्रका मतलब समझमें आ सकता है। केवल शब्दोंके अर्थज्ञानसे भी क्या लाभ हो सकता है? 'जागृत अवस्थामें मन दूर जाता है' यह उस वचनका तात्पर्य है। इस शब्दार्थको जाननेसे किसको कौनसा लाभ हो गया? जबतक हम अपने मनको दूसरे स्थानपर नहीं भेज सकते, तबतक उक्त शब्दोंका अर्थ समझनेसेभी कोई तात्पर्य नहीं निकल सकता। प्राचीन ऋषि-मुनियोंको अपना मन दूसरे स्थानपर भेजने, वहाँका ज्ञान प्राप्त करने तथा वहाँ कार्य करनेकी शक्ति थी। महाभारतादि ग्रंथोंमें कई कथाएं आती हैं, कि किसीने ध्यान लगाकर दूसरे स्थानके मनुष्यका वृत्तांत जान लिया! उस समयमें भी यह विद्या सार्वत्रिक नहीं थी। बहुत थोडे महात्मा इस विद्यामें प्रवीण थे। इस विषयमें शतपथका निम्न वचन विचारपूर्वक देखने योग्य है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स यदि वृष्टिकामः स्यात्। यदीष्ट्या वा यजेत दर्शपूर्णमासयोर्वैव ब्रूयाद्वृष्टिकामो वा अस्मीति। तन्नोऽध्वर्युं ब्रूयात्पुरोवातं च विद्युतं च मनसा ध्यायेति। अभ्राणि मनसा ध्यायेति अग्नीध्रं। स्तनयित्नुं च वर्षं च मनसा ध्यायेति होतारं। सर्वाण्येतानि मनसा ध्यायेति ब्रह्माणं। वर्षति हैव तत्र यत्रैवमृत्विजः संविदानाः यज्ञेन चरन्ति॥

शतपथ १।५।२।१९

"यदि यजमान वृष्टिकी इच्छा करता हो तो वह......कहे कि मैं वृष्टिकी इच्छा करता हूं और अध्वर्युको कहे कि वह पूर्वका वायु और विद्युत् का मनसे ध्यान करे। अग्निध्रको कहे कि वह बादलोंका ध्यान करे। होताको कहे कि वह इन मेघगर्जना और वृष्टिका मनसे ध्यान करे। और ब्रह्माको कहे कि वह इन सबका मिलकर ध्यान करे। निश्चयसे वहाँ वृष्टि होती है कि जहाँ इस प्रकार (मानस शक्तिसे कार्य करनेवाले) ऋत्विज मिलकर यज्ञ करते हैं।"

मनके दूर जाकर कार्य करनेकी शक्तिकी यह एक सिद्धि है। ऋत्विज इस प्रकार ध्यानद्वारा अपने मनको बाहिर जगत्में भेजते थे और जहां बादल होंगे वहाँसे उनको खींचकर लाते थे और वृष्टि कराते थे। जागृत अवस्थामें मन बाहिर जाता है और वहाँ कार्य करता है इसका यह ग्रंथोक्त प्रमाण है। शतपथब्राह्मणके लेखक आचार्य याज्ञवल्क्य लिखते हैं कि "जहां ऐसे ऋत्विज होंगे वहाँ अवश्य वृष्टि होगी।" इसका दूसरा तात्पर्य यह है कि जहां ऐसे ऋत्विज होंगे वहांही अन्य यज्ञोंकी सिद्धियाँ होंगी। पुत्रकामेष्टि आदि यज्ञ हैं कि जिनके करनेसे अपने मनकी इच्छानुरूप पुत्र उत्पन्न किया जा सकता है, उनकी सिद्धिभी ऋत्विजोंकी मानसिक योग्यतापर निर्भर है। इससे पता लग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

सकता है कि मानसिक योग्यताके विना किया हुआ कर्म फल नहीं दे सकता।

जागृत अवस्थामें मनको दूर भेजने और वहां कार्य करनेकी शक्ति आजकल प्रायः सुप्तही है। और उसको पुनः कार्यक्षम करनेका कोई प्रयत्न नहीं करते। जागृत अवस्थामें एककी मानसिक शक्ति दूसरेके मनके ऊपर परिणाम कर सकती है। इसका अनुभव थोडेसे परिश्रमसे पाठक भी देख सकते हैं। आठ दस मनुष्य यदि एक विचारके-और विशेषतः सुविचारी-हों तो वे एकांत और शांत स्थानपर निम्न प्रकार बैठें—

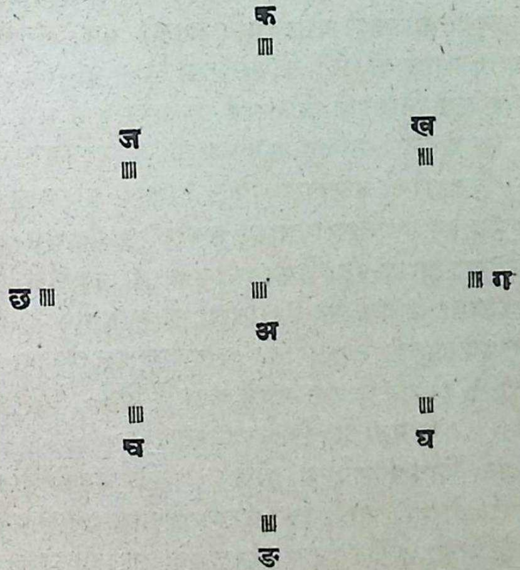

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अ' स्थानपर ऐसा मनुष्य बैठे कि जो अपना मन निर्विचार, स्थिर और शांत रख सके तथा 'क ख' आदि स्थानपर ऐसे मनुष्य बैठें कि जो अपने मनमें सब मिलकर एकही विचार प्रबल कर सकते हैं। 'क ख' आदि स्थानपर बैठनेवाले मनुष्य, 'अ' को विदित न करते हुए, किसी प्रसिद्ध पदार्थकी कल्पना मनमें धारण करें, और उक्त प्रकार बैठनेके पश्चात् वह ही कल्पना अपने मनमें प्रबलतापूर्वक जागृत करें और अपनी मानसिक शक्तिसे वह कल्पना 'अ' के मनमें डालनेका पराकाष्ठाका यत्न करें। यदि 'अ' का मन निर्विचार और शांत रहा, तथा 'क, ख' आदि मनुष्योंमें केवल वही एक विचार स्थिर और प्रबल रहा, तो विना कहे 'अ' के मनमें वही कल्पना आती है कि जो 'क, ख' आदि मनुष्योंके मनमें थी। यदि किसी एक मनुष्यमें विपरीत भावना उत्पन्न हो गयी तो सिद्धिमें विघ्न होता है। इसलिये प्रबलतापूर्वक दृढ निश्चयसे और एक विचारसे यह अनुभव लेना उचित है। इसके लिये अधिक परिश्रमकी आवश्यकताभी नहीं है। मनके विचारोंका दूसरेपर किस प्रकार परिणाम होता है इसका अनुभव इस रीतिसे प्राप्त हो सकता है। प्रथम आरंभमें प्रसिद्ध फल फूल आदि पदार्थोंका ध्यान करना, जिससे 'अ' के मनमें झट कल्पना आनेके लिये सुविधा हो सकेगी।

एक मनुष्यके मनके विचारोंका परिणाम इस प्रकार दूसरेके मनपर होता है, इसीलिये उक्त मंत्रमें कहा है कि—

मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

'मेरा मन शिवसंकल्पमय होवे।' यदि मनके अंदर बुरे विचार उत्पन्न हो गये, तो उनका बुरा परिणाम अन्य मनुष्योंपर हो सकता है, तथा यदि विचार अच्छे हो गये तो उनका परिणाम भी अच्छा हो सकता है। यहाँ स्मरण रहे कि हमारे हरएक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विचार का बुरा भला परिणाम दूसरोंपर हो रहा है। परिणाम किये विना कोई विचार रहता नहीं। इसलिये आवश्यक है कि हम सब सदा शुभ विचार ही करें और कभी बुरे विचारको अपने मनमें स्थान न दें। अब सुप्त अवस्थामें हमारा मन दूर दूरके स्थानोंमें चला जाता है, ऐसा जो उक्त मंत्रमें कहा है, उसका विचार करना है। स्वप्नमें भी इसी प्रकार जाता है। जिस प्रकार पतंग या गुड्डीके खेलमें बारिक धागेके साथ पतंगको आकाशमें वायुकी गतिकी सहायतासे भेज देते हैं उसी प्रकार योगी जन अपने मनको इष्ट स्थानपर भेजते हैं, और वहाँका कार्य करनेपर वापस खेंचते हैं। परंतु जिनको मन बाहिर भेजनेकी शक्ति नहीं है, उनका अर्थात् साधारण मनुष्योंका मन स्वप्नमें जिधर चाहे उधर भटकता है और थक जानेपर स्वयं वापस आता है। इस विषयमें निम्न प्रकारका एक अनुभव विचार करने योग्य है—

कोल्हापुरमें म. गोलविदेकर नामक एक घराना है। शक१८५६ (ई. स. १८९४) में उस घरानेमें चार भाई और एक माता इतने कुल मनुष्य थे। भाईयोंके क्रमपूर्वक नाम पं० प्रभाकरपंत, वासुदेव, दत्तोपंत और नारायणराव हैं, और माताका नाम श्रीमती रुक्मिणीबाई है। इनमें सबसे ज्येष्ठ भ्राता पं. प्रभाकरपंत कोल्हापुरसे चार पाँच मील दूर अपने केर्ली ग्राममें घरवाडीकी व्यवस्था करता हुआ रहता था। और शेष तीन भाई अपनी वृद्ध माताजीके साथ कोल्हापुर नगरमें रहा करते थे। उक्त वर्षके वैशाख शुक्ल द्वितीयाके दिन रात्रिके तीन बजेके समय उक्त माताजीको स्वप्न (ख्वाब) आया, जिसमें उन्होंने देखा कि अपने ज्येष्ठ पुत्रके मकानमें दीवार तोड कर एक चोर, बैरागीके वेशमें घुस गया है, अपना पुत्र सोया पडा है. और उस निद्रित पुत्रके सिरपर उस चोरने अपने लोहेके चिमटेका आघात किया है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिससे पुत्र मर चुका है। यह स्वप्न देखते ही वह रोती हुई उठी और उसने स्वप्नका वृत्तांत सबको बता दिया। सबने कहा कि स्वप्नही है, उसमें विचार क्या करना है!

इसके पश्चात् दो घंटोंके अंदर उस कोली ग्रामसे पं. प्रभाकरपंतका नौकर आ गया और उसने वही बात ठीक उसी प्रकार कही! तब जाकर निश्चय हुआ कि स्वप्नकी बात बिलकुल ठीक थी।

(१) दीवार को खोदकर चोरका अंदर घुसना,
(२) चोरका बैरागी होना,
(३) चिमटेके आघातसे पुत्रका वध होना,
(४) पं० प्रभाकरजीका वध सोते समय बैरागीके चिमटेसे सिरपर किये आघातसे होना,

इत्यादि बातें जैसी स्वप्नसे प्रथम ज्ञात हो गयी थीं सबकी सब जैसी की वैसीही सत्य सिद्ध हो गईं। इससे पता लग सकता है कि मनुष्यका मन स्वप्नमें दूर दूरके स्थानमें (दूरं गमं) चले जाता है और वहांका सब कुछ हाल देखता है। उक्त माताजीका मन इसी प्रकार पुत्रके ग्राममें चला गया था और उसने पुत्रका वध प्रत्यक्ष देखा था, अन्यथा सब बातोंका पता लगना असंभव था। उक्त कथा प्रत्यक्ष देखनेके कारण निःसंदेह सत्य है। क्यों कि इन बातोंका विचार करनेके लिये जो बात जैसी हो गयी थी वैसी ही कहनी चाहिए। अन्यथा विचार होना ही असंभव है। कल्पित कथाओंका किसी प्रकार भी यहाँ उपयोग नहीं है। इसलिये मैं कभी कल्पित कथा प्रस्तुत नहीं करता।

इस प्रकार वेदमंत्रका दूसरा कथन जो (१) 'तदु सुप्तस्य तथैवैति' (२) 'दूरंगमं' इन शब्दोंद्वारा व्यक्त हुआ था, सत्य है ऐसा सिद्ध हुआ है। (३) 'जाग्रतो दूरं उदैति।' जागते हुए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूरके स्थानपर चले जाता है, इस कथनकी सत्यता उक्त शत-पथके वचनसे, अर्थात् वृष्टिकी सिद्धिसे, सिद्ध हो सकती है, अथवा जो प्रयोग पूर्व स्थानपर दिया है उससेभी किंचिन्मात्र सिद्धि होना संभव है। यदि किसी पाठकका कोई अनुभव हो कि जिससे जागृतिमें भी मनके दूर जानेकी सिद्धि हो सकती है, तो उस अनुभवको वह प्रसिद्ध करनेकी कृपा करे। कोई कल्पित बात नहीं चाहिए, तथा सब अनुभव तर्कदृष्टिसे परीक्षा करके सिद्ध होनेवाला चाहिए।

मनकी दिव्य शक्तिका अनुभव प्राप्त होनेसे ही अपने आत्मिक बलकी कल्पना हो सकती है। इसलिये सबसे पूर्व मनकी विविध शक्तियोंका अनुभव लेना चाहिए। धार्मिक पुरुषोंको तैयार होना चाहिए और इस दिशासे प्रयत्न करना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मनका वेग।

सब कहते हैं कि 'मन' बडा ही चंचल है और मन अत्यंत वेगवान् है; परंतु मनका वेग कितना है और वह एक निमेषमें कितनी दूर जा सकता है, इसका विचार इस समयतक किसीने नहीं किया है। बैल, घोडा, रेलगाडी, चंद्र, सूर्य, आदि वेगवान् पदार्थ हैं। वायु, प्रकाश और विद्युत्का भी वेग अत्यंत है, इन सब पदार्थोंके वेग प्रतिक्षणमें इतने हैं, ऐसा सिद्ध हो चुका है। प्रत्यक्ष दृश्य पदार्थोंसे अदृश्य पदार्थोंतक सबके वेग इस समय विदित हैं, परंतु जिस मनसे उक्त पदार्थोंके वेग नापे जाते हैं, उस मनके वेगका अभी तक किसीको पताही नहीं है।

मनके अंदर वेग है, और वह एक स्थानसे दूसरे स्थान तक जा सकता है, इसका भी बहुत थोडे लोगोंको ज्ञान है। वेग दो प्रकारका होता है, एक अपने ही अंदरकी गति और दूसरी स्थानांतरमें जानेकी गति। मनकी चंचलताका जो मनुष्य अनुभव करते हैं, वे उसकी आंतरिक गतिको मानते ही हैं। चंचलताका यही अर्थ है कि उसके घटक अवयवोंमें बडी विलक्षण गति है। यह आंतरिक गति इतनी अधिक है कि इस गतिके कारण मनको स्थिर करना बडा ही मुश्किल हो गया है। साधारण प्रयत्नसे मनकी स्थिरता होती ही नहीं। योगाभ्यास द्वारा प्रबल निश्चयपूर्वक बडे प्रयत्नोंके साथ इसका निरोध हो सकता है। पचीस घोडोंकी शक्तिसे चलनेवाली मोटार गाडीको सुगमतासे कोई पहलवान रोक सकता है, परंतु मनकी आंतरिक गतिका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निरोध करना बहुतही कठिन कार्य है।

यह विचार मनके आंतरिक वेगका हो गया। परंतु इसका दूसरा भी एक वेग है कि जो एक स्थानसे दूसरे स्थानतक जानेसे संबंध रखता है। मनके इस वेगके विषयमें कई विद्वान् संदेह करते हैं। इस लिये इस बातका यहाँ विचार करना है कि वेदमंत्रोंके कथनका क्या तात्पर्य प्रतीत होता है। आत्माका वेग वर्णन करते हुए वेद कहता है कि—

एकं मनसो जवीयः ॥ यजु. ४०।४

"आत्मा अथवा ब्रह्म मनसे वेगवान् है।" आत्माका वेग मनसे अधिक है, इस कथनसे यह बात सिद्ध होती है कि मनकी गति आत्मासे कम है। अर्थात् आत्मासे भिन्न अन्य सब पदार्थोंकी अपेक्षा मनका वेग अधिक है। हमारे पास निम्न पदार्थ हैं।—

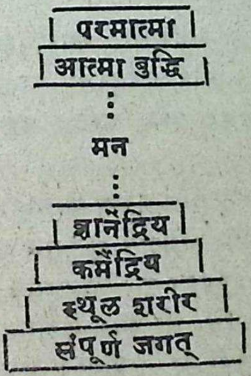

इंद्रियोंकी शक्ति और गति सबके अनुभवमें हैं। उनसे मन वेगवान् है और उससे भी आत्मा वेगवान् है, यह उक्त वचनका तात्पर्य है। अर्थात् यद्यपि मनकी गति आत्मासे कम है, तथापि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य सब पदार्थोंकी अपेक्षा उसकी गति अत्यंत अधिक है, इसमें कोई संदेह नहीं। क्या यह मनकी गति स्थानिक है अथवा स्थानांतरीय है? अर्थात् क्या यह मन अपने स्थानमें रहता हुआ चंचल रहता है अथवा एक स्थानसे दूसरे स्थानतक जाता है? यही बडा गहन प्रश्न है, जिसका विचार इस लेखमें करना है। मनके दूर जानेके विषयमें वेदमें निम्न मंत्र देखने योग्य हैं—

यत् ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम् ॥१॥
यत् ते दिवं यत् पृथिवीं मनो जगाम दूरकम् ॥२॥
यत् ते चतस्रः प्रदिशो मनो जगाम दूरकम् ॥
यत् ते समुद्रमर्णवं मनो जगाम दूरकम् ॥५॥
यत् ते पर्वतान् बृहतो मनो जगाम दूरकम् ॥९॥
यत् ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकम् ॥१०॥
यत् ते परः परावतो मनो जगाम दूरकम् ॥११॥

ऋग्वेद १०।५८

"जो मन द्युलोक, पृथिवी, चारों दिशाएं, समुद्र, बडे बडे पर्वत, सब जगत् और दूरदूरके स्थानोंमें चला जाता है," उसको वापस लानेका यत्न करो। यह उपदेश उक्त मंत्रमें है। इन मंत्रोंमें—

मनः दूरकं जगाम।

इन शब्दों द्वारा "न समझते हुए मन दूर गया था" यह भाव स्पष्ट रीतिसे व्यक्त हो रहा है। "जगाम" क्रिया अज्ञात गतिकी द्योतक है। प्रत्यक्ष गति, जो स्वयं देखी होती है, उसका उल्लेख "जगाम" क्रियासे नहीं हो सकता। मन जो भटकता है वह न समझते हुए ही भटकता है। आप उसको एकाग्र करनेका प्रयत्न करते रहिए, किस समय वह दूर भाग जायगा, कोई भी पता नहीं लगेगा। वह इतना चंचल है। उक्त मंत्रमें "दूरकं" शब्द

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वारा एक स्थानसे दूसरे स्थानतक भाग जानेका मनका धर्म व्यक्त हो रहा है। तथा और मंत्र देखिए—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं, तदु सुप्तस्य तथैवैति ॥ दूरंगमं० ॥ १॥
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं ॥ ६ ॥ यजु० ३४

"जो मन जागृत अवस्थामें दूर जाता है, वैसाही सोनेपर भी दूर जाता है। इसका दूर जानेका स्वभाव ही है।...हृदयमें रहनेवाला यह मन अत्यंत वेगवान् है।" ये मंत्र मनकी सब शक्तियोंका वर्णन कर रहे हैं। परंतु सब मंत्र यहाँ नहीं लिये हैं। उसकी गतिके दर्शानेवाले जितने शब्द हैं, उनका ही यहां विचार करना है। इन मंत्रोंके विभाग निम्न प्रकार कीजिए, जिससे उनका तात्पर्य ठीक प्रकार ध्यानमें जायगा—

दैवं	दूरं गमं
जाग्रतः दूरं उदैति	सुप्तस्य तथैव दूरं एति
अजिरं	जविष्ठं
Agile	Quickest

उक्त मंत्रोंमें "अजिर" और "जविष्ठ" ये दो शब्द भिन्न गतिके वाचक हैं। "अजिर" शब्द अपने अंदरकी चंचलता बता रहा है और "जविष्ठ" शब्द अन्य स्थानमें जानेके स्वभावका वर्णन कर रहा है। "दैवं" शब्दमें भी गति अर्थ है क्योंकि "दिव्" धातुके अनेक अर्थोंमें गति भी एक अर्थ है। "अजिर" शब्दका अर्थ "वृद्धावस्थासे रहित" ऐसा करनेकी परिपाटी है, परंतु गत्यर्थक 'अज्' धातुसे वह शब्द बन सकता है, और इस प्रकार इसका 'गतिमान्' ऐसा अर्थ हो सकता है। वृद्धावस्थासे रहित यह अर्थ "अ-जर" शब्दका हो सकता है। "अजिर" शब्द 'अ-जर' शब्दसे भिन्न है, इस लिये इसका 'गतिमान्' यह अर्थ उचित दीखता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कृत...अजिर
फ्रेंच...Agile (अजिल्)
लातिन...Agilis (अजिलिस्)

संस्कृतमें 'र ल' एकही समझे गये हैं, इस नियमानुसार 'अजिर, अजिल' एक ही हैं। यही गत्यर्थक शब्द लातिन आदि भाषामें गया है। इस निरुक्त-दृष्टिसे भी 'अजिर' का अर्थ 'गतिमान्' करना योग्य है, क्योंकि लातिन, फ्रेंच, अंग्रेजी भाषाके '(Agile) अजिल्' शब्दका अर्थ भी 'गतिमान्' ही है। अस्तु।

उक्त मंत्रमें 'अजिर' शब्द अपनी गति बता रहा है। और 'जविष्ठ' शब्द स्थानांतरमें जानेकी गति बता रहा है। ये दोनों गतियाँ ऋग्वेदके मंत्रमें "दूरकं जगाम" शब्दों द्वारा सामान्य रीतिसे व्यक्त हो रही हैं। तथा—

मनो जूतिः ॥ यजु॰ २।१३

"मन वेगरूप ही है" ऐसा इस मंत्रमें कहा है। "जूति" का अर्थ "वेग" है। वेग ही मन है, अर्थात् मन अत्यंत वेगवाला है॥ निम्न मंत्रमें मनका वेग विशेष रीतिसे बताया है—

मनो-जवा अयमान आयसीमतरत्पुरम्। ऋ॰ ८।१००।८

"मनके वेगके समान दौडता हुआ (आयसीं पुरं) लोहेके कीलेमें पहुंच गया।" इस मंत्रमें 'मनके वेगके समान (अयमानः) दौडनेवाला' यह वर्णन स्पष्ट रूपमें मनका एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जाना बता रहा है। यही मनकी "जूतिः" अर्थात् वेग है। यही बात निम्न मंत्रमें अधिक स्पष्ट हो गई है—

मनो न योऽध्वनः सद्य एति ॥ ऋ॰ १।७१।९

"मनके समान जो (अध्वनः सद्यः एति) मार्गके पार तत्काल जाता है" यह मंत्र तो मनका अन्य स्थानमें जानेका भाव विशेष रूपमें बता रहा है। यह मार्गके पार ऐसे वेगसे जाता है कि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसा मन मार्गके परे जाता है। तथा और देखिए—

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं
मनो जविष्ठं पततत्स्वंतः॥ ऋ. ६।९।५

"जो (ध्रुवं ज्योतिः) स्थिर तेज (कं) सुख देनेवाला (दृशये) देखनेके लिये हृदयमें रखा है वही मन है, वही (पतयत्सु) दौडनेवालोंके (अंतः) अंदर (जविष्ठं) वेगवान् है।"

हृदयमें जो मन है वह सब गतिमान् पदार्थोंमें अत्यंत गतिमान् है। इस प्रकार वेदमंत्रोंका कथन मनके विषयमें है, जिससे सिद्ध है कि मनकी अपने अंदरकी एक गति है, जिसको चंचलता कहते हैं। और उसकी दूसरी दूर देशमें जानेकी गति है, जिससे योगी एक स्थानमें बैठा हुआ दूसरे स्थानकी बात जान सकता है। साधारण मनुष्यके मनमें भी ये दोनों गतियाँ हैं, परंतु वह दूसरी गतिका उपयोग कर नहीं सकता, क्योंकि साधारण मनुष्यके स्वाधीन उसका मन नहीं रहता। बडे परिश्रमसे और योगके विविध प्रकारके प्रयत्नोंसे जब उसको वश किया जाता है, तब वह उक्त सब कार्य कर सकता है। किसी समय योगसाधनके विना भी मनकी उक्त शक्तिका अनुभव आ सकता है। साधारण मनुष्य भी जब अपने प्रेमी मनुष्यके संबंधमें विशेष प्रबल इच्छा करता है, तब उसकी मानसिक इच्छाका आघात दूर स्थानके मनुष्यके मनपर होता है। इस विषयमें एक प्रत्यक्ष देखा हुआ उदाहरण नीचे देता हूं—

वर्धा नगरकी अंग्रेजी पाठशालामें म० गोविंदराव बावले (बी. ए., एल्. टी.) अध्यापकका कार्य कर रहे थे। और इनकी धर्मपत्नी श्रीमती चंद्राबाई, बालक कमल और बालिका लीलाके साथ, औंध (जि. सातारा) में अपनी माताके घर कुछ दिन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न थी, इस लिये मंगलवारके दिनतक उनको वहां ही उसी प्रकारकी उदासीनतामें रहना पडा।

मंगलवारके दिन प्रातःकालके समय एक और आश्चर्य हुआ। वह यह कि अपना पुत्र अपनेको अपने नामसे पुकार रहा है ऐसा तीन चार वार उन्होंने सुना। पुत्रका परिचित शब्द सुनकर उनको भास हुआ कि पुत्र आदि आ गये हैं। परंतु इधर उधर देखनेके पश्चात् विदित हुआ कि वह केवल भ्रम ही था।

इतना होनेपर भी म० गोविंदराव और उनके मित्र यही समझते थे कि ये सब चित्तकी भ्रांतिके प्रकार हैं। अंतमें बुधवारके दिन उन्होंने वर्धासे औंधको तार दिया और पत्नीकी कुशलताका वृत्तांत पूछा। परंतु तारका जवाब न आया, जिससे दुःखित होकर वे वर्धासे चल पडे और औंध पहुँचे। तब उनको पता लगा कि धर्मपत्नी और प्रिय पुत्र इस लोकसे क्रमशः उसी रात और उसी दिनके समय चल बसे कि जिस समय उन्होंने स्वप्न देखा और जिस समय पुत्रके शब्द सुने।

इस लेखका लेखक संपादक जहां रहता था वहां ही यह वृत्तांत हुआ इसलिये उक्त सब बातें उसको पूर्ण रीतिसे विदित हैं। जब औंधका वृत्तांत और वर्धाका पतिका भ्रम साथ साथ मिलाया गया, तब विशेष ही आश्चर्य प्रतीत हुआ। उसका सारांश निम्न प्रकार है—

(१) पति और पत्नीमें करीब छः सौ मीलका अंदर था। पति और पत्निके मनमें परस्पर मिलनेकी आतुरता बहुत ही बढ गई थी।

(२) पत्नी और पुत्रकी बीमारीका कोई ज्ञान पतिको न था, परंतु पतिके मनमें यही विश्वास था, कि अब धर्मपत्नी शीघ्र ही आ जायगी और पुत्र आदि सब कुशल ही हैं। क्योंकि ऐसा ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पत्र एक सप्ताह पूर्व पतिके हाथमें पहुंच गया था ।

(३) पत्नीका बुखार जिस दिन और जिस समय बढ गया, उसी समय और उसी दिन पतिका मन उदासीनतासे व्याकुल होने लगा, जिस उदासीनताके लिये वहाँका कोई स्थानिक कारण न था । और यह उदासीनता उसी प्रमाणसे बढ गई कि जिस प्रमाणसे यहाँ पत्नीकी बीमारी बढने लगी । साथ साथ पुत्रका ज्वर भी प्रारंभ हुआ ।

(४) जिस रात्रिमें पत्नीकी मृत्यु हो गई उसी रात्रिमें दो तीन घंटे पूर्व पतिको पूर्वोक्त स्वप्न हुआ ।

(५) पुत्रकी मृत्यु भी ठीक उसी समय हुई कि जिस दिन और जिस समय पिताने पुत्रका आवाज तीन चार बार सुना था । इसमें सबसे आश्चर्य यह है कि मृत्युके पूर्व पुत्रने अपने पिताका नाम जोर जोरसे तीन चार बार लिया था और तत्पश्चात् ही उसकी मृत्यु हो गई थी ।

(६) इस समयतक पतिको अपनी पत्नी और पुत्रकी मृत्युकी कोई खबर नहीं थी । परंतु उनका चित्त इतना शोकमय हो गया था कि, जैसा इनका मृत्यु साक्षात् देखनेसे हो सकता था । यहाँ आनेके पश्चात् ही पतिको उनकी मृत्युका ज्ञान हुआ था ।

पूर्वोक्त कथनमें जो विचार करने योग्य बातें हैं, उनको ऊपर रखा है । प्रत्यक्ष देखनेके कारण इनके सत्य होनेमें कोई शंका ही नहीं है । यद्यपि हरएक बात विचार करने योग्य है, तथापि-

(१) स्वप्नकी बात और (२) पुत्रका शब्द सुननेकी बात विशेष विचार करने योग्य है । उनमें भी पुत्रका आवाज़ जैसा सुननेका वृत्तांत विशेष महत्व रखता है । क्योंकि मृत्युके पूर्व पुत्रने "काका, काका, काका" ये ही शब्द पुकारे थे और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पिताने भी ये ही शब्द सुने थे। यह लडका अपने पिताको "काका" नामसे ही पुकारा करता था और पितापुत्रका प्रेम विलक्षण दृढ था।

संभव है कि पिताके मनमें विलक्षण उदासीनता अपनी ही संशयवृत्तिसे उत्पन्न हो गई होगी; परंतु यह संभव मानना कठिन है, की जिस समय जिस दिन पुत्रने "काका" नामसे पिताको जितनी बार पुकारा हो, उसी दिन उसी समय और उतनी बार पिताके कानमें वे ही शब्द पडना, पिताकी ही मनकी कल्पना है। इस लिये इसमें कोई बात "मानसिक संदेश" की होना अधिक संभव है। स्वप्नके विषयका भी इसी बातसे संबंध प्रतीत होता है।

कई लोग कहेंगे कि स्वप्न भी कल्पनासे हो सकेगा। परंतु उक्त शब्दोंका सुनना तो जागृतिमें ही हुआ था। जागृत अवस्थामें शब्दका सुनना विशेष बातकी सिद्धि कर सकता है। कई भोले लोग कहते हैं कि मृत्युके समय स्त्रीका आत्मा भूत बनकर वहाँ पहुँचा था, परंतु विचार करनेसे भूतप्रेतकी कल्पना यहाँ सजती ही नहीं। क्योंकि भूत प्रेत तो शरीरका और सूक्ष्म देहका माना भी जा सकता है, परंतु कपडेलत्तोंका भूत मानना असंभव है। जिस समय जो कपडे मरनेवाली स्त्रीके शरीरपर थे, यदि वैसे ही कपडोंके साथ उसीही प्रकार दिखाई देता, तो भूतकी कल्पना संभव मानी जाती। परंतु वैसा नहीं हुआ। स्वप्नमें जो पत्निकी मूर्ति नजर आगई वह हमेशाके कपडोंमें और हमेशाके जेवरोंके साथ साथ थी। इस लिये यहाँसे भूत वहाँ गया ऐसा नहीं माना जा सकता। पतिके मनमें जो स्त्रीविषयक चिंता और उदासीनता उत्पन्न हो गई थी, उसके कारण पतिकी स्त्रीविषयक मानसिक कल्पना ही स्वप्नमें प्रकट हो गई। स्वप्नकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मूर्तिका यह स्पष्टीकरण हो सकता है, परंतु उदासीनताका कारण केवल काल्पनिक नहीं माना जा सकता। क्योंकी उसका संबंध पत्नीके ज्वरके समयके साथ स्पष्ट दिखाई देता है।

जब पत्नी ज्वरित हो गई और जब पतिके पास जानेका उनका मनोरथ सिद्ध होना असंभव हुआ, तथा जब उनको अपनी बीमारीका असली भयानक स्वरूप विदित हुआ, तब उनका मन मानसिक संदेश द्वारा पतिके मनको धक्का देने लगा। यही कारण है कि जिससे पतिका मन एकाएक उदासीन बन गया और अंततक पूर्ववत् उत्साहपूर्ण नहीं हुआ।

जहाँ प्रेमका संबंध होता है, जिनके हृदय परस्पर प्रेमभावसे मिले हुए होते हैं, उनमेंसे एक हृदय दुःखी अथवा सुखी हो जानेसे दूसरेके हृदयमें भी, बिना किसी दृश्य कारणके, वे ही सुख अथवा दुःखके भाव उत्पन्न होते हैं। यह मनका धर्म है। तथा इसके लिये स्थानकी दूरतासे कोई प्रतिबंध नहीं हो सकता। क्योंकि मन अत्यंत वेगवान् है। उसी क्षणमें जितना चाहे दूर जा सकता है।

पुत्रका आवाज सुननेके विषयमें इतना कहना आवश्यक है, कि यहाँसे छः सौ मील अंतरपर यहांकी आवाज पहुँची, यह संभव ही नहीं है। यह भी मानसिक संदेशका ही प्रकार है। पुत्रके मनकी प्रबल भावनाका परिणाम पिताके मनपर हुआ और उसके कारण उक्त शब्द सुननेका भ्रम हो गया। मनमें जो दृढ भावना हो जाती है, वह जैसी मूर्तिरूपमें आँखोंसे दिखाई देती है, उसी प्रकार शब्दरूपमें कानोंसे सुनाई देती है। इस लिये शब्दोंका स्थानांतर माननेकी यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है। मानसिक संदेशके मानसिक आघातोंका यह चमत्कार है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधकी कल्पना मनसे होती है, इस लिये जैसा मनमें रूपका भास हो सकता है, वैसा ही शब्दोंका श्रवण मनमें भी भासरूपसे हो सकता है। तथा अन्य विषयोंका भी भास हो सकता है। भास उसको कहते हैं कि जो विषयकी वास्तविक अनुपस्थिति होनेपर भी उसकी प्रतीति होती है। इसी नियमके अनुसार पूर्वोक्त कथनमें पुत्रके शब्दोंका भावरूप श्रवण उसके पिताको हो गया था। इसमें मुख्य बात मानसिक आघातकी है और शब्दश्रवण मानसिक आघातोंका ही परिणाम है।

कानसे शब्दोंका श्रवण होता है, परंतु मनका संबंध कर्ण इंद्रियके साथ न हुआ, तो बडेसे बडा भी शब्द सुनाई नहीं देता, इस बातका अनुभव हरएकको है। जब एक मित्र दूसरेको कई बार पुकारता है, जब वह बार बार पुकारनेपर भी नहीं सुनता, तब उस समय वह पुकारनेवाला दूसरेसे कहता है कि 'अरे! तेरा मन कहाँ गया है?' अर्थात् मनके संबंधसे श्रवण होता है इस बातको सब ही जानते हैं। जिस प्रकार बाहिरके शब्द कर्णेन्द्रियद्वारा मन ही सुनता है, तद्वत् ही मनमें उद्भूत होनेवाली शब्दोंकी अथवा अन्य विषयोंकी कल्पना, कानोंसे अथवा उस उस विषयके अन्य इंद्रियसे प्रत्यक्ष होनेका भास होता है। बाहिरसे धक्का आ जावे अथवा अंदरसे प्रेरणा हो जावे, दोनोंका परिणाम एक समान होता है। इतनी विलक्षण शक्ति मनमें है।

उक्त पतिको यदि योगसाधनादि द्वारा मनकी स्वाधीनताकी सिद्धि प्राप्त होती, तो स्त्रीके मनद्वारा प्रेरित मानसिक संदेश ठीक रूपमें देखने और जाननेकी संभवना होती। परंतु प्रेरणा भेजने और प्रेरणा लेनेवाले साधारण जन होनेसे केवल मनपर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदासीनता ही रही और कारणका ज्ञान न हुआ।

अस्तु । इस प्रकारकी थोडीसी बातें इस पुस्तकके लेखकने देखी हैं। इस प्रकारकी दो चार कथाओंसे मनोविज्ञानके किसी सिद्धांतका निश्चयात्मक ज्ञान अथवा आविष्कार होना नहीं है। एक एक बातको सिद्ध करनेके लिये भिन्न भिन्न परिस्थितिके प्रत्यक्ष देखे उदाहरण सैकडोंकी संख्यामें एकत्रित करने चाहिएँ और इन कथाओंकी परीक्षा करनेवाले अंधविश्वासी नहीं होने चाहिएँ। तब कभी जाकर किसी सिद्धांतकी स्थिरता हो सकती है।

ऊपरकी कथासे जो अनुमान ऊपर लिखे हैं, उससे वे ठीक प्रकार अवश्य ही सिद्ध हो रहे हैं, यह मेरा बिलकुल आग्रह नहीं है। कदाचित् होंगे और कदाचित् न भी होंगे। जब इस प्रकारकी सैकडों बातें सैकडों प्रसंगोंमें देखीं जायँगीं तब कभी जाकर हम किसी परिणाम तक पहुँच सकेंगे। इस प्रकारकी एक कथा इसी पुस्तकके पूर्वलेखमें दी है, यह दूसरी कथा है। पाठकोंको भी उचित है कि वे जब कभी संभव हो तब इस प्रकारके कथाप्रसंगोंका ध्यान रखा करें और भोलेपनका विचार छोडकर चिकित्सक दृष्टिसे निरीक्षण और परीक्षण करके, उन प्रसंगोंकी प्रसिद्धि करें, जिससे कि किसी मनोविज्ञानकी बातका पता लगना संभव हो। यों ही मनःकल्पित कथाएँ नहीं चाहिएं। जो वास्तवमें जिस रूपमें हुई हैं उसको वैसा ही बताकर यदि उससे किसी सिद्धांतका पोषण हो सके, तो करनेका यत्न करना चाहिए। आशा है कि पाठक भी इस दृष्टिसे बातें देखकर विचारकी संगतिद्वारा सहायता करेंगे। यह कार्य किसी एकका नहीं है, परंतु सब वैदिक धर्मियोंका है। वेदके मंत्रोंका इसी प्रकार प्रत्यक्ष अनुभव देखा जा सकता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि इस समय हमारी गलती हो जायगी तो हमारे पीछेसे जो अच्छे मनुष्य आ रहे हैं, वे उसको ठीक करेंगे। हमारा अनुमान यदि गलत होगा, तो दूसरे ठीक अनुमान निकाल सकेंगे। परंतु इस मार्गसे कार्यका प्रारंभ होना चाहिए। इसी उद्देशसे ऊपर लिखी कथा और अपने अनुमान पाठकोंके सम्मुख रखे हैं। सिद्धि असिद्धिका किसी प्रकार आग्रह रखनेकी इच्छा ही नहीं है। आशा है कि पाठक भी यही निर्विकार दृष्टि धारण करके इसका विचार करेंगे।

वेदमें मनका "दूरं-गमं, जविष्ठं" आदि शब्दोंद्वारा वर्णन किया है। मन एक स्थानसे दूसरे स्थानको पहुंचता है, इस विषयमें वेदके कथन स्पष्ट हैं। योगके पुस्तकोंमें भी यह सिद्धि लिखी है कि एक स्थानपर बैठा योगी ध्यानद्वारा दूसरे स्थानकी बात जान सकता है। तथा मनके स्थानान्तरके लिये स्थानकी दूरताका कोई प्रतिबंध नहीं है। एकके मनकी शक्तिका दूसरेके ऊपर परिणाम होता है, मानसिक चिकित्साका यही मूल मंत्र है। जो मानसचिकित्सा वेद कह रहा है, उसको प्रत्यक्ष करनेके लिये वैदिक धर्मियोंके यत्न होने चाहिएँ। मानसचिकित्साका उपहास करना योग्य नहीं है, क्योंकि वेदमें वही मुख्य और श्रेष्ठ चिकित्सा कही है।

"जो देवताओंमें विद्युत् है, वही शरीरमें मन है।" यह बात केनोपनिषद् के अंतमें कही है। अन्य स्थानोंमें प्रायः चंद्रमाका मनके साथ संबंध बताया गया है। बहुत थोडे स्थानमें विद्युत्का मनसे संबंध बताया है। यह मुझे पता नहीं कि "विद्युत्" और "चंद्रमा" शब्द वैदिक वाङ्मयमें समानार्थक हैं वा नहीं। परंतु इन दोनोंका मनके साथ संबंध जोडा है, इस बातसे कुछ न कुछ उनका परस्पर संबंध माना गया है, ऐसा पता लगता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

केनोपनिषद् के अनुसार मन विद्युत् तत्त्वका बना है। उपनिषदोंमें मनको वैद्युत् ही कहा है, इसका यही हेतु प्रतीत होता है। यदि मन वैद्युत् है तो विद्युत्के वेगके समान उसका वेग होना चाहिए। विद्युत्का वेग प्रतिक्षण सवा लाख मील समझा जाता है। यदि मन वैद्युत् है तो उसका भी यही वेग होना उचित है। यदि इसका वेग इतना बडा है और यह क्षणमें लाख मील दूर तक पहुंच सकता है, तो स्थानकी दूरी इसके लिये कुछ भी नहीं है।

पाठक इन बातोंका विचार करें और मनकी विलक्षण शक्ति जानकर उसका विकास करनेका यत्न करें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वप्नका एक अनुभव ।

श्री० म० ख्यालीराम हीरालालजी गुप्त, नया बाजार, छावनी नीमचका लिखा हुआ ता. २५।६।२१ का पत्र प्राप्त हुआ, उसमें निम्न बातें लिखीं हैं—

" वैदिक धर्म " में " मनका वेग " लेख पढकर मैं आपको मेरा अनुभव लिखकर भेजता हूं।—

" (१) मैं ता० २७ फर्वरी स० १९२१ को गुरुकुल इंद्रप्रस्थमें मेरा इकलौता बालक (चि. वासुदेव ऊर्फ ब्र० भवभूति) प्रवेश कर आया था । तत्पश्चात् कई पत्र उनकी राजीखुशीके आते रहे। ता० १४ अप्रैल स० १९२१ का गुरुकुलसे लिखा हुआ पत्र मुझे ता. १६ अप्रैलको प्राप्त हुआ, जिसमें पुत्रकी राजीखुशीके समाचार थे।

"(२) ता. १७ अप्रैल स. १९२१ के दिन किसी विशेष कारणके बिना मेरा चित्त गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ जानेके लिये बहुत ही उत्सुक हुआ । परंतु मैं वहां न जा सका। दूसरे दिनसे मेरा चित्त बहुतही व्याकुल और उदास हुआ और साथ साथ शरीर भी बिगडता गया। भूख वगैरा मिट गई । प्रतिक्षण वहां पहुंचनेकी इच्छा बराबर प्रबल होती गई ।

"(३) ता० २० अप्रैल स० १९२१ की रात्रिके चौथे प्रहरमें अर्थात् ता. २१ के प्रातःकालमें अनुमान ५-५॥ बजेके मेरी स्त्री मेरे पिताजी, जो क्रमशः ६ और १८ वर्ष पूर्व मर चुके थे, स्वप्नमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आकर कहते हैं कि– "घबराओ मत, होशियार रहो, अब सोचो कि यह क्या होता है।"

"(४) मुझे पहिले भी दो वर्ष पूर्व (स. १९१९ में) स्वप्न हुआ था, उस स्वप्नमें मेरे मृत पिताजीने आकर कहा कि "वासुदेव गुजर गया।" मैंने पूछा कि "कहां?" उत्तर मिला कि "गुरुकुलमें।" पिताजीने उसी स्वप्नमें फिर कहा कि "तेरा एकही बालक था, वह गुजर गया, तू किसीकी मानता नहीं।" यह स्वप्न देख कर मेरी आंखें खुलगईं, घबराकर देखा तो पुत्र मेरे बिस्तरे पर ही सो रहा था। (यह दो वर्ष पूर्वके समय स्वप्न हुआ, मैं इसको असत्य समझता था। परंतु बात वैसीही बन गई।)

"(५) ता० २१ अप्रैल स० १९२१ के प्रातःकालसे गुरुकुल जानेकी इच्छा मंद हो गई और फिर कभी वैसी उत्सुकता नहीं हुई।

"(६) ता० २३ अप्रैल स० १९२१ के प्रातःकाल ही गुरुकुलका पत्र प्राप्त हुआ, उसमें लिखा था कि "बालकका स्वर्गवास ता० २१।४।२१ को ६ बजे प्रातः हो गया। ता. १९ को विशेष ज्वर हुआ, ता० २० को सरसाम (सन्निपात) हो गया और ता० २१ को प्रातः यह घटना होगई।"

"(७) न कोई बालककी बीमारीकी खबर थी, अचानक यही पत्र प्राप्त हुआ और विशेष कुछ लिखा नहीं जाता। मैं स्वप्न वगैरा की बातें झूठीं समझा करता था, और न मुझे बहुत स्वप्न आते हैं, जो जैसे आये वेही आपको लिखें।

"(८) उक्त घटना होनेके पश्चात् इंद्रप्रस्थ गुरुकुलमें जाकर वहांके डाक्टरजीसे पूछनेपर विदित हुआ कि ता० २०।४।२१ के रात्रिको तथा ता० २१ के प्रातःकाल ठीक जिस वक्त मुझे स्वप्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुआ मेरा प्रिय पुत्र मेरे लिये तडफ रहा था, मुझे पुकारता तथा मेरे लिये उठ उठ कर भागता था। डाक्टरजीने पूछा कि 'कहाँ जाता है?' पुत्रने उत्तर दिया कि 'हमारे घर मेरे दादाजीके पास जाऊँगा।' (पुत्र मुझे दादाजी कहता था)"

इसपर विचार ।

इस प्रकार स्वप्नका वृत्तांत किसी किसी समय बराबर अनुभव में आता है। उक्त स्वप्नके संबंधमें निम्न बातें विचार करनी योग्य हैं—

(१) पुत्रकी बीमारीका वृत्तांत पिताको बिलकुल विदित नहीं था, परंतु पत्रद्वारा पुत्रकी कुशलताकाही पिताको पता हुआ था।

(२) जिस समय पिताके मनमें गुरुकुल जानेकी इच्छा उत्पन्न हुई थी उसी समय गुरुकुलमें उनका पुत्र अस्वस्थ होने लगा था और जब पुत्रकी बीमारी बढगई तब उस उदासीनताका परिणाम भूख आदि मिटनेमें हुआ। *

(३) पुत्रकी मृत्यु होनेके पश्चात् गुरुकुल पहुंचनेकी पिताके मनमें इच्छा कम हो गई और फिर वैसी इच्छा हुईही नहीं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जिस समय पुत्र रोगवश होनेके

---

* यहां पता लग सकता है कि मनकी उदासीनतासे पेटके पचन-व्यापारमें भी कितना परिवर्तन होता है। इसके उलटाभी परिणाम होता है, अर्थात् यदि मन उत्साहपूर्ण आनंदित रहा तो पेटकी कमजोरी दूर होकर भूख बढती है। मन प्रसन्न रखनेका इस प्रकार शरीरपर हितकारक परिणाम होता है। यही कारण है कि उदासीन विचारोंसे आयुष्य घटता है और उत्साहपूर्ण विचारोंसे दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। इस प्रकार अपने स्वास्थ्यकी कुंजी अपने ही मनमें है और वैद्यकी गोलीमें नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारण अस्वस्थ हुआ, उसी समयसे पुत्रके मनमें पिताके पास जानेकी इच्छा हुई, वह पिताका स्मरण करने लगा और उसका परिणाम पिताके मनपर होनेसे,पिताके मनमें भी गुरुकुलमें जाकर पुत्रको देखनेकी इच्छा प्रबल हुई। पुत्रकी बीमारीकी प्रबलताके साथ, पिताके मनकी इच्छा भी वहाँ पहुँचनेके लिये प्रबल हो गई, यह बात मानसिक संदेशका वेग बता रही है।

उक्त बातोंका परस्पर संबंध अत्यंत स्पष्ट है। स्वप्नका समय और पुत्रके मृत्युका समय ठीक एकही है। उस स्वप्नके पश्चात् पुत्रदर्शनकी अभिलाषा पिताके मनमें न होनेका कारण स्पष्टही है, क्योंकि मानसिक संदेश भेजनेवाला पुत्रका मन उस समय पुत्रके शरीरसे अलग हो चुका था और पुत्रका आत्मा मरणोत्तर-कालीन सुप्त अवस्थामें पहुँचनेके कारण, न तो उसको अपनी बीमारीका पता था और न पिताका स्मरण था।

स्वप्नमें मृत पिताका और मृत स्त्रीका दर्शन और उनके शब्द विचार करने योग्य हैं। उन शब्दोंका संबंध मृत पुत्रकी मृत्युके समयकी अवस्थाके साथ स्पष्ट है। इस विषयमें विशेष निश्चयकी बात लिखी नहीं जा सकती, क्योंकि इस प्रकारके मृत पुरुषोंके स्वप्नमें दर्शन होनेके विषयमें अधिक प्रमाणोंकी आवश्यकता है, तथा अधिक सूक्ष्म विचार होनेकी भी आवश्यकता है। इसलिये इस विषयमें यहां कुछभी लिखनेका विचार नहीं है, परंतु जो बातें बाह्य सृष्टिमें हो गई हैं, उस विषयमें स्पष्ट प्रमाण होनेके कारण थोडासा लिखनेका विचार किया है।

पितापुत्रका अत्यंत प्रेम था। अकेला एक पुत्र दूर गुरुकुलमें होनेसे पिताका मन पुत्रके विषयमें आतुरताका भाव रखता होगा। इस प्रकारका आतुर मन अत्यंत नरम और कोमलसा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता है, इसी कारण उसपर मानसिक आघात शीघ्र परिणाम कर सकते हैं । यही कारण है कि जिस समय पुत्रके मनमें पितृ-दर्शनकी उत्सुकता हो गई, अथवा पुत्रका मन शरीरकी अस्वस्थताके कारण व्याकुल हुआ, उसी समय पिताके मनपर भी उसका परिणाम हो गया ।

सितार, बीन आदि वाद्य जो बजाते हैं, उनको अनुभव है कि एक तार बजानेसे, उस तारके स्वरके साथ मिले हुए जितने तार होंगे उतनेही विना बजाये आवाज देने लगते हैं । पिता-पुत्र, स्त्री-पुरुष, इष्टमित्र आदिमें यदि मानसिक संबंध अत्यंत प्रेमका होगा, तो एकके भाव दूसरेके मनमें उद्भूत होना अत्यंत स्वाभाविक बात है । एकको दुःख होनेसे दूसरेका मन इसी कारण उदास होने लगता है ।

मन विद्युत् तत्त्वका बना है, अथवा यों समझिये कि विद्युत्-शक्ति मनमें केंद्रित हुई है । तथा संपूर्ण जगत्‌में विद्युत्तत्त्व पूर्णतासे व्याप्त है । अर्थात् जगद्व्यापक विद्युत्तत्त्वके साथ हमारे मनका संबंध है । इसलिये एक मनमें सुखदुःखादि विचारोंके कारण जो न्यूनाधिक हलचल होती है, उसके आघात बाहिरके विद्युत्‌में होते हैं और वे आघात इस विद्युत्‌द्वारा तत्सदृश दूसरेके मनतक पहुंचते हैं । ये आघात् हरएकके मनपर इसलिये असर नहीं कर सकते, क्योंकि हरएकका मन एकसाही नरम अथवा सख्त नहीं होता । मनकी न्यूनाधिक अवस्थाके कारण सम अवस्थाका मनही कंपित हो सकता है ।

इतना विचार होनेपर भी दो वर्ष पूर्वके स्वप्नमें, जब कि पुत्र गुरुकुलमें दाखिल भी नहीं किया गया था, उस समयके स्वप्नमें 'गुरुकुलमें पुत्रकी मृत्यु हुई' यह बात दिखाई पडना विलक्षण प्रतीत होता है । परंतु आश्चर्य यह है कि उसी स्वप्नके अनुसार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंतमें बात बन गई। कई विचारी पुरुष ऐसे प्रसंगोंको देखकर ही कहने लगते हैं कि मृत्युका समय निश्चित हुआ करता है। परंतु "मृत्यु दूर किया जा सकता है," इस विषयमें वेदके मंत्र अत्यंत स्पष्ट हैं, दीर्घ आयु प्राप्त करनेके विषयमें योगके कथन तथा आर्ष वचन इतने स्पष्ट हैं कि उनके संबंधमें शंका भी नहीं हो सकती।

इसलिये विचार करना चाहिये कि दीर्घ आयुष्य कौन प्राप्त कर सकता है और कौन नहीं। यद्यपि स्वप्नका विचार करनाही इस लेखका मुख्य उद्देश है, तथापि प्रसंगतः यहां इतना कह देना पर्याप्त होगा कि, (१) बालक अवस्थामें स्वतंत्र पुरुषार्थकी कर्तृत्वशक्ति विकसित न होनेके कारण, उस अवस्थामें जो बातें होती हैं, उनका संबंध निश्चितरूपसे पूर्वकर्मोंके साथही होता है। (२) "मै यह करूँगा, और मैं ऐसा बनूँगा" इस प्रकारकी प्रबल इच्छाशक्ति यौवनके प्रारंभसे अर्थात् १५ वर्षकी आयुके पश्चात्, किंवा विशेष अवस्थामें ८ वर्षकी अवस्थामें भी बनती है। (३) जो सज्जन इस प्रकारकी प्रबल इच्छाशक्ति बनाते हैं और योग्य सुनियमानुसार योगाभ्यासादिद्वारा अपनी आयु बढानेका पुरुषार्थ करते हैं, उनकी दीर्घ आयु होती है। (४) परंतु सर्वसाधारण जनता योगादि श्रेष्ठ मार्गके अनुसार नहीं चलती, इसलिये उनका संपूर्ण जीवन पूर्वकर्मके वेगके अनुसार ही हुआ करता है।

इस स्पष्टीकरणसे पता लग सकता है कि कौन पूर्वकर्मके प्रवाह में बह जानेवाले होते हैं, और कौन पूर्वकर्मोंके प्रवाहको तोडकर अपनी इच्छानुसार उसका वेग बदलनेवाले होते हैं। वैदिक धर्म के उपदेशानुसार मनुष्य अपना व्यवहार करेगा, तो वह कर्मोंके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेगको अपनी इच्छानुसार बदलनेकी योग्यता निश्चयसे प्राप्त कर सकता है, परंतु ऐसा होनेके लिये वैदिक धर्मके लोग अनुष्ठानी होने चाहियें। जो अनुष्ठान करेंगे वे प्रत्यक्ष अनुभव भी प्राप्त कर सकते हैं। आजकल जो वेदके विषयमें प्रेम दिखाई देता है वह केवल बातोंमें है, तथा सब प्रयत्न दूसरोंके सुधारके लिये हो रहे हैं!! परंतु स्मरण रहे कि फुरसतके समयके प्रचारसे सच्चे धर्मकी जाग्रति नहीं हो सकती; क्यों कि जो दीप स्वयं जलता नहीं है, वह दूसरे दीपोंको जगा नहीं सकता। अस्तु। यही कारण है कि वैदिक धर्मके प्रचारका कार्य भी प्राचीन आर्योंकी रीतिके अनुसार नहीं होता है, परंतु पश्चिमीय विचारोंकी लहरोंके अनुसार होता है। स्वयं अपने अंतःकरणका दीप वेदाध्ययनसे जगाकर, अनुभवके पश्चात्‌ही दूसरेंके अन्दर दीप जगानेका यत्न होना चाहिये। अस्तु।

प्रचलित विषय स्वप्नका है। दो वर्ष पूर्व अपने पुत्रका मरण जिसने अपने स्वप्नमें देखा था, उसीने अपने पुत्रका मरण गुरुकुलमें होनेका अनुभव लिया, और पुत्रके मरणसमयमें भी स्वप्नसेही उसको मृत्युकी सूचना मिली। इसका विचार करनेके समय यह मृत्यु बाल्यावस्थामें हुई है, यह बात भूलना नहीं चाहिये। पूर्व स्थलमें कहा ही है कि बाल्यावस्थामें होनेवाली मृत्यु पूर्वकर्मानुसार होती है अर्थात् जो बात पूर्वकर्मानुसार होती है वह निश्चित होती है। जो बात निश्चित होती है, उसका समय और स्वरूप भी निश्चित हो सकता है। जो बात निश्चित समयमें, निश्चित रूपसे होनेवाली होती है, उसका जैसा पता उस समयमें लग सकता है, उसी प्रकार उस समयके पूर्व भी लग सकता है। जैसा सूर्यचंद्रके ग्रहणोंका पता कई वर्ष पूर्व भी लग सकता है, क्यों कि सूर्यचंद्र आदि ग्रहोंकी गति निश्चित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निश्चित होनेसेही पहिले पता लग सकता है। जो कोई बात निश्चित होती है उसका पता पहिले भी लग सकता है, परंतु पुरुषार्थकी बात अनिश्चित होनेके कारण पुरुषार्थी योगी इच्छा-मरणीभी हो सकता है, इसलिये उसके विषयमें भविष्यकी बातें जानना असंभव है। परन्तु जो कर्मके प्रवाहकी गतिके अनुसार बह रहे हैं, वे इतने समयमें वहांतक पहुचेंगे, ऐसा कहा जा सकता है। जो कर्मकी गतिका विज्ञान जानेंगे उनका अनुमान ठीक होगा, औरोंका गलत भी हो सकता है।

उक्त पुत्रकी मृत्यु गुरुकुलमें निश्चित थी, क्यों कि पुरुषार्थकी आयु प्राप्त होनेके पूर्वही वह होनेवाली थी। उसकी मृत्युका निश्चय होनेके कारण उसकी मृत्युकी कल्पना सर्वव्यापक यम-स्वरूप परमेश्वरकी व्यापक बुद्धिमें पहिलेही निश्चयरूपसे होनी स्वाभाविक है। यदि किसीका मन किसी कारण परमेश्वरकी बुद्धिके साथ संलग्न हो गया तो वह मृत्युकी उस कल्पनाको जान सकता है। इस प्रकार किसी किसीको उन बातोंका पता पहिलेही स्वप्नमें होता है कि, जो बातें भविष्यमें बननेवाली होती हैं। इसका और एक उदाहरण जो अभी प्रत्यक्ष देखनेके कारण विश्वास करने योग्य है, जैसा हुआ वैसाही यहाँ लिखता हूं—

और एक स्वप्न।

"(१) ता. १० जून स. १९२१ शुक्रवारकी रात्रिमें मेरी धर्मपत्नीको एक स्वप्न हुआ। जिसमें उन्होंने देखा कि श्री. युवराज राजासाहिब महाराजाका द्वितीय पुत्र सायंकालके समय मर गया और उसके शवको नौकर लेजा रहे हैं" इ०।

"(२) दूसरे दिन उक्त स्वप्नका वृत्तांत धर्मपत्नीने मुझे सुनाया, परंतु जिस पुत्रके विषयका स्वप्न था वह वैसा बीमार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न होनेके कारण हमको उक्त स्वप्न केवल कल्पनारूपही विदित हुआ।"

"(३) उस पुत्रकी बीमारीकी अथवा स्वास्थ्यकी कोई बात धर्मपत्नीको विदित न थी। और जिस समय उक्त स्वप्न हुआ उस समय वह कोई विशेष बीमार भी नहीं था।"

"(४) शनिवारके दिन सायंकाल राजासाहिबके डाक्टरोंने पुत्रके स्वास्थ्यकी परीक्षा की तो पता लगा कि उसको घटसर्पकी (डिप्थेरिया) बीमारी हो गई है। यह बीमारी भयानक होनेके कारण बडे बडे डाक्टर बाहिरसे भी बुलाये गये और बडे प्रयत्नसे इलाज होता रहा।"

"(५) सोमवार (ता० १३ जून १९२१) के दिन पूरे दिनभर आराम भी रहा। तीन डॉक्टर अपनी पराकाष्ठा कर रहे थे। परंतु अंतमें सोमवारके सायंकालमें सात बजानेके समय दस पांच मिनिटोंमें ही बीमारी बढ गई और उस तीन वर्षकी आयुके बालकका देहांत हो गया।"

इस प्रकार प्रत्यक्ष मेरे सामने यह स्वप्नका अनुभव हुआ है। यह बात आँधमें मेरे सन्मुख हुई। जैसी घटना हुई वैसीही ऊपर लिखी है। जिस दिन जिसके विषयमें स्वप्न हुआ उस दिनके तीन दिन पश्चात् उसी लड़केका देहांत हुआ। स्वप्नमें देहान्तका समय सायंकालकाही था। मृत्यु होनेसे तीन दिन पूर्व लडकेके स्वास्थ्यकेही समय, उसीके मृत्युका दृश्य स्वप्नमें दिखाई दिया। यह विलक्षण बात है; इसलिये मानसशास्त्रका विचार करनेवालोंके लिये यह विचार करने योग्य बात है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

स्वप्न कैसे होते हैं और इनमें सत्यका भाग रहता है वा नहीं, इसका यहां अवश्य विचार करना है। स्थूल शरीरका संबंध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छूटने और सूक्ष्म शरीरपर ही केवल कार्य करनेकी अवस्थामें आत्मा स्वप्न देखता है। प्रायः स्वप्न ऐसेही होते हैं कि जो विचार मनमें होते हैं; सौमें निन्नानवे स्वप्न अपनी इच्छाके प्रतिबिंबरूपही होते हैं। जीवात्माके लिये तीन अवस्थाओंका अनुभव प्रतिदिन आता है—

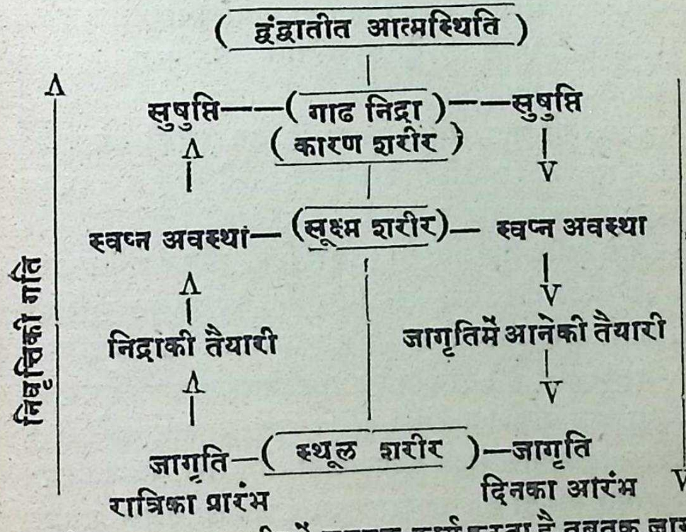

जीवात्मा स्थूल शरीरमें जबतक कार्य करता है तबतक जागृति होती है। जब शरीर थक जाता है तब उसको विश्रांति देनेके लिये तथा उसमें नवीन शक्तिकी स्थापना करनेके लिये जीवात्मा-रूपी सूर्य स्थूल शरीरमें फैली हुई अपनी किरणोंको आकर्षित करता है और सूक्ष्म शरीरमेंही अपना "मनो-राज्य" करने लगता है। यही स्वप्नावस्था है। जागृतिसे सुषुप्तिमें जानेके समय बीचकी यह अवस्था होती है। प्रतिदिनके स्वप्न हरएकको स्मरण नहीं होते, इससे यह अनुमान करना गलत होगा कि स्वप्न हुए ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं। प्रति दिन स्वप्नसृष्टिका अनुभव होता है, परंतु हमारी स्मरणशक्तिकी कमजोरीके कारण उनका स्मरण नहीं रहता। इस विषयमें उपनिषदोंका निम्न मंत्र विचार करने योग्य है—

स्वप्न-स्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः
प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः ॥ ४ ॥
स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादु-
भयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसंततिं समानश्च
भवति० ॥ १० ॥ मांडूक्य उ०

"स्वप्नस्थानमें जब आत्मा जाता है तब इसकी प्रज्ञाबुद्धि अंदरही कार्य करने लगती है, इस समय इसके सात अंग (पांच सूक्ष्म भूत, अहंकार और महत्तत्त्व ये सात अंग) होते हैं, इस समय इसके उन्नीस मुख होते हैं। (७ज्ञानेंद्रियों और ७कर्मेंद्रियोंके मूल सूक्ष्म चौदह केंद्र, पंच सूक्ष्म प्राण मिलकर उन्नीस मुख हैं; आंख, कान, नाक प्रत्येकके दो दो केंद्र मिलकर छः केंद्र हुए, त्वचा सातवां केंद्र है। दो पांव दो हाथ मिलकर चार और मूत्र-द्वार, गुदा और वाणी इनके तीन इंद्रिय मिलकर सात होते हैं) इन अंगों और मुखोंसे सूक्ष्म कल्पनाकेही भोग इस स्वप्न अव-स्थामें आत्मा भोगता है। यह आत्माका बीचवाला तैजस द्वितीय पाद है। स्वप्नस्थानका तैजस रूप है, इसका दर्शक उकार ओंकारके बीचमें है। यह उत्कृष्ट अवस्था है और (जागृति तथा सुषुप्ति इन) दोनों अवस्थाओंके साथ संबंध रखनेवाली है।"

स्वप्नकी अवस्थाका वास्तविक वर्णन इन मंत्रोंके विचारसे प्राप्त हो सकता है। जागृतिमें स्थूल शरीरका संबंध रहता है वह संबंध इस अवस्थामें नहीं होता, इस लिये स्वप्नमें स्थूल सृष्टिका दर्शन नहीं होता। इस अवस्थामें केवल कल्पनाकाही मनोराज्य चलता है, इसलिये जैसी जिसकी कल्पना और जैसे जिसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कार होते हैं वैसे उसको स्वप्न दीखते हैं। इस विषयमें उपनिषदोंके निम्न मंत्र देखिये—

य एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मेति ॥

छा. उ. ८-१०-१

तद्यत्रैतत् सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति० ॥ छां. उ. ८-११-१

"स्वप्नमें जो अपने गौरवके साथ चलता है वह आत्मा है। गाढ निद्रा प्राप्त होनेपर आनंदित होता हुआ जो स्वप्नकोभी नहीं जानता वह आत्मा है।"

इस छांदोग्य वचनमें स्पष्ट कहा है कि सुषुप्तिके पूर्वकी यह स्वप्नावस्था है। तथा बृहदारण्यक उपनिषद्में कहा है।—

स हि स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रामति ॥ तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवतः इदं च परलोकस्थानं च संध्यं तृतीयं स्वप्नस्थानं तस्मिन्संध्ये स्थाने तिष्ठन्नेते उभे स्थाने पश्यतीदं च परलोकस्थानं च ॥

बृ. ४।३।९

"वह आत्मा स्वप्न अवस्थामें जाकर इस लोकका अतिक्रमण करता है। इस पुरुषके दो स्थान होते हैं, एक इस लोकका और दूसरा परलोकका स्थान, तीसरा संधिस्थान है जिसको स्वप्नस्थान कहते हैं, इस संधिस्थान अर्थात् स्वप्नस्थानमें रहता हुआ यह दोनों स्थानोंको देखता है।"

१ परलोक	स्वः	स्वर्ग	सुषुप्ति	कारणदेह
२ संधिलोक	भुवः	अंतरिक्ष	स्वप्न	सूक्ष्मदेह
३ इहलोक	भूः	पृथिवी	जागृति	स्थूलदेह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उक्त बृहदारण्यकवचनके तात्पर्यसे यह कोष्टक बनता है। इससे स्वर्गलोककी भी कल्पना हो सकती है। गाढ निद्रामें मनुष्य स्वर्गधामतक पहुंचकर पुनः जागृतिमें इस भूलोकमें प्राप्त होता है। और बीचके संधिस्थानमें उसको स्वप्नका अनुभव होता है। इस प्रकार मनुष्यको प्रतिदिन स्वर्गधामका आनंद प्राप्त होता है, स्वप्नका मुकाम तो उसके मार्गमेंही है। तथा—

> स्वप्नान्त उच्चावचमीयमानो रूपाणि देवः कुरुते बहूनि ॥ उतेव स्त्रीभिः सह मोदमानो जक्षदुते वापि भयानि पश्यन् ॥ १३ ॥ स वा एष एतस्मिन्स्वप्ने रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च० ॥ बृ. ४-३-९, १५ ॥

"स्वप्नमें वह अच्छे अथवा बुरे भाव, सुखके अथवा भयके दृश्य देखता है।" यह उसका अनुभव वह जागृतिमें आकर कहता है। आनंदकारक स्वप्नोंसे आनंदित होता है और भयके स्वप्नोंसे भयभीत होता है। इस विषयमें निम्न वचन देखिये—

> यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति ॥
> समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने ॥
> छां. उ. ५-२-९

"जब काम्य कर्मोंमें स्वप्नमें स्त्रीका दर्शन होगा, तब वहां उस स्वप्नदर्शनसे समृद्धि सूचित होगी।" यदि छांदोग्य उपनिषद्के मतानुसार कई स्वप्न समृद्धिसूचक होंगे, तो निःसंदेह ऐसेभी दूसरे स्वप्न होंगे कि जो विपत्तिके सूचक हो सकते हैं। विचारशील मनुष्य सहस्रों स्वप्नोंके अनुभव एकत्रित करके उसका एक शास्त्र बना सकते हैं, जिसमें शुभ स्वप्नोंके लक्षण प्रकाशित किये जा सकते हैं। परंतु इस समयतक वैसा प्रयत्न किसीने नहीं किया। इसका कारण इतनाही है कि ऐसा करनेसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कोई लाभ होना संभव ही नहीं है। स्वप्नसे यदि किसी बातकी सूचना मिलभी गई तो, उसको जानना कठिन है, और जाननेके पश्चात् अनिष्टको दूर करना असंभव है, इसलिये ऋषियोंने स्वप्नशास्त्र बनानेका यत्न नहीं किया। किसी किसी समय स्वप्नका अर्थ भी तबतक समझता नहीं जबतक कि वह बात बन नहीं जाती। तथापि स्वप्नका तत्त्व जाननेका हरएकको अवश्य यत्न करना चाहिये, क्योंकि उससे अपने आत्माकी शक्तिका पता लगता है, परंतु दुष्ट स्वप्नके कारण अपना मन विनाकारण उदासीन भी नहीं करना चाहिये, तथा उत्तम स्वप्नसे व्यर्थ खुश भी नहीं होना चाहिये। स्वप्नके विषयमें प्रश्नोपनिषद्का कथन अब देखिये—

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति। यद् दृष्टं दृष्टमनुपश्यति। श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति। देशदिगंतरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति। दृष्टं चादृष्टं च, श्रुतं चाश्रुतं च, अनुभूतं चाननुभूतं च, सच्चासच्च सर्वं पश्यति॥

प्र. उ. ४।५

"यहां स्वप्नमें यह आत्मदेव अपनी महिमाका अनुभव करता है। जो देखा हुआ होता है वह फिर देखता है, सुनी हुई बातोंको सुनता है, देशदेशांतरोंमें अनुभव की हुई बातोंका पुनः पुनः अनुभव करता है। देखा अथवा न देखा, सुना अथवा न सुना हुआ जो होता है तथा अनुभव किया हुआ अथवा न किया हुआ भी, तथा सत् और असत् सब कुछ यह स्वप्नमें देखता है।"

"सत् और असत्" अर्थात् सत्य असत्य, अच्छी बुरी, सबही बातें यह स्वप्नमें देखता है। प्रायः देखीं और अनुभूत बातोंको ही देखता है, परंतु किसी किसी समय न देखी हुई बातें भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वप्नमें दिखाई देती हैं; कल्पनातरंगोंसे ऐसा होना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। कल्पनामें दो बातें एकत्रित मिलाई जाती है, जैसे पक्षीका उडना और मनुष्यका चलना, इन दोनों अनुभवोंको मिलाकर "मैं उड रहा हूं" ऐसा अनुभव स्वप्नमें हुआ करता है। इस प्रकार उपनिषदोंका कथन है। अब वेदमंत्रोंका विचार करते हैं—

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ ० निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि ॥ ० अभूत्याः पुत्रोऽसि ॥ ० निर्भूत्याः पुत्रोऽसि ॥ ० पराभूत्याः पुत्रोऽसि ॥

अ. १६।५।१-८

"हे स्वप्न! तेरी उत्पत्तिका हमें पता है, तू (ग्राह्याः) चिरकालीन रोग, (निर्ऋत्याः) सत्य नियमोंके विरुद्ध आचरण, (अभूत्याः) दारिद्र्य, (निर्भूत्याः) उदासीनता तथा (पराभूत्याः) पराभव आदिका बच्चा है, और तू यमका सहायक है।"

इस मंत्रमें स्वप्नके पांच कारण दिये हैं। (१) चिरकालीन रोगोंकी शरीरमें स्थिति, (२) सुनियमोंके विरुद्ध आचरण, (३) दारिद्र्य की विपन्न अवस्था, (४) उदासीनता, दुर्मुखता, (५) जगत्के व्यवहारोंमें पराभव प्राप्त होना, ये पांच कारण हैं कि जिनसे बुरे स्वप्न होते हैं, "ये बुरे स्वप्न मृत्युके सहायक हैं।" उक्त विपत्तियोंके कारण मन सदा चिंतातुर रहता है, जिससे बुरे स्वप्न होते हैं। स्वप्नके कारणोंके विषयमें निम्न मंत्र देखने योग्य है—

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मात्। प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं वहंतु ॥

अ. १०।५।२४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"निर्दोष जल हमारे (रिप्रं अप) दोष दूर करे, तथा (एनः) पाप, मल और दुष्ट स्वप्नका कारण (प्र वहंतु) दूर करे।"

(१) शरीरमें मलोंका संचय, (२) मनमें पापभावना और अन्य दोष होनेके कारण बुरे स्वप्न होते हैं, जलचिकित्सासे अथवा निर्दोष और स्वच्छ जलके प्रयोगसे उक्त दोष दूर हो जाते हैं और दुष्ट स्वप्न नहीं आते। तथा—

दुष्वप्न्यं दुरितं निष्वाथ गच्छेम सुकृतस्य लोकं ॥

अ. ७।८३।४

"(दुरितं) पाप और दुष्ट स्वप्न दूर करके (सुकृतस्य) सत्कर्मके लोकको प्राप्त करेंगे।" यहां "दुरित" (दुः+इत) शब्दसे केवल पापका बोध ही नहीं होता, परंतु जो बुराई शरीर, मन और बुद्धिमें प्रविष्ट होती है, वह सब इस शब्दसे बोधित होती है। दुष्ट स्वप्नोंका यह कारण है तथा—

असन्मंत्राद्दु ष्वप्न्याद्दु ष्कृताच्छमलादुत। दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्यंजन ॥

अ. ४।९।६

"(१) (अ-सत्-मंत्रात्) दुष्ट विचार, (२) दुष्ट स्वप्न, (३) दुराचार, (४) (शम-लात्) शांतिका नाश करनेवाले प्रकार, (५) (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय, (६) (घोरात्) भयंकर नेत्रोंके भाव आदिसे हम सबको बचाओ।" ये सब दुष्ट स्वप्नोंके साथी हैं। ये ही दुष्ट स्वप्नके कारण हैं। जो कोई चाहता है कि बुरे स्वप्नोंसे अपने आपको कष्ट न हो, वह इन मंत्रोंमें कहीं बातोंका ख्याल रखे, उसको बुरे स्वप्न कष्ट नहीं देंगे, अर्थात् उसको बुरे स्वप्न ही नहीं दिखाई देंगे। बुरे स्वप्नोंके उदाहरण निम्न मंत्रोंमें देखिये—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यत्ते स्वप्न अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते ॥
सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद् दृश्यते दिवा ॥

अ. ७।१०।११

"स्वप्नमें जो अन्न मैं खाता हूं, वह प्रातःकाल दीखता नहीं है। वह सब मेरे लिये शुभ हो, जो दिनमें दीखता नहीं है।" इससे प्रतीत होता है कि स्वप्नमें भोजन करना अच्छा नहीं है। शरीरमें बीमारी प्रविष्ट होनेसे इस प्रकारके स्वप्न होते हैं, इस लिये ये स्वप्न अस्वास्थ्यके सूचक हैं। पूर्व मंत्रोंमें दुष्ट स्वप्नोंके कारणोंमें इस प्रकारके स्वप्नोंका कारण पाठक देख सकते हैं। तथा इस विषयमें निम्न मंत्र देखने योग्य है—

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते । अ. २०।९६।१६

"जो तमरूप स्वप्नके द्वारा तुझे मोह करता है।" अर्थात् ये सब स्वप्न तम अवस्थाके कारण होते हैं। तमोगुणकी प्रधानतासे इनकी उत्पत्ति है। इस लिये सात्त्विक भावनाकी वृद्धि करनेसे दुष्ट स्वप्नोंको दूर किया जा सकता है। तमोगुण जिनमें प्रधान रहता है, इस प्रकारके मनुष्योंमें ज्ञान कम होता है, और चित्तमें भ्रांति बहुत रहती है, यह कारण है कि उनको स्वप्नमें नाना प्रकारके आकार दिखाई देते हैं। अपने संबंधियोंका दर्शन स्वप्नमें होनेके विषयमें वेदका कथन निम्न मंत्रोंमें देखने योग्य है—

यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च ॥
बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः ॥७॥

अ. ८।६

"तेरा भाई अथवा पिता होकर जो तेरे स्वप्नमें आता है, उन घातक क्लीवरूपोंको (बजः) बलवान् बनकर ही दूर किया जा सकता है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तात्पर्य मनकी कमजोरीके कारण इस प्रकारके आकार स्वप्नमें दिखाई देते हैं । यद्यपि ये आकार भयानक भी होते हैं तो भी ये स्वयं (क्लीबरूप) असमर्थ होनेके कारण बलवान्का घात नहीं कर सकते, इसलिये मनको बलवान् बनानेसे उक्त स्वप्नोंका भय दूर किया जा सकता है । कई लोग इन स्वप्नोंको डरते हैं, और उसकी फिकिरमेंही मरने लगते हैं । उनको उक्त मंत्रका उपदेश ध्यानमें धारण करने योग्य है । स्वप्नोंके आकार क्लीब होते हैं, उनमें कोई सामर्थ्य नहीं होता, इसलिये धैर्य धारण करनेसे कोई बिगाड नहीं हो सकता । तात्पर्य यह कि जो मनुष्य डरपोक होंगे उनका नाश इन स्वप्नोंके कारण हो सकता है, परंतु यहां स्मरण रहे कि, "यह स्वप्नका दोष नहीं, प्रत्युत उनके मनकी कमजोरीका दोष है ।" इसलिये वैदिक उपदेशके अनुसार धैर्य धारण करके स्वप्नोंसे डरना नहीं चाहिये । स्वप्नदोष दूर करनेका उपाय निम्न मंत्रमें देखिये --

स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यसि पापं० ॥

अ. १०।३।६

पर्यावर्ते दुष्वप्न्यात्पापात्स्वप्न्यादभूत्याः ॥
ब्रह्माहमंतरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः ॥

अ. ७।१००।१

"यदि स्वप्नमें बुरा भाव देखा तो इस प्रकारके दुष्ट स्वप्नों और पापमूल आपत्तिसूचक स्वप्नोंके पश्चात् मैं (अंतरं) मनके अंदर (ब्रह्म कृण्वे) ब्रह्मकी उपासना-प्रार्थना-करता हूं, जिससे (शुचः) शोक उत्पन्न करनेवाले स्वप्नके मुख्य परिणाम (परा) दूर होते हैं ।"

यह उपाय है कि जिससे पाठक अपने मनको दृढ बना सकते हैं । परमेश्वरकी प्रार्थना करनेसे वह इस प्रकारके भयसे अपनेको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बचा सकता है। अब किसी प्रकारके बुरे स्वप्नसे कोई भी न डरे। पहिले तो यह विश्वास रखे कि स्वप्नके आकार और दृश्य शक्तिहीन होनेसे हमारा बुरा नहीं कर सकते। पश्चात् यदि किसीका मन कमजोर रहा तो इस प्रकारके स्वप्नके पश्चात् ईश्वरोपासनासे अपने मनमें बल बढावे। सर्वशक्तिमान परमेश्वर इस समय अवश्य ही बल देगा। मनकी सब कमजोरी ईशउपासनासे दूर होगी। इसी विषयकी और एक प्रार्थना देखिए—

यो मे राजन् युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह॥
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद् वरुण पाह्यस्मान्॥
ऋ. २।२८।१०

"हे वरुण राजन्! हे देव! जो मेरा मित्र, साथी, चोर, हिंस्र पशु आदि स्वप्नमें आकर (भीरवे मह्यं) मुझ भीरुको डराता है, उससे मुझे बचाओ।" यह वह प्रार्थना है जो कि स्वप्नके पश्चात् करनी चाहिये। इससे उपासकके मनमें बल प्राप्त होता है। इस प्रार्थनामंत्रमें ऐसी शब्दयोजना है कि जो स्वप्नके भयकी वास्तविक बात प्रकट कर रही है। मंत्रमें "भीरवे मह्यं" (डरपोक मैं हूं इसलिये मुझे डर होता है) ये शब्द हैं। अर्थात् यदि किसीके मनमें भीरुता अथवा डर न होगा तो उसको किसी प्रकारके स्वप्नसे भय न होगा। परंतु सर्वसाधारण जनतामें ऐसे धैर्यवान् पुरुष कम होते हैं, इसलिये दुष्ट स्वप्नका मनपर जो बुरा असर होता है, उसको दूर करनेके लिये "ब्रह्मकी उपासना" यह एक मात्र उपाय है। ईश्वरभक्तिसे मन बलवान् होता है और बल प्राप्त होनेसे मनके सभी कुसंस्कार दूर हो सकते हैं। आशा है कि पाठक इससे उचित बोध लेंगे।

स्वप्न मनके संस्कारोंके कारण होते हैं। इसलिये अपने मनके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कारोंकी परीक्षा करनेके लिये स्वप्नोंका विचार करना चाहिये। इतनी मनकी उन्नति करनी चाहिये कि स्वप्नमें भी मनसे पाप न हो, स्वप्नका किया हुआ पापभी बुराही है—

यदि जाग्रद् यदि स्वप्ने एनांसि चकृमा वयं ॥
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वस्मान्मुंचत्वंहसः ॥ यजु० २०।१६

"यदि हम जागृतिमें अथवा स्वप्नमें पाप करेंगे, तो उससे हम सबको (सूर्यः) देव बचावे।" अपने स्वप्नकी परीक्षासे अपनी धार्मिक अवस्थाका पता लग सकता है। इसलिये हर-एकको अपने स्वप्नकी परीक्षा करना उचित है। इस प्रकार वेदका स्वप्न विषयक आदेश है।

अब इस लेखका तात्पर्य यह है कि यद्यपि कई स्वप्न भविष्यमें होनेवाले बातोंके ठीक ठीक निदर्शक होते हैं, तथापि यह कोई नियम नहीं है कि हरएक स्वप्नका संबंध इस प्रकार बताया जा सकता है। तथा स्वप्नकी सचाई परिणाम देखनेके पश्चात् ही विदित होनेवाली होनेसे स्वप्नकी सूचनासे होनेवाली बातमें कोई न्यूनाधिकता नहीं हो सकती। इसलिये न केवल स्वप्नोंका डरही नहीं मानना चाहिये, परंतु अपने उपर स्वप्नसे कोई परिणाम होगा ऐसा विचार भी कभी धारण नहीं करना चाहिये; क्योंकि स्वप्नके दृश्यमें ऐसी कोई शक्ति नहीं होती। तथापि यदि किसीको स्वप्नकी भीति प्रतीत होती हो, तो उसको ईश्वरउपासनाद्वारा उसका निवारण करना चाहिये।

यद्यपि उक्त हेतुके कारण स्वप्नोंका विचार भी करनेकी कोई जरूरत नहीं है, तथापि स्वप्नोंसे अपने मनकी विलक्षण शक्तिका ज्ञान होता है इसलिये स्वप्नोंका तत्वविचारकी दृष्टिसे विचार करना चाहिये। स्वप्नकी अवस्थाका ठीक ठीक विचार होनेसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आत्माकी शक्तिका अनुभव होता है, इस दृष्टिसे स्वप्नोंका आंदोलन करना चाहिये। इसलिये पाठकोंसे निवेदन है कि वे किसी प्रकारके स्वप्नसे न डरें परंतु उसकी " आत्मा, बुद्धि, मन और चित्त इनकी शक्तियोंका ज्ञान होनेका साधन समझकर इस दृष्टिसे उनका विचार करें।" "वैदिक धर्म" में स्वप्नोंके कई वृत्तांत प्रकाशित हुए हैं और प्रत्येक स्वप्नसे मनके विलक्षण सामर्थ्यका प्रमाण मिला है। यदि पाठक इस प्रकारके अपने अनुभव लिखेंगे, तो लोगोंपर बडा उपकार हो सकता हैं।

जो मनकी शक्ति स्वप्नद्वारा प्रकट होती है, वह योगसाधनसे यदि बढाई जाय तो जागृतिमें भी काममें लाई जा सकती है। पाठक इस दृष्टिसे इन स्वप्नोंका विचार करें और इनके विचारसे अपनी शक्तिको जानकर, उस शक्तिका विकास करके सब प्रकारकी उन्नति प्राप्त करें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपने प्रभावका गौरव ।

कई लोग अपने आपको तुच्छ समजते हैं, 'मैं गिरा हुआ हूं, मैं पतित हूं'' आदि वाक्य बोलनेका कईयोंको बडा अभ्यास होता है। केवल अभ्यासकीही बात नहीं, प्रत्युत ऐसा बोलते रहना बडी नम्रताका और सौजन्यका चिन्ह समझा जाता है परंतु-

नात्मानमवमन्येत ।

'अपना अपमान करना उचित नहीं' ऐसा महाभारतमें कहा है। जो अपने आपके लिये तुच्छ शब्दोंका प्रयोग करेगा वह शीघ्र उठ नहीं सकता। वेदमें हजारों प्रार्थनाएं हैं, परंतु किसी स्थान-पर 'हे परमेश्वर मैं पतित हूं, मुझे तुम उठाओ, मैं हीन हूं मुझे योग्य बनाओ' इस प्रकारकी पतित प्रार्थना नहीं है।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
बलमसि बलं मयि धेहि ।
ओजोऽस्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि।
सहोऽसि सहो मयि धेहि॥ यजु० १९।९

'हे परमात्मन् ! तू तेजस्वी है, मुझमें तेज स्थापन कर, तू वीर्य-वान् है, मुझमें वीर्य स्थापन कर, तू बलवान् है, मुझमें बल स्थापन कर, तू समर्थ है मुझमें सामर्थ्य स्थापन कर, तू उत्साह-मय है मुझमें उत्साह स्थापन कर, तू सहनशक्तिसे युक्त है मुझमें श्रम सहन करनेकी शक्ति स्थापित कर।' यह वैदिक प्रार्थना है। यदि आजकलकी दुर्बल रीतिसे उक्त प्रार्थना करना हो तो निम्न प्रकार की जा सकती है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हे परमेश्वर ? मैं बिलकुल तुच्छ निर्बल, अन्धकार-मय' वीर्यहीन हूं, इसलिये कृपा करो और मुझमें शक्ति सामर्थ्य तेज और वीर्य स्थापन करो !

(आज कलके भजन पुस्तक)

आज कलके भजन पुस्तकोंके भजनोंमें इस प्रकारके भजन होते हैं। उक्त वेदके वाक्यके साथ इन भजनों और प्रार्थनाओंकी तुलना कीजिये और देखिये सच्ची धार्मिक ओजस्विता किसमें है।

मनुष्य जो शब्द बोलता है उसका परिणाम उसके आंतरिक मनपर होता, जो भाव आंतरिक मनपर होता है वही उसके शरीर-में और सब कारोबारोंमें होता है। इसलिये वेदमें किसी स्थान-पर आत्मघातकी प्रार्थना नहीं है, तेज, बल, ओज, उत्साह और सहनशक्ति हरएक मनुष्यको प्राप्त करना आवश्यक है; उक्त गुण परमेश्वरसेही प्राप्त होते हैं, इसलिये उक्त परमेश्वरीय गुण धारण करनेकी उत्साहपूर्ण योग्यताके साथ उपासनाके समय परमेश्वर के पास जाना चाहिये। उपासनाके समय दुर्गुणका स्मरणतक करना उचित नहीं है। अपने अथवा किसी अन्यके दुर्गुणके विचार करतेही मनके ऊपर दुर्गुणका लेप लगता है। इसलिये बडी सावधानीके साथ उपासनाके शब्द बोलने चाहिये।

अपने दुर्गुणोंका वारंवार उच्चारण करनेसे भी वैसाही बुरा असर होता है, कि जैसा दूसरेके दुर्गुणोंका उच्चार करनेसे होता है। यदि किसी समय बुरा कार्य हुआ तो झट उसी समय पश्चा-त्ताप करके उसको ऐसा भूलनेका यत्न करना चाहिये कि फिर उस विचारको जागृति भी कभी न हो सके। वेद कहता है—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

यजु० २५।२१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१) "कानोंसे अच्छे शब्द सुनें, (२) आंखोंद्वारा अच्छे भावसे देखें, (३) सुदृढ शरीरके साथ वाणीद्वारा प्रशंसित गुणोंका उच्चारण करें और (४) अपनी आयु श्रेष्ठोंके हितके लिये अर्पण करें।" ये चार भाव उक्त मंत्रमें हैं। इससे स्पष्ट होता है कि किस प्रकार बोलना और सुनना चाहिये। जिस समय 'मैं दीन हूं' ऐसा बोला जाता है उस समय ये शब्द सुने भी जाते हैं। बोलने और सुननेका आंतरिक मनपर पक्का असर हो जाता है। इसलिये सदा इस बातके विषयमें सावधान रहना चाहिये। वेदकी प्रार्थनायें इस विषयमें निश्चित मार्ग बता रहीं हैं, परंतु वेदके धर्ममार्गपर चलनेका उत्साह बतानेवाले भी पतित विचारमय प्रार्थनाओंसे ही अपनी प्रार्थना करते हैं। वेद कहता है कि—

स्वं महिमानमायजताम्॥ यजु० २१।४७॥

(Let him worship his own majesty)

'अपने प्रभावका गौरव करो।' प्रत्येक मनुष्यमें कोई न कोई विशेष योग्यता अवश्य रहती है। उस अपने प्रभावशाली गुणकी खोज प्रथम करनी चाहिये। और उसका विस्तार करना चाहिये। उस गुणके लिये परमेश्वरकी अतुल कृपा समझनी चाहिये। और किसी समयमें भी अपने या दूसरे के बुरे आचार व्यवहारका स्मरणतक नहीं करना चाहिए। इस प्रकार निश्चयपूर्वक व्यवहार करनेसे एक मासके अंदर ही अपने मनकी वृत्ति शुद्ध हो सकती है। अनुभव लीजिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुरुषार्थके लिये उत्साहमय प्रेरणा ।

भगवान ऐतरेय महीदास महामुनिकी उत्साहमय वाणीसे पुरुषार्थके लिये प्रेरणाका उपदेश ऐतरेय ब्राह्मणके सप्तम पंचिकामें हुवा है । मनुष्य अपनी उन्नति पुरुषार्थ प्रयत्नके बिना नहीं कर सकता यह सार्वकालिक सिद्धांत है । किसी समय मनुष्यके लिये पुरुषार्थ प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं, ऐसा नहीं है । इस लिये हरएक मनुष्यको यह उपदेश स्मरण रखना योग्य है । किसी एक प्रसंगमें राजा हरिश्चंद्रके युवराज रोहितको भगवान इंद्रका उपदेश निम्न प्रकार हुवा है । जो ऐतरेय महीदासकृत ऐतरेय ब्राह्मणमें है—

नानाश्रांताय श्रीरस्तीति रोहित शश्रुम । पापो नृषद्वरो जनः इंद्र इच्चरतः सखा । चरैवेति चरैवेति ॥ १ ॥

"हे रोहित राजपुत्र! (अ-श्रांताय) जो परिश्रम करके नहीं थक जाता उस सुस्त मनुष्य के लिये (श्रीः) धन, संपत्ति ऐश्वर्य प्रभुत्व आदि (न अस्ति) नहीं प्राप्त होता है। (इति शश्रुम) ऐसा हम सुनते आये हैं । (नृ-षद्वरो जनः) जो मनुष्योंमें सुस्त होता है वही (पापः) पापी होता है । (इत्) निश्चयसे (इंद्रः) प्रभु (चरतः सखा) पुरुषार्थ प्रयत्न करनेवाले उत्साही मनुष्यका मित्र है । इसलिये (चर एव) पुरुषार्थ करो, निश्चयसे परम पुरुषार्थ करो ।

श्रीका अर्थ- धन, संपत्ति, ऐश्वर्य प्रभुत्व, उन्नति, अभ्युदय, महत्व, राजकीय शोभा, उच्च स्थिति, सौंदर्य, तेज, शोभा, शरीरकी उत्तम कांति, सद्‌गुण, बुद्धि, दैवीशक्ति, योगकी शक्ति, धर्म, अर्थ, काम, वक्तृत्व, यश, कीर्ति । यह सब उस श्रेष्ठ मनुष्यको प्राप्त होता है कि जो थक जाने तक महान् पुरुषार्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करता है। जो सुस्त मनुष्य सोता रहता है उसको आप पापी समझिए। सुस्ती, आलस्य, उद्योग न करना, निरुद्योगता, निकम्मेपन, आरामतलबी ये ही पाप हैं। जो निकम्मा रहता है वही पापी होता है। पुरुषार्थ करना ही पुण्य है। जो बडा प्रयत्न करता है वही धर्मात्मा और पुण्यात्मा मनुष्य है। परमेश्वर प्रयत्नशील पुरुषकी ही सहायता करता है। इसलिये हरएक मनुष्यको अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। तथा—

पुष्पिण्यौ चरतो जंघे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः। शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः॥ चरैवेति चरैवेति॥ १॥

"जो (चरतः) चलता रहता है उसीकी (जंघे) जांघें (पुष्पिण्यौ) फूलकर पुष्ट होतीं हैं। पुरुषार्थी मनुष्यका आत्मा ही (भूष्णुः) अभ्युदय प्राप्त करनेवाला और (फलग्रहिः) फल मिलनेतक प्रयत्न करनेवाला होता है। इसके सब पापमार्गके बीचमें ही (श्रमेण हताः) परिश्रमके कारण नष्ट हो जाते हैं। इस लिये पुरुषार्थ करो, अवश्य निश्चयपूर्वक पुरुषार्थ करो।"

जो चलता है उसके पांव और जांघें बलवान और पुष्ट होतीं हैं, जो नहीं चलता, सदा बैठा रहता है उसके पांव कृश रहते हैं। जो हाथोंसे व्यायाम करता है उसीके बाहुओंमें पुष्टि और शक्ति बढती है जो व्यायाम नहीं करेगा उसके बाहु अशक्त रहेंगे। उसी प्रकार व्यायाम करनेसे सब शरीर पुष्ट और सुदृढ होता है। जो व्यायाम नहीं करते उनका शरीर निर्बल हो जाता है। इसलिये अपना शरीर पुष्ट, बलवान और निरोग बनाना अपने ही हाथ में है।

पुरुषार्थ करनेवालेके आत्मामें आत्मविश्वास रहता है। मैं अपनी उन्नति अवश्य प्राप्त करूंगा ऐसा विश्वास प्रयत्नशील पुरुषके अन्तकरणमें सदा रहता है। पुरुषार्थी मनुष्य कभी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हताश, निरुत्साही और उदास नहीं होता। हमेशा उत्साहकी धुंदमें प्रयत्न करता ही रहता है। इस लिये वही मनुष्य अन्तमें फलको अपनेही पास खेंच लेता है। कर्मोंका मधुर फल भक्षण करनेका उसीको सौभाग्य प्राप्त होता है। प्रयत्नके श्रमसे जो धर्मकी धारायें वहतीं हैं उन धाराओंसे उसके सब पापके मल धोये जाते हैं और वह निष्पाप बनता है। इतना परिश्रमका माहात्म्य है। इस लिये हर एक मनुष्यको चाहिये कि वह अवश्य परम पुरुषार्थ करके पवित्र बने।

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः। शेते
निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः॥ चरैवेति चरैवेति॥५॥

"(आसीनस्य) जो बैठ रहता है उसका (भगः) ऐश्वर्य (आस्ते) बैठा रहता है। (तिष्ठतः) जो खडा रहता है उसका ऐश्वर्य ऊपर खडा रहता है। (निपद्यमानस्य) जो सोता रहता है उसका ऐश्वर्य भी (शेते) सो जाता है। और (चरतः भगः) पुरुषार्थ करनेवालेका ऐश्वर्य (चरति) उसके साथ चलता हुवा आता है। इस लिये पुरुषार्थ करो, निश्चयसे अवश्य पुरुषार्थ करो।"

ऐश्वर्य धन प्रभुत्व आदि सब उसी मनुष्यको प्राप्त होते हैं कि जो सदा प्रयत्नकी पराकाष्ठा करता है। आलसी मनुष्यको कभी ऐश्वर्य प्राप्त नहीं हो सकता। जो सोवेगा, उसका धन भी सोवेगा इसलिये हरएकको अवश्य परम पुरुषार्थ करके ऐश्वर्य आदि सब प्राप्त करने चाहिये।

कोई देव आकर मुझे ऐश्वर्य देगा, ऐसा कभी हो नहीं सकता क्योंकि दैववादी आलसी मनुष्योंका धन और ऐश्वर्य सोता रहता है इस लिये वह उनके पास पहुंच नहीं सकता, जबतक कटिबद्ध होकर पुरुषार्थ नहीं करता तबतक उसका ऐश्वर्य उठकर उसके पास नहीं पहुंच सकता है। इसलिये सबको उत्तम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुरुषार्थ करना उचित है।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः॥ उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्॥ चरैवेति चरैवेति॥ ४॥

"(शयानः) सोना ही कलियुग (भवति) होता है। (संजिहानः) आलस्य छोड देना ही द्वापर युग है। (उत्तिष्ठन्) उठना त्रेतायुग होता है और (चरन्) पुरुषार्थ करना ही कृतयुग (संपद्यते) बन जाता है। इसलिये पुरुषार्थ करो निश्चयसे पुरुषार्थ करो।"

कई लोग अपने नुकसानीके कारण 'समय' को दोष देते हैं। परंतु 'समय' सबके लिये एक समान होता है। लोग कहते हैं कि यह कलियुग है इसमें ये दोष अवश्य हो ही जांयगे। परंतु वास्तविक बात ऐसी नहीं है। प्रत्येक समाज तथा प्रत्येक राष्ट्र अपने लिये अपने पुरुषार्थसे कलियुग अथवा सत्ययुग बना सकता है। आलस्यमें सडनेवालेके लिये सब समय कलियुग अर्थात् हीन अवस्थाका समय हो जाता है, जो आलस्य छोडकर उठकर पुरुषार्थ करनेके लिये कटिबद्ध होता है उसके लिये वही समय द्वापर और त्रेतायुग बन जाता है। तथा जो दृढ विश्वास और प्रबल उत्साहके साथ अपने पुरुषार्थकी पराकाष्ठा करता है उसके लिये हरएक समय प्रशंसनीय सत्ययुग, सुवर्णयुग अथवा उन्नतिका और आनंदका समय हो जाता है इसलिये सबको उचित है कि वे अपने अन्तःकरणोंको पुरुषार्थके ढांचेमें ढाल कर रखें, जिससे उनके अन्तर कभी आलस्य और उदासीनताकी लहर न उठे। तथा और कहा है:—

चरन्वै मधु विंदति चरन्त्स्वादुमुदुंबरम्॥ सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तंद्रयते चरन् चरैवेति चरैवेति॥ ५॥

(ऐतरेय ब्रा० ७।१५।१-५)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"मध मक्षिका (चरन्) निश्चयसे पुरुषार्थ करनेके कारणही (मधु विंदति) मधु-शहद-प्राप्त करती है। पक्षी (चरन्) भ्रमण करके ही (स्वादुं उदुंबरं) मीठे फलको प्राप्त करते हैं। (पश्य)देखो (सूर्यस्य श्रेमाणं) सूर्यकी शोभा इसी लिये है कि (यः) वह (चरन्) भ्रमण करता हुआ भी (न तंद्रयते) नहीं थकता। इसलिये पुरुषार्थ करो, निश्चयसे पुरुषार्थ करो।"

पशुपक्षी, कोटपतंग, मक्खियां और सब प्राणी पुरुषार्थ करकेही अपने उपभोगोंको प्राप्त करते हैं। प्रयत्नके विना किसीकोभी कुछ नहीं प्राप्त हो सकता। इसलिये सबको पुरुषार्थ करना उचित है।

इस प्रकार पुरुषार्थ प्रयत्नकी महिमा ऐतरेय ब्राह्मणमें वर्णन की है। यही वैदिक पुरुषार्थके मार्गका दृश्य है। वैदिकधर्ममें रहनेवालोंमें थकावट, सुस्ती, आलस्य, उदासीनता आदि दुर्गुण नहीं चाहिये। वैदिकधर्म उत्साहमय पुरुषार्थका धर्म है। व्यक्तिकी उन्नतिके लिये पुरुषार्थ, समाजकी भलाईके लिये पुरुषार्थ, राष्ट्रके हितके लिये पुरुषार्थ, सब जनताके अभ्युदयके लिये पुरुषार्थ कीजिये। उठिए अब बहुत देर हो गई है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शत्रु कौन है?

मनुष्यका शत्रु कौन है? व्यक्तिका और समाजका दुश्मन कौन है? किसको सच्चा शत्रु कहना योग्य है? वेदकी दृष्टिसे सच्चा शत्रु कौन है? हरएक मनुष्य अपने मतसे विरुद्ध मत धारण करनेवालेको शत्रु कहते हैं; क्या विरुद्ध मत धारण करना शत्रुत्वका लक्षण हो सकता है? इस विषयमें वेदकी क्या संमति है? शत्रुका लक्षण धार्मिक दृष्टिसे होनेके पश्चात् ही उसको पहचाना जा सकता है, और उसके दूर करनेका उपाय भी किया जा सकता है। इसलिये इस लेखमें मनुष्योंके शत्रुका विचार किया जाता है। वेदमें कहा है कि—

दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥

ऋ० २।४१।८; यजु० २०।८२

"दुष्ट बुद्धिका मनुष्य ही शत्रु कहा जाता है।" इस मंत्रके तीनों शब्दोंका भाव देखना उचित है—

(१) दुःशंसः— Evil-minded, malevolent, wicked, malicious, दुष्ट विचार करनेवाला, दुश्मन्, द्रोही, बुरा चाहनेवाला, अदावती, कुट, कटुआ, कपटी, दुष्ट, अहित करनेवाला, कुकर्मी, बुरा, अपावन, लुच्चा, शरारती, अपराधी, घातकी। "दुःशंस" का यह भाव है।

(२) मर्त्य —मरनेवाला mortal, मरनेकी ओर चलनेवाला।

(३) रिपुः— Deceitful, treacherous, false, cheat, rogue, enemy, adversary कुटिल, धोखेबाज, छल करनेवाला, बेइमान, छली, झूठा, अधर्मी, विश्वासघातकी, दुर्जन, विरोधी,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शत्रु, प्रतिकूल, क्रूर, आक्रमण अथवा हमला करनेवाला।

ये तीनों शब्दोंके सब भाव एकत्रित करनेसे शत्रुका वैदिक लक्षण बन जाता है। जिनमें ये सब दुष्टभाव अथवा इनमेंसे एक एक भाव होगा उनको शत्रु कहना उचित है। इन दुष्ट भावोंको धारण करनेवाले आदमियोंके साथ कभी सहवास अथवा संग करना उचित नहीं। जो मनुष्य अपनी उन्नति चाहते हैं, उनको उचित है, कि वे इस प्रकारके दुराचारियोंसे सदा दूर रहें, इन दुष्टोंका विचार न करें, और सदा अपना मन इन दुष्ट भावनाओंसे दूर रखें। वेद कहता है कि—

मा नो दुःशंस ईशत॥

ऋ० १।२३।९; १०।२५।७ अथर्व० १९।४७।६

(Let not the wicked master us) दुष्ट हमारा स्वामी न बने। इस विषयमें सदा सावधान रहना चाहिए कि, हम कभी दुष्टके आधीन न हो जावें। व्यक्तिमें मन, इंद्रिय आदि पदार्थ दुष्ट भावोंके आधीन न हो जावें। मनुष्य बुरे विचार कभी न करे, बुरे शब्द कभी न बोले, और बुरे कर्म कभी न करे। समाजमें दुष्ट दुराचारियोंको बडे बडे ओहदोंपर न रखा जावे। सभाओं और परिषदोंमें दुष्टोंको अधिकार न दिया जावे, पाठशाळा आदि स्थानोंमें दुष्ट दुराचारी न रहे तथा किसी सार्वजनिक स्थानमें दुष्टका सन्मान न किया जावे। सदा सर्वदा सर्वत्र अर्थात् किसी भी समय समाजोंपर दुष्टोंका अधिकार न होवे, क्यों कि जो दुष्टोंके आधीन हो जांयगे वे भी दुष्ट बन जाएँगे। जो दुराचारियोंका सन्मान करेंगे वे गिर जायँगे। जो नीचोंके सन्मुख सिर नीचा करेंगे वे अधोगतिको पहुंचेंगे। इसलिये वेदमें कहा है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत ॥
प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ॥
ऋ० २।२३।१०

(Let not the guileful wicked man be lord of us)
(अभिदिप्सुः दुःशंसः) घातकी दुष्ट मनुष्य हमारा स्वामी न बने। और हम सब (मतिभिः) उत्तम मनन शक्तियोंके द्वारा (सुशंसाः) प्रशंसित बनकर (प्रतारिषीमहि) बढेंगे।

इस मंत्रमें "दुःशंस" (wicked) की निंदा और "सुशंस" अर्थात् सदाचारीकी प्रसंसा की है। दुष्टकी हुकूमतमें रहनेसे नाश होता है, दुष्टके आधीन होनेसे सर्वस्वका घात होता है,दुष्टके शासनके अनुसार चलनेसे सबका ही नाश हो सकता है। यदि किसी प्रकार उन्नति होनी है, तो उसका एकही मार्ग है, कि मनमें उत्तम विचार धारण करना और सदाचारीके साथ मित्रता करना। सज्जनके सख्यमें रहनेसे ही उन्नति हो सकती। अभ्युदय अथवा उत्कर्ष प्राप्त करनेका यही सच्चा और सीधा मार्ग है। इसी रीतिसे प्रगति करनेसे ऐहिक अभ्युदय और पारलौकिक निश्रेयस निश्चयसे प्राप्त हो सकता है। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिए—

समित्तमघमश्नवद्दुःशंसं मर्त्यं रिपुम् ॥
यो अस्मत्रा दुहणावां उपद्वयुः ॥
ऋ० ८।१८।१४

"जो (दुःशंसं) दुष्ट दुराचारी, (मर्त्यं रिपुं) नाशको प्राप्त होनेवाला और घातपात करनेवाला होता है (तं इत्) उस दुष्टको ही (अघं सं अश्नवत्) पातक लगता है। जो मनुष्य (द्व-युः) (Duplicity) धोखा छल कपट करता है...

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सबके विषयमें (दुः-हनावां) घातपात करनेकी इच्छा रखता है वह भी पापी होता है।"

इस मंत्रमें "दुःशंस, मर्त्य, रिपु, दुर्हणावान्, द्वयुः" आदि शब्दोंद्वारा पापी शत्रुओंका स्वरूप वर्णन किया है। पहिले तीन शब्दोंका अर्थ इस लेखके प्रारंभमें दिया ही है, अब यहां और दो शब्दोंका भाव बताया जाता है।

(१) दुर्हणावां—(दुः+हना-वान्)=क्रूरताके साथ घातपात और नाश करनेवाला। mischief, harm, damage, evil, trouble, calamity, बिगाड, आपदा, हानि, दुःख, कष्ट, संकट, दुरवस्था इत्यादि भाव "दुः-हना" शब्दके हैं। इन कष्टोंको बढानेवाला जो होता है वह इस शब्दसे बोधित होता है।

(२) द्व-युः—दो प्रकारकी कुटिल नीतिका योजना करनेवाला। False, dishonest, duplicity, donbleness of heart or speech, double dealing, dissimulation, deceit असत्य अप्रामाणिक, हृदयमें कुछ और बाहर कुछ ऐसा करने और बोलनेवाला, कपटी, दंभी, बहाना करनेवाला, मक्कार, ढोंगी।

द्व-युः
Du-plicity

ये दो शब्द समान भाव बताते हैं। मनमें घात पात करनेका विचार करते हुए बाहिर अत्यंत मीठा और सरल भाषण करना; इस प्रकारकी कुटिल नीतिमें प्रवीण मनुष्य "द्व-युः" कहा जाता है। यह न केवल पापी है, परंतु सबका नाश करनेवाला यही है; इसी लिये वेद इनको "जनताका शत्रु" कहता है। ये ही दुष्ट मनुष्य वेदकी दृष्टिसे जनताके शत्रु हैं। तथा—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रक्षा मा किर्नो अघशंस ईशत ॥ मो नो
दुःशंस ईशत ॥ मा नो अद्य गवां स्तेनो
माऽवीनां वृक ईशत ॥ अथर्व० १९।४७।६

(Let not a malicious, spiteful, ill-wisher master us) (किः अघशंसः) कोई भी पापी दुष्ट हम सबपर शासन न करे। कोई दुराचारी हमारेपर हुकूमत न चलावे। (गवां स्तेनः) गाय, भूमि, वाचा आदि पदार्थोंकी चोरी करनेवाला हमारा स्वामी न बने। तथा (अवीनां वृकः) बकरियों, संरक्षकों और गरीबोंका भेडिया कभी स्वामी न बने। अर्थात् गरीबोंका संहार करनेवाला कभी बडा अधिकारी न बने।

इस मंत्रके शब्दोंके भाव विशेष विचार करने योग्य है इनका विचार करनेसे शत्रुरूप भावोंका पता लग सकता है, देखिय—

(१) रक्षाः-(रक्षस् = र-क्षः) अपने रमने अर्थात् भोगके लिये दूसरोंका क्षय करनेवाले जो होते हैं वे शत्रु हुआ करते हैं। 'र" रमना, भोगना, अपनी खुशीके लिये प्रयत्न करना, (love, desire) प्रेय मार्गसे चलना। "क्ष" दूसरोंका क्षय करना, दूसरोंका नाश करना। अपने भोगके लिये दूसरोंका नाश करना, दूसरोंके सर्वस्वका अपहरण करके अपना सुख बढानेका प्रयत्न करना। यह राक्षसोंका लक्षण है। "क्षर्" धातुसे अक्षरोंकी अदलाबदल करके "रक्षः" शब्द बनाया जाता है। इस प्रकार इसका अर्थ निम्न प्रकार बनता है-नाशका व्यवहार करनेवाले, निरर्थक प्रयत्न करनेवाले, घातक प्रवृत्ति धारण करनेवाले।

(२) अघ-शंसः= पापकी ओर प्रवृत्ति रखनेवाला, निंदित कर्म करनेवाला पापी कर्मके लिये ही जिसकी बदनामी होती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। अर्थात् जो सदा बुरा कर्म करता रहता है वह मनुष्योंका शत्रु है।

(६) गवां-स्तेनः=इस शब्दका अर्थ " गायकी चोरी करनेवाला है। परंतु इस शब्दमें अर्थका विशेष भाव भी है। " गो" शब्दके अनेक अर्थ हैं- गौ, गाय, दूध, घी, चमडा, प्रकाश, रत्न, हीरा, बाण, भूमि, शब्द, वाणी, वाचा, वक्तृत्व, सरस्वती (सभ्यता), जल, घर। इत्यादि पदार्थोंका अपहार करनेवाला शत्रु समझा जाता है।

(४) अवीनां वृकः—इन शब्दोंका अर्थ "बकरियोंका संहार करनेवाला भेडिया" ऐसा है।परंतु इन शब्दोंका आंतरिक भाव (१) अशक्तोंका घातपात करनेवाला, (२) गरीबोंका नाश करके उनके सर्वस्वका अपहार करके अपना पेट भरनेवाला, (३) दीन और दुर्बलोंका भक्षक, इत्यादि होता है। "अवि" का अर्थ—प्रगति और प्रेम करनेवाला, Favourable dispostion दयालु स्वभाव धारण करनेवाला, Kind प्रेम और प्रीति करनेवाला दयालु, promotor वृद्धि करनेवाला, animater उत्साहक वर्धन करनेवाला; a mountain पहाड, पर्वत; air, wind हवा, वायु, a master स्वामी, अधिकारी, राजा, सरदार। इनका क्रूरताके साथ घात करनेवाला शत्रु कहा जाता है।

ये सब शत्रुओंके लक्षण पूर्वोक्त लक्षणोंमें संमिलित करना उचित हे। इन सब लक्षणोंको एकत्रित करनेसे ही मानवी जातिके सच्चे शत्रुकी निश्चित कल्पना स्पष्ट हो सकती है। शत्रुके सब लक्षणोंमें " अवीनां वृकः" अर्थात् 'निर्बलोंका घात करनेवाला' यह एक लक्षण मुख्य है। हीन वृत्तिकी पराकाष्ठा इसमें है। जो निर्बल होते हैं, उनका संरक्षण करना बलवानोंका धर्म है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परंतु यदि बलवान ही निर्बलोंको खाने लगेंगे तो उनमें धर्म कहां रहेगा? निर्बलोंका घात करनेकी पशुओंमें प्रवृत्ति है मनुष्योंको इस प्रवृत्तिका धारण करना उचित नहीं है। तथापि स्वार्थवश होकर मनुष्योंमें कई दुर्जन "वृक" अर्थात् भेडिये बन जाते हैं और अशक्तोंको खा जाते हैं, उनके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए, इसका वर्णन निम्न मंत्रोंमें किया है—

वधैर्दुःशंसां अप दूढ्यो जहि दूरे
वा य अन्ति वा केचिदत्रिणः ॥

ऋ. १।९४।९

"(दुःशंसान्) बुरा भाषण करनेवाले, (दू-ढ्यः=दुःधियः) दुष्ट विचार करनेवाले, और (अत्रिणः) स्वार्थसे अपने भोग भोगनेवाले जो (दूरे अन्ति वा) कोई दूर अथवा पास होंगे उन सबका (वधैः अप जहि) हनन करो।"

इस मंत्रमें पूर्वोक्त अपराधियोंको वधका दंड कहा है। अपराधियोंके नाम और भाव नीचे दिये हैं—

(१) दुःशंसः=(दुः) बुरा (शंसः) भाषण करनेवाला, असत्य बोलनेवाला, वाणीसे दूसरोंको हिंसा करनेवाला। इस शब्दके अन्यभाव पूर्वस्थलमें दिये हैं।

(२) दूढ्यः=(दुः+धियः)=दुष्ट विचार करनेवाले, जिनकी बुद्धि घातपातके विचार करती रहती है (Evil-minddd)

(३) अत्रिन्= (Devouer) भकोसनेवाला, हडप कर जानेवाला; उजाड करनेवाला सत्यनाश करनेवाला, खाकमें मिलानेवाला। दूसरेका घात करके अपना पेट भरानेवाला। अत्यंत भोग भोगनेवाला विषयलोलुप। भोग भोगनेके लिये ही जीवन धारण करनेवाला।

६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ये सब दुष्ट हैं और वेदकी दृष्टसे ये सब अपराधी वधके लिये योग्य हैं। तथा—

> ताविद्दुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम् ॥
> आ भोगं हन्मना हतम् ॥
>
> ऋ० ७।९४।१२

"(दुःशंसं) बुरा भाषण करनेवाले, (दुःविद्वांसं) दुष्ट ज्ञान धारण करनेवाले, (र-क्ष-स्विनं) अपने रमण अर्थात् भोगके लिये दूसरोंका क्षय करनेवाले, (आ-भोगं) सब प्रकारसे अपने भोगोंका फिक्र करनेवाले (मर्त्यं) मरने योग्य दुष्ट दुर्जनको (हन्मना) हननके विचारसे (इत्हतं) निश्चयपूर्वक हनन कीजिये।" इस मंत्रमें दो तीन शब्द विचार करने योग्य हैं।—

(१) दुर्विद्वान् — (दुः-विद्वान्)—दुष्ट विद्याका धारण करनेवाला, दुष्ट विचार करनेवाला, विद्याका बुरा उपयोग करनेवाला, अपने ज्ञानसे दूसरोंका घात करनेवाल।दुष्ट-विद्वान्।

(२) रक्षस्विन्—(र-क्ष-स्विन्) रमनेके लिये क्षय करनेवाला। अपनी खुषीके लिये दूसरोंका नाश करनेवाला। दूसरोंके नाशसे खुश होनेवाला।

(३) आ-भोगं—सब प्रकारसे अपने भोग बढानेका सतत यत्न करनेवाला, भोगोंके तरफ ही जिसका सदा लक्ष्य होता है, भोग भोगनेके लिये ही सब कुछ करनेवाला।

इन शब्दोंमें "दु-र्विद्वान्" शब्द विशेष मनन करने योग्य है। "सु-विद्वान" और "दुर्विद्वान्" ये दो शब्द परस्पर विरोधी भावोंको बताते हैं। विद्या एक बडी भारी शक्ति है। उस बडी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शक्तिको जो बुरे कार्योंमें लगाता है वह बडा भारी अपराधी होता है। अविद्वान् शत्रुकी अपेक्षा विद्वान् शत्रु बहुत बुरा होता है। विद्याके सामर्थ्यसे उसकी शक्ति बहुत ही बडी होती है। इस लिये दुष्ट-विद्वान् अथवा दुर्विद्वान् समाजकी दृष्टिसे अपराधी है। तात्पर्य केवल ज्ञान अथवा विद्या प्राप्त करनेसे कार्यभाग नहीं हो सकता, परंतु प्राप्त किये ज्ञानसे लोगोंका कभी घात नहीं करना चाहिए, सबकी उन्नतिका उपाय करनेमें अपने ज्ञानका समर्पण करना चाहिए। तथा—

यो नः सोम सु शंसिनो दुःशंस आदिदेशति ॥
वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति ॥

अथ. ६।६।२

"(यः दुःशंसः) जो दुष्ट मनुष्य (सु-शंसिनः नः) उत्तम विचारोंसे युक्त रहनेवाले हम सबको (आ-दिदेशति) आदेश करने लगेगा, (अस्य मुखे वज्रेण जहि) उसके सिरपर शस्त्र चलाओ, (संपिष्टः स अपायति) चूर्ण होनेसे ही वह दूर होता है।"

जो दुर्जन सज्जनोंको अपने आधीन रखता है और उनको मनमाने हुकूम करता है और इस प्रकार सज्जनोंको कष्ट पहुंचाता है वह वधके दंडके लिये योग्य है।

मानव जातिके शत्रुओंका वर्णन वेदमें इस प्रकार आया है। इन् मंत्रोंका शांतिके साथ विचार करनेसे दुष्ट दुर्जनोंके लक्षण ज्ञात हो सकते हैं। प्रत्येक मनुष्यमें ये भाव नहीं रहने चाहिएँ, क्योंकि इन दुष्ट भावोंको मनमें धारण करनेसे आत्माकी अवनति हो सकती है। इन दुष्ट कामनाओंको दूर करनेसे ही मनुष्यकी उन्नति हो सकती है। समाजके अभ्युदयके लिये ही यही नियम है। समाजमें उक्त प्रकारके बुरे भाव धारण करनेवाले मनुष्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं होने चाहिए। सुशिक्षाके प्रचारद्वारा सब मनुष्योंको सुसंस्कारसंपन्न बनाना चाहिए। और उनके मन पवित्र, शुद्ध और श्रेष्ठ बनाना चाहिए। इस प्रकार व्यक्तिकी और समाज अथवा राष्ट्रकी उन्नतिका राजमार्ग है। जो इस मार्गपरसे चलेगा वही पार हो सकता है। परंतु जो दुराचारी बनकर अपने आपको उक्त दुष्ट व्यसनो लोगोमे सम्मिलित कर लेगा, उसकी तो अवश्य ही अधोगति होगी, परंतु जिस समाज अथवा जातिमें वह रहता होगा उसकी भी अवनति होगी। इसलिये इस लेखमें दिये हुए लक्षणोंसे अपने आपका बचाव करके अपने अन्दर श्रेष्ठ सद्गुणोंकी वृद्धि करना हरएकका कर्तव्य है। आशा है कि सब लोग अपना कर्तव्यपालन करके अपनी जातिकी उन्नति करके संपूर्ण जगतके मार्गदर्शक बनेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विजय प्राप्त करनेकी कला।

अजीताः स्याम शरदः शतं॥ तै. आ. ४।४२।५
अदीनाः स्याम शरदः शतं॥ यजु. अ. ३६।२४

"हम सब सौ वर्षपर्यंत पराजित न होते हुए जीवित रहें, तथा हम सब सौ वर्षपर्यंत अदीन अर्थात् उत्साही जीवनसे युक्त रहें।" यह वैदिक धर्मकी आकांक्षा प्रसिद्ध है। हर एक मनुष्यको उचित है, कि वह सदा ऐसे पुरुषार्थ करता रहे, कि जिससे वह कभी पराजित न हो सकें। पराजय होनेसे सब प्रकारकी आपत्तियाँ प्राप्त होती हैं। पराजितोंको ही सब कष्ट भोगने पडते हैं। पराजितोंके सद्गुण बुरे समझे जाते हैं, और विजयी लोगोंके दुर्गुण अनुकरणीय समझते हैं। विजयका इतना प्रभाव है। इसलिये विजय प्राप्त करनेका यत्न हरएकको करना उचित है। विजय किस प्रकार मिलता है इस प्रश्नके उत्तरमें वेद कहता है.—

अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः॥

ऋ. ४।५०।९

जो (अ-प्रति-इतः) पीछे नहीं हटता वह पुरुषार्थी मनुष्य ही (जयति) विजय प्राप्त कर सकता है। वही (प्रतिजन्यानि) व्यक्तिविषयक तथा (सजन्या) समूह अथवा समाजविषयक (धनानि) धनोंको (सं जयति) विजयसे प्राप्त करता है। (यः) जो राजा (अवस्यवे) अपना रक्षण करनेवाले (ब्रह्मणे) ज्ञानीको ही (वरिवः) सहायता (कृणोति) करता है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(तं देवाः अवन्ति) उसीका देव रक्षण करते हैं॥

इस मंत्रमें विजयकी कुंजी रखी है। (१) जो पीछे नहीं हटता वही विजय प्राप्त करता है। यह मंत्रका पहिला विधान है।—

प्र - इत	प्रति - इत
प्र - गति	प्रति - गति
Pro - gress	Back - going
आगे - बढना	पीछे - हटना

'प्र-इत और प्रति-इत' ये दो शब्द वेदमें वारंवार आते हैं पहिला उन्नति और अभ्युदयका दर्शक है और दूसरा अवनति अथवा पीछे हटनेका दर्शक है। जो पीछे नहीं हटता अर्थात् जो अपने स्थानपर स्थिर रहता है, (युधि-ष्ठिर) जीवन कलहके घनघोर युद्धमें जो न डरता हुवा अपने स्थानसे पीछे नहीं भागता, अथवा जो अपने पुरुषार्थके साथ आगे बडता है, वही विजय पाता है। परंतु जो जीवन-कलहमें पीछे रहेगा वह गिरेगा। इस लिये निर्भयताके साथ आगे बढनेकी तैयारी करना सबको उचित है।

आगे बढनेका तात्पर्य यहां मनुष्यके उन्नतिके सब भूमिकाओंमें उन्नति प्राप्त करनेसे है। आत्मिक, बौद्धिक, मानसिक इंद्रिय-विषयक, शारीरिक वैयक्तिक तथा सामाजिक अथवा सर्व राष्ट्रीय प्रयत्नोंमें सर्वप्रकारके पुरुषार्थोंके साथ आगे बढनेका संदेश [अ-प्रति-इतः] " अप्रतीतः " इस शब्दद्वारा वेदने सब लोगोंको पहुंचाया है। जो सुनेंगे और जो इस आदेशके अनुसार अपना आचरण करेंगे वेही विजयी और यशस्वी हो सकते हैं। जो सुनते हुए आचरण नहीं करेंगे वे गिर जायँगे।

(१) अब आप सचाईपर रहेंगे, अपने शब्दको सदा सत्यसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्ण रखेंगे, प्रामाणिकता, सीधा सरल व्यवहार और उन्नत आचरणसे आप पवित्र बनेंगे; (२) शुद्ध संस्कारोंसे युक्त रहनेका आप प्रयत्न करेंगे, उन्नति और अभ्युदयके लिये ही सदा पुरुषार्थ करेंगे, जगतका सुधार करनेके लिये स्वयं अपने आपको अर्पण करेंगे, लोगोंको उच्च, श्रेष्ठ और अधिक पवित्र भूमिकामें पहुंचानेके लिये जब आप अपनी पराकाष्ठा करेंगे; (३) जब आप निर्भयतासे कार्य करेंगे, भीतिसे दूर रहेंगे, सत्कर्म करनेके लिये किसीसे नहीं डरेंगे, अपनी पूर्णता करनेके लिये अहर्निशि प्रयत्न करेंगे; (४) जब आप ऐश और आरामकी पर्वा छोड कर, सुस्तीको दूर करके, अपने ही इंद्रियोंके सुखोंमें मस्त न होंगे, तथा श्रेष्ठ कार्य करनेके लिये योग्य स्वार्थत्याग आनंदके साथ करेंगे; (५) संदेहको दूर करके निश्चयात्मक बुद्धिसे सतत पुरुषार्थ करेंगे, सोचने विचार करनेमें ही जब आप अपना सब समय न गमायेंगे, परंतु सोच विचारपूर्वक कार्य करनेके लिये सदा तत्पर रहेंगे, (६) जब आप विजयी पुरुषवीरोंके समान अपने विचार प्रकट करेंगे अपना चालचलन शूरोंके समान उदात्त करेंगे अपने कार्य धैर्यशील उदार चरितोंके समान करेंगे अपने सब खूनमें विजयकी ध्वनि कूट कूट कर भर देंगे; (७) जब आप विजयी पुरुषोंके चरित्र पढेंगे, उनके गीत गायेंगे, उनके समान बननेका यत्न करेंगे, उनके चरित्र दूसरोंको सुनायेंगे, तथा उनके जीवनोंमें प्रेममय भक्ति रखेंगे; (८) जब आप श्रेष्ठ पुरुषोंकी संमति आदरके साथ विचार कोटिमें लेंगे, अपनी निंदा स्तुतिकी पर्वाह न करते हुए योग्य कार्य दक्षतासे, करेंगे; (९) जब कष्ट और आपत्तियाँ आजायँगीं तब न डरते हुए बडे विलक्षण धैर्यके साथ अपना ही योग्य धार्मिक सत्कार्य चलाते रहेंगे, (१०) जब आप दैवका विचार न करते हुए, पुरुषार्थका ही ख्याल मनमें धरेंगे,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सत्कार्य करते हुए यदि सब दुनिया आपके विरुद्ध हो गई तो भी जब नहीं डरेंगे; (११) अपने पुरुषार्थके बलपर जब आप निर्भर रहेंगे; सत्कार्य करते हुए यदि विष आपको प्राप्त हुवा तो भी यदि आप निर्भयतासे उसको स्वीकार करनेके लिए तैयार होंगे; (१२) जब आप अच्छे नागरिक, भले पडोसी, उत्तम राष्ट्रहितैषी, और मानवी हितका कार्य करनेमें तत्पर बनेंगे, (१३) अपने सुविचार प्रकट करने और अपना जीवन विशेष उच्चप्रकारसे व्यतीत करनेके लिये जब आप किसीसे नहीं डरेंगे, (१४) जब अपने आपको पूर्ण धैर्यवान मानेंगे, अपनी वैयक्तिक उच्चताकी सिद्धता करनेका सुविचार करेंगे, अपने आपको गिरा हुवा न मानेंगे; (१५) जब आप अपनी इंद्रियोंका शमन और दमन करेंगे, उनको स्वाधीन रखेंगे. आप अपनी शक्तियोंके प्रभु बनेंगे सब दुष्टभावोंको दूर करेंगे; (१६) जब आप सदा उच्च विचार उच्चार और आचारको ही पसंद करेंगे, उच्च आकांक्षा धरेंगे और अभ्युदयके मार्गसे चलेंगे; (१७) जब आप अपना जीवनका सुधार करनेका दृढ निश्चय करेंगे, जीवन कलहमें सत्यके साथ आगे बढेंगे, अपना आदर्श जीवन बनानेका यत्न करेंगे; (१८) जब आप उत्साह, उल्लास और आनंद अपने चेहरेपर सदा रखेंगे; अपना वायुमंडल उत्साहपूर्ण बनायेंगे और अपना घर, पोशाक और अपने अन्य पदार्थ उल्लासपूर्ण सदा रखेंगे; (१९) जब आप सुधारके मार्गसे प्रगति करेंगे, और हीन मार्गसे दूर रहेंगे; (२०) जब आप द्वेष, मत्सर, और दूसरेकी निंदा न करते हुए दूसरोंके उत्तम गुणोंका ही विचार करेंगे; (२१) अपने निश्चित विचारसे इधर उधर न भटकेंगे, अपने मार्गमें ही सुदृढ विचारसे चलेंगे; (२२) सबसे श्रेष्ठ पुरुषार्थ करके सबसे श्रेष्ठ अवस्था प्राप्त करनेके लिये जब आप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दृढ विश्वाससे प्रयत्न करेंगे; (२३) जब आप जगत्‌की ओर पूर्णताकी भावनासे देखेंगे, और दोषकी दृष्टिसे ही सब दुनियाकी ओर देखना छोड देंगे; (२४) जब आप निश्चयका बल धारण करके बंधनोंको तोडनेका प्रबल यत्न करेंगे; (२५) जब आप सत्य तत्वोंके प्रेमसे कार्य करेंगे और छोटे मोटे प्रलोभनोंमें न फँसेंगे; (२६) जब आप सदा सर्वदा अविचारसे दूसरोंका अनुकरण न करेंगे, परंतु अपनी बुद्धिसे अपनी स्वतंत्रताका मार्ग ढूँढेंगे; (२७) जब आप उचितको निकट और अनुचितको दूर करनेमें धैर्य बतायेंगे, 'न' कहनेके समय 'हां' नही करेंगे, और 'हां' कहनेके समय 'न' नहीं कहेंगे, दूसरोंकी मोहब्बतसे अपना सत्यमार्ग न भूलेंगे; (२८) धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके कर्तव्योंमें जब आप सदा आगे ही बढते जांयगे; (२९) परमात्माकी भक्तिसे अपने अंतःकरणोंको पवित्र रखेंगे; (३०) जब आप हृदयसे न डरेंगे, मनमें विश्वास रखेंगे, और आत्मामें बल रखेंगें; (३१) 'मैं अवश्य विजय प्राप्त करूंगा' ऐसी ही भावना जब मनमें दृढ करेंगे, (३२) शरीर, मन आदि अपने साधनोंको जब एक ही श्रेष्ठ पुरुषार्थमें लगायेंगे; (३३) जब आप अपने आपको परमेश्वरके अंदर समझकर पूर्ण विश्वाससे कार्य करेंगें; तब आप आगे बढ सकते हैं और आगे बढनेसे विजय प्राप्त कर सकते हैं।

इससे आप और अधिक सोच कर अपने काया वाचा मनकी शुद्धि करने, अपने आपको योग्य बनाने और पूर्ण विजय प्राप्त करनेका मार्ग ढूँढ सकते हैं। सोचिए और सीधे मार्गको प्राप्त करके उसपर चलिए।

उक्त मंत्रमें (प्रतिजन्य धन) वैयक्तिक धन तथा (सजन्य धन) समुदाय, समूह, संघ, अथवा समाजका धन, ऐसे दो प्रकारके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धन कहे हैं। उन्नति, अभ्युदय, विकास आदि सब दो प्रकारका होता है। एक मनुष्यके संबंधसे जो उन्नति आदि है उसको वैयक्तिक, व्यक्तिविषयक, प्रतिजन्य, प्रत्येक जनके संबंधमें (Individualistic) कहा जाता है। तथा जो अभ्युदय सब जनताके संबंधमें होता है उसको सामुदायिक, सामाजिक सजन्य संपूर्ण जनोंके संबंधमें, राष्ट्रीय, समाज अथवा जातिके संबंधमें, (Socialistic) कहते हैं। देखिए—

व्यक्ति	समाज
मनुष्य	संघ
प्रति-जन	स-जन
प्रति-जन्य	स-जन्य
अ-संभूति	सं-भूति
Individual existence	United existence

यजु० अ० ४० अथवा ईशोपनिषद्में संभूति और असंभूतिका विचार आगया है। वहां कहा है कि " जो केवल व्यक्तिकी उन्नति करनेमें मस्त रहते हैं, वे गिर जाते हैं, तथा जो केवल सामाजिक सुधारमें हो लग जाते हैं वेभी गिर जाते हैं व्यक्तिकी उन्नतिका एक विशेष महत्त्व है, और समाजके सुधारका एक विशेष महत्त्व है। इस बातको जान कर जो दोनों प्रकारके सुधारको साथ साथ करते जाते हैं, वे व्यक्तिकी उन्नतिसे दुःखको दूर करके सार्वजनिक अभ्युदयसे अविनाशी स्वातंत्र्यको प्राप्त करते हैं।" अर्थात् व्यक्तिका अभ्युदय और सार्वजनिक निश्रयसका साधन करना वैदिक धर्मका मुख्य उद्देश है जो इस उद्देशको छोड देते हैं वे अवनत होते हैं। इस लिये इस मंत्रमें विजय प्राप्तिके उपदेशमें 'प्रतिजन्य और सजन्य' अर्थात् एक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एककी ओर संघकी उन्नतिका समावेश किया है। यहां धनका तात्पर्य 'धन्यताका साधन' है, न कि रुपया आना पाई। जिससे मनुष्य अपने आपको धन्य समझ सकता है वह उस मनुष्यके लिये उस समय धन होता है। इस लिये धन्यताके सब साधन धन ही हैं।

वैदिक धर्ममें रहता हुवा जीता जागता सुविचारी सदाचारी और सच्छील मनुष्य व्यक्तिके और जातिके सुधारके विचारोंसे दूर नहीं रह सकता। वर्णाश्रम धर्ममें सब जातीय व्यवस्था ही है ब्रह्मचर्य और गृहस्थ ये दो आश्रम व्यक्तिके सुधारके हैं। गृहस्थमें जनताके विचारोंका प्रारंभ होता है, तथा वानप्रस्थ और संन्यास ये दो आश्रम केवल जनताकी उन्नति करनेके ही हैं। व्यक्तिके स्वार्थको छोडना और जनताकी भलाई करनेका विचार मनमें दृढ करना, यही संन्यासका तत्त्व है। जनतात्माकी सेवा करना ही संन्यास धर्म है। चार वर्णोंके धर्ममें तो प्रसिद्धिसे ही सार्वजनिक सुव्यवस्थाका मार्ग है। इस लिये उसका विचार करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं। इस कारण सब वैदिक-धर्मियोंको उचित है कि वे जिस प्रकार अपने सुधारका विचार करते हैं, उसी प्रकार वे जनताका अथवा जातिका भी अवश्य विचार करें। क्योंकि जबतक दोनों उन्नतियोंकी प्राप्ति न होगी तबतक धर्मकी पूर्ण सिद्धि प्राप्त होना असंभव है।

पूर्वोक्त मंत्रके उत्तर चरणमें 'अवस्युः ब्रह्मा' ये शब्द आये हैं। 'अवस्यु' का अर्थ- संरक्षण, हलचल, प्रेम समाधान, शांति, ज्ञान, प्रवेश, श्रवण, स्वामित्व, विनती, पुरुषार्थ, इच्छा, प्रकाश, प्राप्ति, ऐक्य, स्वीकार, अस्तित्व, वृद्धि और विरोधका परिहार करनेवाला है। ये उन्नीस कार्य मनुष्यके अभ्युदयके साधक हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाठक यहां विचार करें कि इन उन्नीस कार्योंसे मानवी उन्नति किस प्रकार सिद्ध हो सकती है। मनुष्य मात्रके सब हलचलके प्रयत्न जो व्यक्तिकी उन्नतिके लिये होते हैं तथा जो जातीयताके विकासके लिये हो सकते हैं, उन सबकी सूचना उक्त अर्थोंमें आ रही है। इतना व्यापक अर्थ बतानेवाला 'अवस्यु' शब्द है। 'अव्' धातुसे यह शब्द बनता है और इसी धातुसे 'ऊति, अवन, ओं' आदि शब्द बनते हैं। इसलिये इन सब शब्दोंमें मुख्यतया अथवा गौणवृत्तिसे सब पूर्वोक्त अर्थ विद्यमान रहते ही हैं। पाठक इस शब्दके ये अर्थ विशेष स्मरणपूर्वक मनमें धारण करें, क्योंकि 'अवन' शब्दका प्रयोग तथा इस धातुसे बने हुए शब्द वेदमें विशेष हेतुसे दिये हैं।

जो अपनी व्यक्तिकी, समाजकी, राष्ट्रकी तथा जनताकी सुयोग्य उन्नति करनेकी पराकाष्ठा करता है वही 'अवस्यु' हो सकता है। इस प्रकारके मनुष्यत्वका विकास करनेका प्रयत्न करनेवाले पुरुषार्थी ज्ञानी सुयोग्य विद्वानको ही श्रेष्ठ प्रकारकी सहायता करनी राजाको चाहिए, क्योंकि वह ज्ञानी उस सहायताका उपयोग जनताके हितके लिये ही करेगा।

'वरिवः' शब्दका अर्थ- पूजा, सन्मान, आदर, धन, स्थान, जगह, सुख, आराम, सुविधा इतना है। पूर्वोक्त प्रकारके 'अवस्यु ज्ञानी' के लिये राजा 'वरिवः' दे अर्थात् उनको उक्त प्रकारकी सब प्रकारसे सहायता और सुविधाएँ दे, उसीका सन्मान करे और उसको योग्य स्थान देकर आराम पहुँचावे। ताकी वह संरक्षक ज्ञानी सब मनुष्योंका भला होने और करनेका मार्ग ढूँढ कर निकाले और उसका सबको उपदेश करे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ राजा और राजाके अधिकारियोंका धर्म वेदने बताया है। उक्त प्रकारके ज्ञानियोंको सब प्रकारसे सहायता देना और इनके मार्गमें किसी प्रकारकी बाधा न खडी करना राजाका तथा अधिकारियोंका कर्तव्य है। इस प्रकारके राजाका देव संरक्षण करते हैं ऐसा अंतिम मंत्रभागमें कहा है। सब प्रकारके देव उस प्रकारके राजाका उत्तम प्रकारसे रक्षण करते हैं।

इस प्रकार यह मंत्र व्यक्तिके कर्तव्य, समाजके कर्तव्य तथा राजाऔर राजपुरुषोंके कर्तव्य बता रहा है, तथा विजयके मार्गका प्रकाश कर रहा है इसका पाठक अधिक विचार करें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्मका तत्त्व ।

'आत्मा' शरीर धारण करके कर्म करता है ।'आत्मा' का स्वभाव इसी शब्दसे ज्ञात हो सकता है। 'अत्-सातत्यगमने' इस धातुसे यह शब्द बनता है। सतत गमन, सतत कर्म, सतत पुरुषार्थ करनेका धर्म 'आत्मा' शब्द बता रहा है। वैदिक धर्मके अत्यंत महान् सिद्धांतोंमें यह एक बडा भारी सिद्धांत है, कि आत्मा सतत कर्म करनेवाला है और शरीर उसके पुरुषार्थका साधन है और बंधनोंका निवारण करके पूर्ण स्वातंत्र्यकी प्राप्ति करना उसके पुरुषार्थोंका साध्य है।

जीवात्माका दूसरा नाम 'क्रतु' है। क्रतुका अर्थ 'कर्म' है। आत्माका स्वभावधर्म ही कर्म करना है यह भाव इस शब्दद्वारा प्रकट हो रहा है। 'इंद्र' जीवात्माका नाम है और उसको 'शत-क्रतु' इसलिये कहते हैं कि वह इस शरीरमें कमसे कम सौ वर्ष रहकर क्रतु अर्थात् पुरुषार्थ करता रहता है। सौ वर्ष पुरुषार्थ करनेका धर्म जीवात्माका है यह भाव इस शब्दसे सिद्ध होता है। शतक्रतु इंद्र देवोंका राजा है। देव शब्द शरीरमें इंद्रियवाचक है। इंद्रियोंका राजा जीवात्मा है। यह ज्ञान यदि हरएक जीवात्माको हो जायगा तो उसकी शक्ति बढ जाती है। इस शरीररूपी कुरुक्षेत्रपर विजय प्राप्त करनेके लिये मैं आ गया हूं इस शरीररूपी रथमें बैठकर दुष्ट विचाररूपी शत्रुओंके साथ युद्ध करनेवाला मैं 'विजय' हूं। मेरा नाम 'विजय' होनेसे मेरा पराजय कोई नहीं कर सकता, क्योंकि मेरा सारथी परमात्मा है, मेरे साथ धर्म है और आत्मिक बल मेरा सहायक है। सब देवोंकी अर्थात् इंद्रियादिकोंकी अद्भुत शक्ति मेरे पास है इसलिये इस जीवन-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कलहकी युद्धभूमिमें स्थिरताके साथ युद्ध करूंगा और अवश्य विजय प्राप्त करूंगा।

मनुष्यके वैदिक नाम सबके सब पुरुषार्थका ध्वनि प्रकट कर रहे हैं। देखिए (१) मनुष्यः-'विचारशील' इसका भाव है। जो मनन कर सकता है (२) नरः-नेता A leader। दूसरोंको सत्यमार्गपर चलानेवाला जो होता है उसका नाम नर होता है। सब लोगोंको सन्मार्ग बतानेका पुरुषार्थ करनेवाला ही नर कहलाता है। तथा (न-रम्) जो अपने स्वार्थमें नहीं रमता; परोपकारके लिये ही अपना सर्वस्व अर्पण करता है उसको भी नर कहते हैं। (३) धवः-स्वामी बनकर प्रयत्न करनेवाला। मनुष्य ही जगत्में प्रभु है अर्थात् मुख्य है। प्रभु उसको कहते हैं कि जो विशेष प्रभावशाली होता है। मनुष्य प्रयत्न करके अपना प्रभुत्व इस जगतमें सिद्ध कर रहा है। जैसा जो पुरुषार्थ करता है वैसी उसको सिद्धि हो सकती है। (४) विशः-Enter-prise करनेवाला अर्थात् जोखिमके कठिन काम करनेके निमित्त उद्योग करनेवाला। यह मनुष्यका ही स्वभावधर्म है कि जो प्रतिदिन नवीन नवीन उद्योग करता रहेगा और अपनी परिस्थितीको सुधारेगा। (५) कृष्टयः-चर्षणयः—ये दोनों शब्द नित्य प्रयत्न करनेके द्योतक हैं। (६) व्राताः-समूह अर्थात् संघ बनाकर, जातीयताके विचारसे मिलकर ऐक्यभावसे रहनेवाला मनुष्य प्राणी है। अर्थात् यह शब्द बताता है कि संघशक्तिसे पुरुषार्थ करनेवाला मनुष्य है, यही उसका धर्म है। व्यक्तिके धर्म छोटे क्षेत्रके लिये होते हैं, और संघके धर्म अत्यंत विस्तृत क्षेत्रके लिये होते हैं। इस शब्दसे संघके विस्तृत धर्मोंकी सूचना मिल रही है और मनुष्यके कार्यक्षेत्रकी सीमा अत्यंत व्यापक है, ऐसा यहां सिद्ध हो चुका है। इतना ही नहीं परंतु केवल व्यक्तिकी उन्नतिके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिये कर्म करने मात्रसे ही मनुष्यत्वका विकास नहीं होता है, बल्कि मनुष्यको अत्यंत आवश्यक है. कि वह जनताके हितके लिये अवश्य कार्य करे, क्योंकि संघभावसे रहना उसका निज धर्म ही है। (७) तुर्वशः- त्वराके साथ सबको वशमें लानेवाला मनुष्य है। मनुष्यके व्यवहारसे इस बातका पता लग सकता है कि किस प्रकार वह सब जगत्के स्थावर जंगम पदार्थोंको अपने वशमें ला रहा है (८) आयुः-आयुको धारण करनेवाला पुरुषार्थसे अपनी आयुको बढानेवाला मनुष्य है। इस प्रकार इतर कोई प्राणी अपनी आयु बढा नहीं सकते। केवल मनुष्य ही एक प्राणी है कि जो अपनी आयुको बढा सकता है (९) पूरवः-पूणता करनेवाला मनुष्य होता है। हरएक प्रकारका पुरुषाथ करके उसमें पूर्णता प्राप्त करनेवाला मनुष्य ही है। (१०) जगतः-हलचल करनेवाला मनुष्य है। किसी एक स्थानमें, एक अवस्थामें, एक परिस्थितिमें, मनुष्य नहीं रहता। नित्य पुरुषार्थ करके उन्नति प्राप्त कर सकता है। (११) पंचजनाः-पांच प्रकारके लागोंका संघ बनाकर सबकी उन्नतिका साधन करनेवाला मनुष्य है। (१२) विवस्वन्तः-विशेष प्रकारसे वसने अर्थात् रहने सहनेका प्रयत्न करनेवाला मनुष्य है। (१३) पृतनाः-युद्ध करनेवाला अर्थात् नित्य प्रति चलनेवाले जीवन युद्धमें बडे बडे पुरुषार्थ करनेवाला मनुष्य है।

ये सब शब्द निघण्टु अ. २।३ में पाठक देख सकते हैं। ये वैदिक शब्द-जो कि मनुष्यवाचक हैं-स्पष्ट बता रहे हैं कि मनुष्यका स्वभावधर्म परमपुरुषार्थका साधन करना ही है। वैदिक शब्दोंके अत्यंत महत्वका पता यहां लग सकता है। इन अर्थोंको देखे विना ही वेदका अर्थ करनेका प्रयत्न करनेसे अर्थका अनर्थ होता है। वैदिक शब्दोंके अद्भुत अर्थ देखनेसे बडा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आश्चर्य होता है और जिसके मनमें ये अर्थ प्रकाशित होते हैं, उसको वेदकी अपूर्वता स्वयं ज्ञात होती है और उसके मनमें कोई संदेह नहीं रहता। अस्तु।

इस प्रकार मनुष्यका स्वभावधर्म सदा पुरुषार्थ करना है। इसीलिये कहते हैं कि आलस्य इसकी बीमारी है। पाठक यहां जान सकते हैं कि आलस्य मनुष्यका स्वभाव न होनेके कारण, परस्वाधीनता प्राप्त होनेके बिना आलस्य नहीं आ सकता। परस्वाधीन होनेका तात्पर्य (पर-स्व-आधीन) शत्रुकी शक्तिके आधीन होना है। शारीरिक शत्रु अजीर्ण आदि हैं, इसलिये जिस समय अजीर्ण, अपचन अतिभोजन होता है, उस समय आलस्य आता है। इसलिये योगग्रंथोंमें कहा है कि—

पथ्य-युक्त-हित-मित-भक्षणम्।

(१) योग्य, (२) हितकारक और (३) नियमित परिमित भोजन करना चाहिए। पाठक अनुभवसे देखेंगे कि लंघन करनेसे आलस्यका स्वभाव ही दूर होता है। यह शरीरके आलस्यकी बात हो गई। मनका आलस्य बुरे विचारोंका मनमें धारण करनेसे होता है। इसको दूर करनेके लिये श्रवण, मनन और आचरण श्रेष्ठ विचारोंके साथ होना उचित है। शरीर और मन उत्साहपूर्ण होनेसे आत्मबुद्धिमें सदा उत्साह रहता ही है। आत्मबुद्धिमें कभी निरुत्साह रहता ही नहीं, क्योंकि उत्साही प्रयत्नशीलता ही इसका स्वभावधर्म है। इसलिये जो सच्चे बनना चाहते हैं उनको उचित है कि वे अपने पाससे निरुत्साहको दूर करें और उत्साहपूर्ण विचारोंको ही अपने पास सदा रखें।

'इस जगत्में पुरुषार्थ करते हुए ही सौ वर्ष जीनेकी इच्छा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धारण करनी चाहिए।' (यज. ४०।२) यह वेदकी आज्ञा जगत्में प्रसिद्ध है। शतपथमें कहा है—

कर्म कुरु॥ (शत. ११।५।४।५)

'कर्म करो' हरएक मनुष्यको कर्म करना आवश्यक है। इस विषयमें और उपदेश देखिए—

कर्म कृण्वंतु मानुषाः॥ अथर्व. ६।२३।२
कर्मणे त्वां॥ यजु. १।६
कर्माणि चक्रुः पवमानधीराः॥ ऋ. ९।९६।११
कर्मारा ये मनीषिणः॥ अथर्व. ३।५।६

"मनुष्य कर्म करें। आपको कर्मके लिये ही उत्पन्न किया है। धीर लोग उद्योग करते हैं, जो बुद्धिमान होते हैं वे उद्यमशील होते हैं।" ये वैदिक उपदेश स्पष्ट हैं। अन्य शास्त्रोंके उपदेश देखिए—

कर्म कृण्वंति वेधसः॥ तै. सं. १।१।९।३
कर्म कृताः सुकृतो वीर्यवतीः॥ तै. ब्रा. ३।१।२।४
कर्मणा सुहस्ताः। शां. श्रौ. ८।२०।१
कर्मणे हस्तौ विसृष्टौ॥ कौ. सू. ३४।१५
कर्माणि तनुतेऽपि च॥ तै. आ. ८।५।१
कर्मार्थः पुरुषसंमितः॥ कौ. १।१९।४
कर्मासि॥ तै. सं. १।६।४।४

'ज्ञानी लोग उद्योग करते हैं। उत्तम पुरुषार्थसे वीर्यकी प्राप्ति अर्थात् शौर्यादि गुण प्राप्त होते हैं। कर्म करनेसे ही हाथ सुशोभित होते हैं। क्योंकि कर्म करनेके लिये ही हाथ बनाये हैं। पुरुषार्थोंका फैलाव उत्तम पुरुष करते हैं। पुरुषार्थ पुरुषको ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पसंद होता है। मनुष्य कर्मरूप ही है।' ये सब उपदेश नित्य मनन करने योग्य हैं। तथा—

कर्म च मे शक्तिश्च मे॥ यजु. १८।१५

'मेरी पुरुषार्थ करनेकी शक्ति और मेरा पौरुष कर्म सत्कृत्य रूप बने।' यह इच्छा अत्यंत प्रभावशाली है। इसलिये जो स्वयं वेदका पाठ कर सकते हैं वे कभी आलसी और निरुद्योगी तथा उत्साहहीन रह नहीं सकते। जबतक वेदका धर्म आर्योंमें जीता जागता रहा था तब आर्य सर्वत्र विजयी और यशस्वी थे। तथा जबसे आर्य वैदिक धर्मसे विमुख हो गये, तबसे उनके अंदर निरुत्साह और सुस्ती आगई है। वैदिक वायुमंडल सब प्रकारसे पुरुषार्थका वायुमंडल है। इसलिये जो स्वयं वैदिक धर्मी हैं उनको वेदका अवश्य अध्ययन करना चाहिए, तथा जो नहीं है उनको वैदिक धर्ममें लाना चाहिए। यदि सब लोगोंके अंतःकरणोंमें वैदिक धर्मका प्रकाश हो जाय तो निस्संदेह सब कष्ट दूर हो जावेंगे।

कर्म करना अवश्य है, तथा मनुष्यका अथवा जीवात्माका स्वभावधर्म ही कर्म करनेका है, इतनी बात सिद्ध हो गई। अब यहाँ देखना है कि कर्म किस प्रकार करना चाहिए।

जिस समय आप कर्म करने लगेंगे उस समय निम्न प्रकारकी भावना मनमें रखिए। (१) यह कर्म मैं अपनी अंतःस्फूर्तिसे ही कर रहा हूं, किसीके दबावसे नहीं और कर्मके करनेसे मेरा धार्मिक जीवन व्यतीत होगा। उच्चता और श्रेष्ठताका जीवन व्यतीत करनेसे मेरी मनुष्यताका विकास होगा, इस कारण इस कर्मकी अत्यंत आवश्यकता है। (२) जो कर्म करना है उसको प्रारंभ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करनेके पूर्व आप उस कर्मके करनेकी विधि परिपूर्णतासे जानिए तथा उसके साथ संबंध रखनेवाले जो जो कर्मविभाग होंगे उनका ज्ञान भी प्राप्त कीजिए। ताकि इष्ट कर्म करनेके समय किसी प्रकारका दोष न हो सके। कर्म करनेके पूर्व बुद्धिसे संपूर्ण योजना कीजिए, तथा कर्मसमाप्तितक मन उदार रखिए और सर्वत्र विचारसे ही काम करनेका अभ्यास कीजिए। (३) विघ्न अथवा किसी प्रकार न्यूनता रही अथवा इष्ट अथवा इष्टसिद्धि प्राप्त न हुई तो निरुत्साहित न हो जाइए, पुनः यत्न कीजिए। परमेश्वरपर विश्वास रखकर कार्य करनेसे अवश्य विजय प्राप्त होगा। (४) विश्वास रखिए कि छोटे कार्योंमें प्राविण्य संपादन करना बहुत अच्छा है, परन्तु बडे बडे कार्य अधूरे छोडना न केवल आपके लिये बुरा है, परन्तु दूसरोंके लिये भी प्रतिकूल हो सकता है। (५) अधूरा कार्य छोडनेका अभ्यास बहुत ही बुरा है। इस प्रकारका मनुष्य किसी प्रकारसे उन्नत नहीं हो सकता। (६) स्मरण रखिए कि जो कर्म आप करेंगे उसका परिणाम जैसा आपपर होना है वैसा ही जनता पर भी होना है, इसलिए जितनी पूर्णतासे आप उसको निभा सकें उतना ही अच्छा है। जो कर्म आप करेंगे उसको बडा पवित्र समझ कर बडे धैर्यसे कीजिए। कर्म करनेके समय फलकी ओर दृष्टि न दौडाइये। (७) प्रत्येक कर्ममें कोई न कोई कष्ट अवश्य होंगे। इस लिये कष्टोंसे डर कर किसी कार्यको न छोडिये, क्योंकि कोई ऐसा कार्य न होगा कि जो आराम तलबीसे हो सकता है। तप करने अर्थात् कष्ट सहन करनेका अभ्यास कीजिए, जिससे आप हरएक कष्टको आनंदसे सहन कर सकेंगे। कष्टोंसे न डरिये, उनका स्वागत कीजिए। यदि आप कष्टोंका स्वागत करेंगे तो आपको उनसे कष्ट ही न होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(८) अपने अंदर जो न्यूनता होगी उसको दूर करने और अपने अंदर जो अच्छे गुण होंगे उनका विकास करनेके लिये प्रयत्न कीजिए। तथा नवीन अच्छे गुण अपने अंदर बढानेकी पराकाष्ठा कीजिए। प्रतिदिन शांतिके समय इस दृष्टिसे आप स्वयं ही अपनी परीक्षा कीजिए। (९) कार्यमें सिद्धि प्राप्त करनेसे उत्साह बढता है, इसलिये कर्म करनेकी विधि सदा निर्दोष रखिए। यदि दोष न होंगे तो अवश्य सिद्धि हो सकती है। (१०) अपने शरीर, इंद्रिय, मन, वाणी, बुद्धि आदि शक्तियोंद्वारा नियमके अनुसार व्यवहार करनेका अच्छी प्रकार अभ्यास कीजिए। अनियमसे ही सर्वत्र हानि होगी। (११) सदा स्मरण रखिए कि आपकी उन्नति अपने पुरुषार्थसे ही होनी है। कोई दूसरा इसमें सहायता नहीं कर सकता। (१२) कर्म करनेके समय उससे शीघ्र लाभ उठानेका विचार न कीजिए, परंतु जितनी शक्ति आपके पास होगी उतनी उस कर्मके लिये अर्पण करके उत्तम रीतिसे उसको निभानेकी पराकाष्ठा अपनी ओरसे कीजिए। (१३) अपना स्वधर्म तथा अपने गुणकर्म-स्वभाव देखिए, और उसके अनुकूल ही कर्म कीजिए। (१४) विरोधियोंके शब्द आनंदके साथ सुनिए और अच्छा कर्म, पूर्ण विचारसे कीजिए। विरोधियोंके कारण आप अपनी शक्ति बढ सकते हैं फिर उनके शब्दोंसे आप क्रोधित होकर अपना नुकसान क्यों करते हैं? (१५) क्रोधसे आपका ही नुकसान होगा न कि जिसपर आप क्रोध कर रहे हैं उसका। क्रोधसे आयु भी कम होती है। (१६) कर्म छोटा है इस लिये असावधानता न कीजिए। क्योंकि छोटेसे प्रमादसे बहुत बुरा परिणाम होता है। (१७) कर्म इतना उत्तम कीजिए कि जैसा पहिले किसीने नहीं किया हो, परिपूर्णता अपने कर्ममें संपादन कीजिए। यही योग है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्ममें कुशलता संपादन करना ही योग है। (१८) आप यह समझिए कि जो कर्म आप कर रहे हैं वह आपके ऊपर जानेके मार्गकी एक सीढी है। कर्मसे ही मनुष्यकी उच्चतम अवस्था होती है। (१९) प्रारंभसे अंततक हास्यमुद्राके साथ प्रसन्नतापूर्वक कर्म कीजिए। (२०) सब सामग्री उत्तम प्रकारसे सिद्ध कीजिए। सामग्री तैयार करनेमें उदासीनता न रखिए क्योंकि साधन-सामग्रीकी उत्तमतापर ही आपकी कार्यसिद्धि निर्भर रहती है। (२१) मन सदा उदार, विशाल, गंभीर और परिपूर्ण रखिए। न्यूनताका संपर्क न होने दीजिए। (२२) जो कर्म आप जिस समय करेंगे उसीमें अपना मन परिपूर्णतासे लगानेका अभ्यास कीजिए। मनकी एकाग्रता आप उसीमें कीजिए। (२३) उद्देश्य निश्चित करके ही कर्मका प्रारंभ कीजिए। बिना उद्देश्य प्रयत्न करना मूर्खताका काम है। (२४) कर्म करनेमें आनंद समझिए क्योंकि कर्मसे अमृतकी प्राप्ति होती है। (२५) जो करना है उसे दिलसे कीजिए। यदि दिलसे नहीं करना है तो मत् कीजिए। (२६) जो कर्म करना आवश्यक हुआ है उसको नीचा न मानिए। सब कर्म योग्यताके साथ किये जांय तो उन्नतिके साधक ही होते हैं। कर्म करनेकी आपकी रीतिपर उनकी उच्चता निर्भर है। (२७) अपना कर्तव्य समझ कर आनंदके साथ कर्म कीजिए तथा जो करना है उस कर्मको उच्च समझ कर, परमेश्वरको प्रसन्न करनेकी बुद्धिसे कर्म करते जाइए; निःसंदेह इस प्रकार कर्म करनेसे आपकी उन्नति होगी।

धर्मके संस्कार करनेके समय, तथा व्यवहारके दूसरे कर्म करनेके समय उक्त भावना मनमें रखिए और देखिए कि आपकी अवस्था कैसी बनती है। कर्म प्रतिक्षण करना होता है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसलिये उक्त भावना प्रतिक्षण ही मनमें धारण करना आवश्यक है।

कर्मसे ही जनक आदिकोंने उत्तम सिद्धि प्राप्त की थी, फिर आप क्यों नहीं कर सकेंगे? भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजी महाराज योगेश्वर थे, उनका आदेश भी कर्म करनेके लिये ही है। सब जगत् कर्मपर खडा है, फिर आप ही कर्मके विना कैसे ठहरेंगे? सोचिए और प्रबल पुरुषार्थ करनेका निश्चय करके उठिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF.

पुरुषार्थ-प्रयत्न करनेवालेकोही
देवता सहायता करते हैं।

देवोंकी सहायतासे मनुष्यकी उन्नति होती है। देवोंका साहाय्य तबतक नहीं होता कि जबतक मनुष्य पुरुषार्थ नहीं कर सकता। देखिए, ऋग्वेदमें कहा है—

न ऋते श्रांतस्य सख्याय देवाः॥ (ऋ. ४।३३।११)

"(श्रांतस्य ऋते) परिश्रम करनेके विना (देवाः) देव (सख्याय न) मित्रता नहीं करते।" अर्थात् जो परिश्रम करेगा उसीकी समृद्धि उन्नती और वृद्धि होती है। जो पुरुषार्थ नहीं करता उसकी उन्नति नहीं हो सकती।

व्यायाम करनेसे शरीरके अवयव पुष्ट होते हैं; संयम और दमन करनेसे इंद्रियोंकी शक्ति बढती है; एकाग्रताका अभ्यास करनेसे मनका सामर्थ्य वृद्धिगत होता है; अर्थात् अपने शरीरके इंद्रियरूपी देव भी उसी समय सहाय्यता करते हैं कि जिस समय इंद्रियोंके द्वारा उत्साहपूर्ण प्रबल प्रयत्न होता है। जो सुस्तीसे बैठेगा उसक अंग वैसे सुडौल नहीं बनते कि जैसे व्यायाम करनेवालेके बनते हैं।

अग्नि, वायु, जल, सूर्य, विद्युत् आदि बाह्य जगत्के देव भी तबतक मनुष्यकी सहायता नहीं करते कि जबतक मनुष्य विशेष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुरुषार्थ नहीं करता। जबतक आग जलाकर अन्न पकानेका पुरुषार्थ मनुष्य नहीं करेगा तबतक अग्नि मनुष्यकी सहायता नहीं कर सकेगा। जबतक कूआ खोद कर, जल निकाल कर शरीर और कपडे लत्ते स्वच्छ न किये जाय तबतक जलदेवता मनुष्योंको स्वच्छता प्रदान नहीं कर सकती। इसी प्रकार अन्य देवताओंके विषयमें समझिए। अर्थात् पुरुषार्थ करनेवालेकी ही सहायता देवतागण कर सकते हैं, आलसी मनुष्यकी कोई सहायता नहीं कर सकता।

ज्ञानी, विद्वान्, योगी, महर्षि भी उन्ही मनुष्योंकी सहायता कर सकते हैं कि जो ज्ञान लेने और योगाभ्यास करनेमें तत्पर होते हैं। जो सुस्तीसे बैठेंगे उनको उठाना किसीकी शक्तिमें नहीं है। अर्थात् आत्मविश्वासपूर्वक प्रयत्नही उन्नतिका साधक है। निश्चयसे जान लीजिए कि एकमात्र यही उपाय है।

साक्षात् परब्रह्मकोभी बडे प्रयत्नके साथ और तप करनेके पश्चात् ही जगत्की धारणा करनेकी सफलता हुई है। देखिए गोपथ ब्राह्मणमें कहा है-

ॐ ब्रह्म ह वा इदमग्र आसीत्। स्वयं त्वेकमेव
तदैक्षत। महद्वै यक्षं। तदेकमेवाऽस्मि।
हन्ताहं मदेव मन्मात्रं द्वितीयं देवं निर्मम इति।
तदभ्यश्राम्यदभ्यतपत् समतपत्। तस्य
श्रान्तस्य तप्तस्य संतप्तस्य ललाटे स्नेहो
यदार्द्र्यमाजयत। तेनानन्दत्। ………… ॥ १ ॥
स भूयोऽश्राम्यद् भूयोऽतप्यत् भूय आत्मानं
समतपत्तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य सन्तप्तस्य सर्वेभ्यो
रोमगर्तेभ्यः पृथक्स्वेदधाराः प्रास्यन्दत। ताभि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रनन्दत्। तदब्रवीद्धाभिर्वा अहमिदं सर्वं धारयिष्यामि यदिदं किं च .... ॥ २ ॥

(गोपथ ब्रा. प्र. १)

"निश्चयसे यह ब्रह्म ही केवल प्रथम था। वह स्वयं एक ही था। उसने देखा कि यद्यपि मैं महान् और यजनीय हूं तथापि मैं केवल एकही हूं। इसलिये मैं अपनेसे अपने सदृश दूसरा देव निर्माण करूंगा। पश्चात् उसने श्रम किया, कष्ट सहन किये और बडा तप किया। जिससे उनके मस्तकपर पसीनेके बूंद आगये। उस पसीनसे उसको बडा आनंद हो गया। ....॥ उसने फिर बहुतही परिश्रम किया, बहुत कष्ट सहन किये और बडा भारी तप किया, जिससे उनके शरीरके रोमरोमसे अलग अलग पसीनकी धाराएँ बहने लगीं। उन धाराओंको देखकर उसे बहुत आनंद हो गया और उसने कहा कि इन धाराओंसे इस सब जगत्की मैं धारणा करूंगा...... ॥"

यद्यपि यह वर्णन बडे अलंकारसे युक्त है, तथापि उसमें उत्साहमय महान् पुरुषार्थ करनेकी प्रेरणा निःसंदेह है। श्रम करना, परिश्रमसे पुरुषार्थ करना, आनंदसे कष्ट सहन करना, तप करना, इत्यादिसेही वृद्धि होती है। उन्नति और अभ्युदय इसीसे प्राप्त होता है। जब परब्रह्मकोभी परिश्रम करना पडता है, तो अन्य छोटी शक्तिवालोंको परिश्रम करनेकी कितनी आवश्यकता है उसका विचार पाठक कर सकते हैं। यही उपदेश इस गोपथके वर्णनद्वारा ऋषिने किया है अर्थात् परिश्रम और पुरुषार्थके विना कोई सिद्धि प्राप्त नहीं होती।

'आत्मा' शब्दका अर्थ ही 'सतत पुरुषार्थ करनेवाला' है। 'अत्-सातत्यगमने' इस धातुसे आत्मा शब्द बना है। सतत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हलचल (Constant movement) करना, अर्थात् हमेशा पुरुषार्थ करना आत्माका नैसर्गिक स्वभाव है। इस निज धर्मको आत्मासे पृथक् नहीं किया जा सकता। जहाँ आत्मा होगा वहाँ पुरुषार्थ अवश्य होना चाहिए, अर्थात् आलस्य आत्माका निज धर्म नहीं है। आत्माका स्वभावधर्म सतत पुरुषार्थ करनेका उत्साह है। जो आलसी बनता है, वह अपने स्वभाव-धर्मसे गिरता है; इस कारण अधोगतिको प्राप्त होता है। इसी लिये आलस्यका स्वीकार करना किसीको भी उचित नहीं।

व्यक्तिके गुणोंका विकास, समाजके गुणोंका उत्कर्ष, राष्ट्रीय सद्‌गुणोंका अभ्युदय करना प्रत्येकका कर्तव्य है। इन कर्तव्योंको न करनेसे ही सब पातक और सब दोष होते हैं। देखिए—

ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥
(अथर्व ११।५।४)

'ब्रह्मचारी (लोकान्) सब लोगोंको अपने (श्रमेण) परिश्रमद्वारा और तपके द्वारा (पिपर्ति) संतुष्ट करता है।' अर्थात् ब्रह्मचारीको उचित है कि वह परिश्रम करके तथा कष्ट सहन करके सब जनताकी भलाईके कार्य करता रहे। परोप-कार, जनहित, समाजहित, राष्ट्रहित करना ब्रह्मचारीका एक मुख्य कर्तव्य है। यह बात इससे सिद्ध है। तथा जनहितके कार्य बडे परिश्रमसेही सिद्ध होनेवाले होते हैं, इसलिये सब प्रकारसे कष्ट सहन करनेके लियेही ब्रह्मचारियोंको सदैव तैयार रहना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न श्राम्यन्ति न विमुंचन्त्येते
वयो न पप्तू रघुया परिज्मन् ॥
(ऋ० २।२८।४)

'(न) जिस प्रकार (रघुया वयः) वेगवान् पक्षी (परिज्मन्) आकाशमें सर्वत्र निरंतर भ्रमण करते हुए (पप्तुः) दौडते हैं, उस प्रकार वे (न श्राम्यन्ति) परिश्रम करनेसे थकते भी नहीं और प्रारंभ किया हुआ कार्य बीचमें (न विमुंचन्ति) छोडतेभी नहीं ।'

इस मंत्रमें दो बातोंका उपदेश किया है- (१) ऐसी शक्ति प्राप्त करना कि जिससे अत्यंत पुरुषार्थ प्रयत्न करनेपर भी थकावट न हो सके, तथा (२) प्रारंभ किया हुआ कार्य बीचमें अधूराही छोड देनेकी बुरी आदत न रहे । कार्यसिद्धिके लिये ये दोनों बातें मुख्य हैं। तीसरी बात जो इस मंत्रद्वारा उपमासे बताई है, वह यह है कि, (३) पक्षी जिस प्रकार स्वतंत्रतापूर्वक विहार करते हुए स्वावलंबन और स्वाधीनताके साथ अपने आवश्यक पदार्थोंको पुरुषार्थसे प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार मनुष्योंको भी उचित है कि वे स्वावलंबन और स्वातंत्र्यका संरक्षण करते हुए अपने आवश्यक पदार्थोंके लिये किसी दूसरोंपर निर्भर न रहें। पक्षियोंके आचरणसे यह उपदेश मनुष्योंको लेना चाहिए। इस प्रकार सतत पुरुषार्थका माहात्म्य है। देखिए और वेदने कहा है—

न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम ।
(ऋ० २।३०।७)

'(न मा तमन्) मेरे लिये अज्ञान न हो (न श्रमन्) थकावट न हो (उत न तन्द्रन्) और आलस्य न आवे, (न वोचाम) हम गप्पेबाजी न करें।'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१) अज्ञान, (२) थकावट, निरुत्साह, (३) आलस्य और (४) बडबड करनेका स्वभाव येही चार दुर्गुण हैं कि जो मनुष्यमें अवनति लाते हैं। इसलिये सबको उचित है कि वे इन दुर्गुणोंको सदा दूर रखनेका यत्न करें। अर्थात् (१) ज्ञान, (२) उत्साह, (३) पुरुषार्थ-प्रयत्न और (४) शांतिके साथ कर्तव्य करनेका गुण प्राप्त करें और अपने अभ्युदयके मार्गमें जो जो विघ्न आ जांयगे उनको निश्चयसे दूर करें।

इस प्रकार परिश्रम करनेका वेदमें उपदेश है। हरएक मनुष्यको चाहिए कि वह इस दिव्य उपदेशको स्मरण रखे और पुरुषार्थ करके अपनी तथा राष्ट्रकी उन्नति साधन करे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सब सुखोंकी एकसाथ प्राप्ति।

(जीवन्मुक्त श्री अच्युत स्वामीजी महाराजका शिष्यके प्रति एक कथोपदेश)

(लेखक—"अभय")

शिष्य गुरुमहाराजसे वार्तालापोंसे कुछ शिक्षा ग्रहण कर रहा है। बस्तीसे मीलों दूर, चारों तरफ दूरतक विस्तृत गंगाके रेतील मैदानमें, भागीरथीकी पावनी धाराके तटपर एक काष्ठमन्दिरकी छायामें श्रीअच्युत स्वामीजी महाराज विराजमान हैं और सामने यह शिष्य उनसे आज वार्तालाप करनेका सौभाग्य पाये हुए नम्रभावसे बैठा हुआ है। अन्य कई ज्ञानप्रसंगोंके अनन्तर शिष्यने प्रश्न किया, "भगवन्! यह पञ्चकोश क्या वस्तु है?" महाराजने अन्नमय, फिर प्राणमय, फिर मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय एक एक कोशका स्वरूप तथा कार्यादिक अच्छा तरह समझा कर बतालाया और उसके अनंतर कहने लगे कि इन्हीं पञ्चकोशोंकी वह गुहा है। जिसमें कि आत्मा निहित है। उपनिषदोंमें स्थान स्थानपर आत्माको "गहा—निहित" वर्णन किया है। सो इन कोशोंकी ही गहन गुहाके अन्दर छिपा पडा हुआ ब्रह्म संसारी लोगोंको उपलब्ध नहीं होता, यद्यपि वह इतना निकट है कि उससे अधिक निकट कुछ और हो ही नहीं सकता।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता॥

तै० उ० २-१-१

तुमने यह मंत्र पढा होगा। यहांपर "गुहा" यही पञ्चकोशरूपा है। इसके 'परम व्योम' (अज्ञानरूप कारणकी गहनता) में निहित "ब्रह्म" को जो पुरुष जानता है। कैसे ब्रह्मको? सत्य,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्ञानस्वरूप और सब प्रकारसे अनन्त । यही ब्रह्मका लक्षण है "सत्यं ज्ञानमनन्तं ।" जो इस ब्रह्मको जानता है, 'सोऽश्नुते सर्वान् कामान्' वह सब कामों, भोगोंको प्राप्त करता है। "सह" एकसाथ, इकट्ठा, युगपत् । उसे एकसाथ संपूर्ण भोग प्राप्त होते हैं। कैसे? "ब्रह्मणा विपश्चिता" सर्वज्ञ ब्रह्मसे, सर्वज्ञ ब्रह्मद्वारा। जो मनुष्य उस गुहानिहित ब्रह्मको जानता है उसे ब्रह्मद्वारा ब्रह्माण्डके सब आनन्दभोग एकसाथ प्राप्त होते हैं। तुम यह समझो कि उसे सब काम, आनन्द युगपत् कैसे प्राप्त होते हैं ? यह कुछ विचारनेकी बात है। जरा सोचो कि सब सुखोंकी एकदम प्राप्ति कैसे हो सकती है। अच्छा ! तुमने कभी सयुग्वा रैक्वकी कथा सुनी होगी ! यह कथा छान्दोग्य उपनिषद् में आती है।

शिष्य—नहीं महाराज मैंने नहीं सुनी । आप सुनानेका अनुग्रह कीजिये। मैं सुनना चाहता हूं।

गुरु महाराज कुछ ठहर कर इस प्रकार सुनाने लगे—

एक समयमें ज्ञानश्रुति पौत्रायण नामका एक राजा रहता था। वह बडा सद्गुणी था। प्रतापी और दानी था, बडी श्रद्धासे ब्राह्मणों विद्वानोंकी पूजा करता और उन्हे बहुत दान देता था। हर समय गरीबोंके लिये उसके यहां पाक होता रहता था। उसने अपने राज्यमें जगह जगह ग्राम ग्राम और नगर नगर में "अवसथ" बनवा रखे थे, जहांपर कि सब कोई रहकर भोजन पा सकता था। इन कारणोंसे उस पुण्यात्मा राजाका यश सब ओर फैल रहा था और सब देव और मनुष्य उसकी हितकामना करते थ।

एक दिन रात्रिके समय राजा चाँदको सुहावनी चाँदनीमें अपने प्रासादके शिखरपर सुखसे लेटा हुआ था कि उसने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आकाशमें दो दिव्य हंसोंको उडते हुए देखा। जब वे कुछ समीप आये तो पिछला हंस अगले हंससे कहने लगा, "अरे भल्लाक्ष! भल्लाक्ष! देखता नहीं कि ज्ञानश्रुति राजाका द्युलोकसम देदीप्यमान प्रताप कैसा फैल रहा है? आगे कहां बढता है? देख कहीं तेरे पंख इस प्रतापज्योतिमें जल न जांय।" दूसरा हंस बोला- "यह ज्ञानश्रुति राजा!! तू तो इसकी ऐसी प्रशंसा करता है जैसे कोई सयुग्वा रैक्वकी प्रशंसा करे।" "यह सयुग्वा रैक्व कौन है।" भल्लाक्षने बताया, " जिस प्रकार द्यूतक्रीडामें कृत पासेद्वारा जीतनेसे शेष सब पासे उसी जीतनेवालेके हो जाते हैं, उसी प्रकार संसारके सब मनुष्य जो कुछ भी पुण्यधर्म करते हैं उस सबका फल 'सयुग्वा रैक्व' को प्राप्त होता है। इसलिये मैंने कहा कि तू तो इसकी सयुग्वा रैक्वकीसी प्रशंसा करता है। और भी जो कोई उस ज्ञानको जानता है जिसे कि रैक्व जानता है, उसको भी सबके किये पुण्योंका फल स्वतः प्राप्त हो जाता है।"

असलमें यह कोई ऋषि या देवता थे, जो:कि राजाके गुणोंसे सन्तुष्ट हुए हंसोंका रूप धारण करके आये थे कि राजाको जिज्ञासा उत्पन्न करें। क्यों कि विना जिज्ञासा हुए ज्ञान कैसे दिया जा सकता है?

हंसोंको यह वार्तालाप सुननेके वाद राजाको नींद नहीं आई। शेष रात्रि उसने इसी वातको सोचते सोचते विताई। प्रातःकाल जब वन्दीगण राजाकी स्तुति करते हुए उसे जगाने लगे तव राजा बोला कि, तुम तो मेरी ऐसी स्तुति करते हो जैसे कि कोई सयुग्वा रैक्वकी करे? सयुग्वा रैक्व कौन है? राजाने इससे हंसका कहा हुआ वाक्य ही दुहरा दिया कि जैसे कृत पाससे जीतने पर अन्य सब पासे उसीके हो जाते हैं, उसी प्रकार संसारके सब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोग जो भी कुछ पुण्य करते हैं, उस सबका फल सयुग्वा रैक्वको पहुंच जाता है ।

अब सयुग्वा रैक्वके पता लगानेकी आज्ञा हुई। देशके सब बडे बडे नगरों, ग्रामोंमें खूब खोज की गई, किंतु रैक्वका कहीं कुछ पता न चला। अंतमें वे लोग लौट आये और आकर कहा कि रैक्व कहीं नहीं मिलता। उनका वृत्तांत सुनकर उन्हें बताया "अरे, जो ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानियोंके रहनेके प्रिय स्थान हैं वहां जाकर उसे ढूंढो। नगरों, महलों, बाजारोंमें उसका पता कहाँ लगेगा? कहीं नदीके तटों, पुण्य जंगलों, पहाडकी कंदराओंमें उसकी खोज करो, तब उसका पता लगना संभव है।" फिरसे ढूंढना प्रारम्भ हुआ। ढूंढते ढूंढते एक दिन दुपहरके समय एक नदीके समीप एक गाडी (शकट) के नीचे छायामें अकेला बैठा हुआ एक तेजस्वी ब्राह्मण दिखाई दिया। आशा बंधी कि शायद यही वह ब्राह्मण होगा। पास जाकर उसने पूंछा- "भगवन्! तुम्हारा नाम सयुग्वा रैक्व तो नहीं है?" उसने कहा- "मेरा नाम सयुग्वा रैक्व है।" ढूंढनेवालों ने शीघ्र जाकर यह शुभ संवाद सुनाया कि अमुक अमुक स्थानपर रैक्व मिल गया है।

अब राजा ६०० गौवें, एक कण्ठहार और रथ साथ लेकर सयुग्वा रैक्व के पास पहुंचा और उन्हें निवेदन करता हुआ बोला "रैक्व? यह लो ६०० गौवें, यह कण्ठहार और यह रथ। भगवान्? मुझे अनुग्रह कर, इस देवता का उपदेश करो जिसकी कि तुम उपासना करते हो। मैं आपका शिष्य होकर उपस्थित हूं।" रैक्वने कहा- "जा रे शूद्र, ले जा अपनी गौवें और धन अपने ही साथ। हमें यह नहीं चाहिये"। राजा बेचारा लौट आया। फिर दुबारा वह कुछ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विचार कर अपने साथ १००० गौवें तथा हार और रथके साथ अपनी पुत्री को भी उसके गार्हस्थ्य के लिये लेकर आया और वे ग्राम भी जहाँ कि वह बैठा था उसको दहेज की रूपमें अर्पण कर दिये। वे ग्राम उस समय से "रैक्वपर्ण" नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं।

अस्तु, अंतमें उसने राजाको संवर्ग विद्याका उपदेश किया है, ब्रह्मज्ञान दिया है। अर्थात् उस देवताका ज्ञान कराया है, जिसकी कि वह स्वयं उपासना करता था और जिसका कि अनंत फल यह है कि संसार भरके सब मनुष्य जो कुछ भी पुण्य करते हैं उस सबका फल उस (ज्ञानी) को स्वतः पहुंच जाता है।

(इस प्रकार यह कथा समाप्त कर महाराज इसे समझाने लगे)

यहां पहिले देखो कि पुण्योंका फल क्या होता है? सुख, आनंद। सब पुण्योंका फल यही है। किंतु यह सुख क्या वस्तु है? सुख को देखो, सुख क्या है? तुम ही बताओ सुख क्या है?

शिष्यने सुखका कुछ (जो कुछ बन पडा) लक्षण करनेका यत्न किया और तदनंतर इच्छा प्रकट की कि अब आप मुझे ठीक ठीक समझाइये कि सुख क्या है?

महाराज बोले —देखो, "इच्छानिवृत्तिका ही नाम सुख है।" सुख और कुछ वस्तु नहीं है। जब हमारी कोई इच्छा, कामना निवृत्त होती है तभी हमें सुखका अनुभव होता है। वस्तुतः यह इच्छाओं कामनाओंका होना ही है, जो कि हमें सुख नहीं पाने देता। क्योंकि सुखका अक्षय भण्डार तो हमारे अंदर-आत्मामें-विद्यमान है, यह कहीं भी बाहर नहीं है। परंतु इस आंतर सुख का भी अनुभव हमें तभी होता है जब कि हमारी इच्छा कामना शांत होती है। मनुष्य अज्ञानसे समझता यह है कि सुख उस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाह्य वस्तु का है जिसकी कि प्राप्तिसे उसकी कामना पूर्ण हुई है। देखो, तुमने अभी भोजन किया है तुम इस समय तृप्त हो, तुम्हारा पेट भरा हुआ है, अब तुम्हें यदि और भोजन के लिये कहा जाय तो तुम कभी स्वीकार न करोगे ....जबर्दस्ती भोजन खिलाया जाय तो इस भोजनसे सुखके स्थान पर तुम्हें अब कष्ट होगा। यदि समुचय भोजनमें ही आनंद होता तो अब पेट भरने पर भी भोजनसे आनन्द ही होना चाहिये था। किन्तु नहीं, बाहिर कहीं भी सुख नहीं है। सदा इच्छा निवृत्ति से ही अपना आन्तर सुख मनुष्य को अनुभव होता है—सुख प्राप्त होता है। भोजन से आनन्द हुआ, क्यों कि इससे बुभुक्षा (खानेकी इच्छा) निवृत्त हुई और वृत्ति अन्तर्मुख हो गई। मनुष्य बाह्य वस्तुओं को सुख का साधन समझता हुआ बाहर भटकता फिरता है। जब कभी कोई इच्छा पूर्ण होती, कामना शान्त होती है तो मन स्वस्थावस्था को प्राप्त हो अन्तर्मुख होता है और वहां अपने परमानंद का आस्वादन करता है। किन्तु यह उसे केवल क्षणभर के लिये है जबतक कि दूसरी इच्छा उत्पन्न हो कर उसे सताने नहीं लगती। इच्छा उत्पन्न होतेही फिर मन बाहर भागता है और व्याकुल होता है। यह कामनाही है जो वृत्तिको बहिर्मुख कर प्राणिको अपनाही अपार आनन्द नहीं पाने देती। धन्य हैं वे पुरुष जो कि, निरन्तर कामनाहीन स्वस्थावस्थामें रहकर अन्तर्मुख हो ब्रह्मानन्दमें लीन होते हैं। यही ब्रह्मानन्द है। यही ब्रह्मकी प्राप्ति है। क्षणक्षणभरके लिये सभी लोग प्रतिदिन इच्छानिवृत्त (सुख) होनेपर उस परब्रह्म को प्राप्त करते हैं। किन्तु वे इसे जानते नहीं। वहीं अनन्त ब्रह्म छिप रहा है। इसे कहते हैं— "तिनके की ओटमें पहाड"। किंतु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिस आप्तकामकी सब कामनायें शान्त हैं, वही वास्तविक निरन्तर ब्रह्मानन्दको पाता है, उसे ही ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। जितनी कामनाएं शान्त हैं, वह उतनाही आनन्दपूर्ण है, वह उतनाही ब्रह्मके समीप है। नवजात बालकको देखो, उसकी कैसी ब्रह्ममयी अवस्था होती है, वह सदा आनन्दमें लीन रहता है। क्योंकि उसे कोई इच्छा नहीं ......उसे कोई कामना नहीं सताती। उसका मुख गुलाबके फूलसा खिला हुआ, आनन्दमग्न सदा खिल खिलाता हुआ वह बिछानेपर पडा रहता है। या तो जब उसे भूक लगे, या बिस्तरपर कुछ उसे चुभे, इन दो अवस्थाओंको छोड कर (इन दो अवस्थाओंमें तो वह अवश्य दुःख प्रगट करता है, किन्तु जहां उसकी केवल मात्र यह दो इच्छाएं निवृत्त हुई) शेष २४ घन्टे वह बडे आनन्दकी अवस्थामें प्राप्त हुआ रहता है...उसे कोई इच्छा नहीं...कोई अभिलाषा नहीं...कोई चिन्ता नहीं। वस्तुतः बालकको स्वभावसेही ब्रह्मप्राप्ति रहती है। किन्तु बडा होकर ज्यों ज्यों उसकी इच्छाएं बढती हैं वह संसारमें फंसता जाता है, चिन्ताग्रस्त रहने लगता है, उसकी वह सहज-प्राप्त ब्राह्म अवस्था सर्वथा नष्ट हो जाती है। उसकी स्मृति तक नहीं रहती। क्षणक्षणमें इच्छाएं पैदा होकर उसे कभी भी अन्तर्मुख नहीं होने देतीं। जहां अन्तर्मुखता नहीं वहां सुख नहीं। जहां कामना शान्त हुई वहीं सब सुख हैं। बस यह अच्छी तरह समझकर देख लो कि कामनाओंका निवृत्त होनाही सुखका भोग है। जब मनुष्यकी जिस विषयकी इच्छा निवृत्त हो रही होती है, तब उसे उस विषयका भोग प्राप्त हो रहा होता है। जब तुम्हारी स्वादिष्ट भोजनकी इच्छा वैसा भोजन पानेसे निवृत्त हो रही होती है, तब तुम्हें स्वादु भोजनका भोग प्राप्त हो रहा होता है। जब तुम्हारी कोमल स्पर्शकी इच्छा निवृत्त हो रही होती है, तब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुम्हें उसका (उस स्पर्शका) भोग प्राप्त हो रहा होता है। जिस विषय की इच्छानिवृत्ति उसी विषयके भोगकी प्राप्ति। तो देखो कि जिसकी सभी विषयोंकी इच्छाएं निवृत्त हैं, उसे सब विषयोंका भोग एकदम प्राप्त है कि नहीं, समझे? यह है युगपत् सब कामोंकी प्राप्ति। देखो एक बडा भारी राजा है, जिसे कि हो सकता है, कि सब प्रकारके भोग प्राप्त हों। मधुर भोजन, मनोहर संगीतश्रवण, सुखस्पर्श, सुन्दर रूप आदि सब इंद्रियके भोग तथा सब काम उसे प्राप्त हों। संसारके सभी भोगोंको वह भोग सकता हो, किन्तु उन सब भोगोंको वह युगपत् नहीं भोग सकता......उसमें ऐसा सामर्थ्य नहीं है। जिस समय वह स्वादिष्ट खाद्यका भोग भोग रहा है उस समय उसे सुन्दर गीतश्रवणका भोग प्राप्त नहीं है...उसे उस समय अन्य कोई भी भोग नहीं है। वह इसीमें सब दुख सुखका भेद छिपा है। इस ब्रह्माण्डमें भोगोंकी गणना नहीं है, भोग अनन्त अनन्त प्रकारके हैं। उस विषयी राजाको इनमेंका जब एक प्राप्त है तब उसे शेष अनन्तों भोग प्राप्त नहीं हैं, जिनकी कि उसे कामना है। सब भोगोंको भोगनेका सामर्थ्य रखता हुआ भी वह 'ईश्वर' कहलानेवाला बेचारा राजा एक समयमें एकही भोगका भोग पाता है, दूसरोंका भोग पानेके लिये दुखी होता है। दूसरी तरफ रैक्व जैसे पुरुष हैं जिनका कि भोगका आनन्द सृष्टिकी परिमित वस्तुओंपर निर्भर नहीं है। वह है जो बादशाहोंके बादशाहकी तरह ब्रह्माण्डके समग्र भोगोंको युगपत् भोगनेका सामर्थ्य रखता है और भोगता है, क्योंकि वह आप्तकाम है। वह विश्वंभरके सम्पूर्ण विषयोंसे परमा निवृत्ति अनुभव करता हुआ आनन्दमग्न है, उसे कुछ कामना नहीं है। यह भी क्यों है? क्योंकि उसने सच्चिदानन्द-स्वरूपको देख लिया है, उसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपने अन्दर देखकर अब वह बाह्य किस सृष्ट वस्तुका सुख पानेके लिये कामना करे? उसे वह अपार आनन्द प्राप्त है, जिसमें कि ब्रह्माण्डके ये क्षुद्रमति क्षुद्र आनन्द सचमुच एक परम अणुके भी बराबर नहीं हैं। इसलिये कहा है कि "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा"। सम्पूर्ण जगत्के सब प्राणी जो कुछभी अपने समस्त पुण्योंका सुख प्राप्त करते हैं वह सब मिलकर उसके ब्रह्मानन्दमें इस प्रकार समा जाता है जिस प्रकार कि अगाध पारावार (समुद्र) में दो चार सौ बूंदे मिलकर, ओह, वह अनंत पारावार !!! उसमें तो बस, मग्न होतेही बनता है और तब यह संसार तथा इसकी ये महान् वस्तुएँ कहां हैं?

यह उपदेश सुननेके बादसे शिष्यके चित्तमें यदि कोई महत्वाकाङ्क्षा है तो यही है कि, वह जहाँ रहे उसके स्थानकी तरफ निर्देश करते हुए ज्ञानी लोग यह कहें कि यहाँ पर वह पुरुष रहता है, जिसे कि संसारके सब मनुष्य जो कुछ पुण्य करते हैं, उस सबका फल प्राप्त होता है—यहाँ पर वह पुरुष रहता है जो ब्रह्माण्डके सम्पूर्ण भोगोंको युगपत् प्राप्त करता है—यहाँ पर वह पुरुष रहता है जिसने कि उस एकमात्र सर्वोपरि वस्तुको पा लिया है, जिसे कि लाभ कर फिर विश्वमें किसी दूसरी वस्तुको पानेकी कामना नहीं रहती, इच्छा नहीं होती। यह उसकी महत्त्वाकांक्षा इस जन्ममें पूरी हो या कई जन्मोंमें।

व्यक्तिमें शान्ति !
राष्ट्रमें शान्ति !!
जगत्में शान्ति !!!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयसूची ।

वास्तविक बात २

(१) शिवसंकल्प ३

(२) मनकी विलक्षण शक्ति २१

(३) मनका वेग ३१

(४) स्वप्नका अनुभव ४६

(५) अपने प्रभावका गौरव ६७

(६) पुरुषार्थके लिये उत्साहमय प्रेरणा ७०

(७) शत्रु कौन है? ७५

(८) विजय प्राप्त करनेकी कला ८५

(९) कर्मका तत्त्व ९४

(१०) पुरुषार्थ करनेवालेकोही देवता सहायता करते हैं १०४

(११) सब सुखोंकी एकसाथ प्राप्ति ११०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आगम-निबंध-माला ।

वेद अनंत विद्याओंका समुद्र है। इस वेदसमुद्रका मंथन करनेसे अनेक 'ज्ञानरत्न' प्राप्त होते हैं, इन रत्नोंकी यह माला है।

१ वैदिक-राज्यपद्धति।	मूल्य	।-)	डा. व्य.	-)
२ मानवी आयुष्य।	,,	।)	,,	-)
३ वैदिक सभ्यता।	,,	॥।)	,,	=)
४ वैदिक चिकित्साशास्त्र	,,	।=)	,,	=)
५ वैदिक स्वराज्यकी महिमा।	,,	॥)	,,	=)
६ वैदिक सर्पविद्या।	,,	॥)	,,	=)
७ मृत्युको दूर करनेका उपाय	,,	॥)	,,	=)
८ वेदमें चर्खा।	,,	॥)	,,	=)
९ शिवसंकल्पका विजय।	,,	॥)	,,	=)
१० वैदिक धर्मकी विशेषता	,,	॥)	,,	=)
११ तर्कसे वेदका अर्थ।	,,	॥)	,,	=)
१२ वेदमें रोगजंतुशास्त्र।	,,	≡)	,,	-)
१३ ब्रह्मचर्यका विघ्न।	,,	=)	,,	-)
१४ वेदमें लोहेके कारखाने।	,,	।-)	,,	-)
१५ वेदमें कृषिविद्या।	,,	≡)	,,	-)
१६ वैदिक जलविद्या।	,,	=)	,,	-)
१७ आत्मशक्तिका विकास।	,,	।-)	,,	-)
१८ इन्द्रशक्तिका विकास।	,,	॥)	,,	=)

मंत्री- स्वाध्याय-मंडल, औंध. (जि० सातारा)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

योगसाधनमाला ।

संध्योपासना ।

योगकी दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इसमें लिखी है । मूल्य १॥) डा. व्य. ।=)

वैदिक प्राणविद्या ।

प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार मनकी भावना रखनी चाहिये उसका वर्णन इसमें है । मूल्य ॥) डा. व्य. =)

ब्रह्मचर्य ।

इस सचित्र पुस्तकमें अथर्ववेदीय 'ब्रह्मचर्य-सूक्त' का विवरण है और ब्रह्मचर्यसाधनके और वीर्यरक्षणके अनुभवसिद्ध उपाय बताये हैं । मू० १) डा. व्य. ।=)

योगसाधनकी तैयारी ।

योगविषयक अत्यंत आवश्यक प्रारंभिक बातोंका इसमें संग्रह है । मूल्य ॥।) डा. व्य. ।-)

योगके आसन ।

योगकी आरोग्यवर्धक व्यायामपद्धति । मू० २) डा. व्य. ।≡)
आसनचित्रपट मूल्य ≡) डा. व्य. -)

सूर्यभेदन-व्यायाम ।

सचित्र बलवर्धक योगके व्यायाम । मू० ॥) डा. व्य. =)

मुद्रक और प्रकाशक- श्री० दा० सातवळेकर
भारत-मुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा.)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ॐ

इन्द्रशक्तिका विकास।

लेखक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडळ, औंध, (जि० सातारा.)

मूल्य ।-)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आगम-निबंधमाला । ग्रंथ १९

ॐ

अपने अंदर

इन्द्रशक्तिका विकास ।

लेखक और प्रकाशक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि.सातारा)

तृतीय वार

संवत् १९९१, शक १८५६, सन १९३४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इंद्र-शक्ति !

मनुष्यके अंदर तथा अन्य प्राणियोंके अन्दर इतनाही नहीं परंतु संसारके संपूर्ण पदार्थोंके अन्दर इन्द्रशक्ति रहती ही है। अन्य प्राणी इसका विकास अपने अन्दर नहीं कर सकते और मनुष्य अनुष्ठानादिद्वारा अपनी आन्तरिक इन्द्रशक्तिका विकास कर सकते हैं। अपनी इस शक्तिका विकास किस रीतिसे हो सकता है, इसका विचार इस पुस्तकमें किया है। वेदकी यह विद्या गूढ है, परंतु जितनी समझमें आगई उतनी यहां रखी है। आशा है कि पाठक इसकी अधिक खोज करके और साथ साथ अनुष्ठानद्वारा अनुभव देखके इस विद्याको परिपूर्ण बनानेका श्रेय संपादन करेंगे।

१ वैशाख
संवत् १९९१

निवेदक,
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मंडल,
औंध, (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
भारत-मुद्रणालय, स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ॐ

इंद्रशक्तिका विकास।

(१) मनुष्यजीवनका उद्देश्य।

मनुष्यका जीवन इसलिये है कि, वह अपने अन्दरकी दैवी शक्तिका विकास करे। प्रत्येक मनुष्यके अंदर बीजरूपसे अनेक दैवी शक्तियां हैं और प्रत्येक शक्ति बीज रूप होनेके कारण उसका विकास संभवनीय है। हरएक बीज, बीज होनेके कारण ही, आंतरिक शक्तियोंके विकासके लिये ही निर्मित हुवा है। अनुकूल भूमि और योग्य जलवायुकी उत्तम परिस्थिति प्राप्त होतेही उस बीजका विकास होनेका प्रारंभ होता है। स्वभावधर्मसे ही इस प्रकार हरएक बीज विकसित होने लगता है, परंतु कई बीज भूननेवालेके हाथमें चले जाते हैं और भूने जाते हैं। इस प्रकार उनके विकासका मार्ग बंद हो जाता है। परंतु कई बीज उत्तम मालीके पास पहुंचनेके कारण योग्य खाद आदिके विशेष प्रबंधसे इतने उन्नत और विकसित होते हैं कि, उनको देखकर देखनेवालेके मनमें बडाही आश्चर्ययुक्त संतोष उत्पन्न होता है!!!

येही तीन अवस्थाएं मनुष्यके लिये भी होती हैं। हरएक मनुष्यमें दैवी शक्तियोंके बीज हैं। कई मनुष्य योग्य शिक्षाके अभावके कारण यथाकथं-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चित् स्वयमेव बढते हैं। कई लोगों की शक्तियां गुलामी की भयानक आगसे भूनी जाती हैं, और उनके विकासमें प्रतिबंध होता है। परंतु कई मनुष्य योग्य गुरुके पास योग्य राजाके सुयोग्य शिक्षाप्रबंधमें रहनेके कारण विशेष विकसित होते हैं। इस भूमंडलके अनेक देशोंमें जो जनता विभक्त हुई है, उसमें ये त्रिविध जन पाठकोंको दिखाई देंगे। तात्पर्य यह है कि मनुष्यके विकासके लिये उत्तम शिक्षाप्रबंधकी अत्यंत आवश्यकता है। इसीलिये कहा है कि—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ॥

कठ. ३।४।१

" उठो, जागो और श्रेष्ठोंको प्राप्त करके उत्तम बोध प्राप्त करो। " अर्थात् सुयोग्य गुरुसे ही उत्तम ज्ञान प्राप्त करके सावधानताके साथ प्रयत्न करनेसे शक्तिका विकास संभव है।

(२) अपने अंदरकी शक्तियाँ।

पाठक जानते ही हैं कि अपने अंदर अनेक शक्तियां हैं। आंखमें सूर्यशक्ति है, मुखमें आग्नेयी शक्ति है, नाकमें आश्विनी शक्ति है, हृदयमें इंद्रशक्ति है, फेंफडोंमें रौद्री शक्ति है, यहां ही मारुत शक्ति है, उसी प्रकार हरएक अवयवमें एक एक देवताकी शक्ति बीजरूप अथवा अंशरूप है। जिस प्रकार आगकी एक चिनगारी होती है, उसी प्रकार सूर्यादि विशाल देवताओंकी एक एक चिनगारी हमारे देहमें अपने योग्य स्थानमें रही है। इस चिनागारीको प्रदीप्त करना ही उस शक्तिका विकास है।

बीजरूप शक्तियां अनेक हैं और हरएक शक्तिका विकास करनेके मार्ग भी भिन्न ही हैं। एक एक शक्तिके विकासके विषयमें जो अनंत बोध वेदमें आगये हैं, उनका विचार करनेके लिये बडे बडे ग्रंथ लिखनेकी आवश्यकता है। यह विषय योगका है और वास्तवमें देखा जाय, तो " योग-शास्त्र शक्तिविकासका ही एक विशेष शास्त्र है। " मनुष्यजीवनकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उन्नतिके साथ इसीलिये योगका घनिष्ठ संबंध है। योग, संयोग, नियोग, वियोग, अधियोग, सुयोग, प्रयोग, उद्योग, अभियोग, उपयोग, अतियोग आदि जो शब्द प्रयुक्त होते हैं, वे वास्तवमें योगके ही रूप हैं; परंतु उनके अर्थ विभिन्न हुए हैं, इसलिये अब उनका संबंध योगके साथ स्पष्ट रूपसे दिखाई नहीं देता !! तथापि उनके मूल भाव देखनेपर उनका संबंध योगके साथ ही विदित हो सकता है। अस्तु।

तात्पर्य यह है कि "मनुष्यकी शक्ति विकसित करनेका नाम योग है," और हरएक शक्ति विकसित करनेके प्रयोग भिन्न भिन्न हैं, यही बात यहां देखनी और ध्यानमें धारण करनी चाहिए।

(३) अपने अंदरकी इन्द्रशक्ति।

जिस प्रकार अपने अंदर विविध देवताओंकी अंशरूप शक्तियां हैं, उसी प्रकार "देवराज इंद्रकी अंशरूप शक्ति भी हमारे अंदर विद्यमान है।" बाह्य जगत्में सब देवताएं गौण हैं और इंद्र मुख्य है; इसी लिये उसको देवराट् अथवा "देवराज" कहते हैं। ठीक इसी प्रकार अपने शरीरमें भी विविध देवताओंके अंश हैं और उनका मुख्य अधिष्ठाता इंद्रका अंश है। दोनों स्थानोंमें इंद्रका मुख्य होना एक जैसा ही है।

इसी इंद्रकी शक्ति इंद्रियोंमें आकर कार्य करती है। जिस प्रकार राजाकी शक्ति ओहदेदारोंमें आकर संपूर्ण ओहदेदारोंका कार्य करती है; ठीक इसी प्रकार देवराज इंद्रकी शक्ति इंद्रियोंमें आकर कार्य कर रही है; इसी लिये इन अवयवोंको "इंद्रिय" कहते हैं। इंद्रिय शब्दका अर्थही यह है। देखिये—

इंद्रियमिंद्रलिंगमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिंद्रदत्तमिति वा॥

पाणिनीय अष्टा. ५।२।९३

"(१) जो इंद्रका चिह्न है, (२) जो इंद्रसे दृष्ट है, (३) जो इंद्रने उत्पन्न किया है, (४) इंद्र जिसका सेवन करता है, (५) इंद्रने जो दिया है, वह इंद्रिय है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हमारी इंद्रियां ही अंदरकी इंद्रशक्तिको जाननेके चिह्न हैं, इन चिह्नोंसे ही सूचित होता है कि इनके मध्यस्थानमें इंद्र महाराज बैठे हैं। जो इन्द्र अंदर बैठा है, वह इन इंद्रियोंके सुराखोंसे अपने अभीष्ट विषयको देखता है। अपने अभीष्ट विषयको देखने और प्राप्त करनेके लिये ही उस इंद्रने ये सुराख अथवा इंद्रिय बनाये हैं। इन इंद्रियोंसे ही वह सेवा लेता है। तात्पर्य इंद्रकी दी हुई शक्तिही यहां है। ये भगवान् पाणिनी महामुनिके दिये हुए अर्थ देखने और विचार करने योग्य हैं। इनसे निश्चित हो जाता है कि, मध्यमें इंद्र है और उसकी शक्तियां चारों ओर फैलकर इंद्रियोंमें कार्य कर रही हैं—

आंख

नाक कान

मुख **इंद्र** जिव्हा
हाथ त्वक्

शिस्न गुदा

पांव

देवराज इंद्रके चारों ओर इस प्रकार अन्य देव अर्थात् इंद्रियां रहतीं हैं। इसीलिये "वेद" और उपनिषदोंमें इंद्रियोंके लिये "देव" शब्द प्रयुक्त होता है, क्योंकि देवोंका राजा अंदर है और अन्य देव बाहिर हैं। अस्तु। इन इंद्रियोंसे आंतरिक इंद्रका ज्ञान होता है। इस इंद्रकी जो शक्ति, अथवा सच कहा जाय, तो अंशरूप शक्ति, जो हमारे अंदर है, उसका विकास करना चाहिये। इसका विकास करनेके लिये ही यह मनुष्यजन्म है। यदि इस जन्ममें मनुष्यने इस बीजरूप शक्तिका विकास करनेका यत्न किया, तो इस जन्मका सार्थक हुआ। नहीं तो जन्म व्यर्थ गया, ऐसा ही समझना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(४) इन्द्र और स्वर्ग.

इंद्र स्वर्गमें रहता है, संपूर्ण देव उसके साथ रहते हैं, यह बात सब लोग जानते हैं। यदि इंद्रियां ही देवगण हैं और देवोंका राजा उनके बीचमें हृदयमें निवास करता है, तो यह निश्चित ही है, कि सच्चा स्वर्गधाम हमारे हृदयमें ही है। जहां इंद्र है, वहां ही स्वर्ग है। हमारे हृदयमें इंद्र है, इसलिये हृदयके अंदरही स्वर्गधाम है। इसकी सिद्धता करनेके लिये प्रमाणांतर देनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है, उक्त बातोंका विचार करनेसे ही इसकी सिद्धता होती है। वेदमें भी यह बात कही है—

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ॥
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥

अथर्व० १०।२।३१

"आठ चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त यह अयोध्या देवोंकी नगरी है। उसमें जो हिरण्मय कोश है, वही तेजसे परिपूर्ण स्वर्ग है।"

दो आंख, दो नाक, दो कान, एक मुख, शिस्न और गुदा ये नौ द्वार इस "शरीररूपी अयोध्या नगरी" के हैं। इस नगरीमें हृदयस्थानमें एक कोश है, जो तेजसे परिपूर्ण स्वर्ग है।

इस शरीरमें पूर्वोक्त नौ स्थानोंमें इंद्रिय शक्तियां हैं। इसको "इंद्रिय–संस्थान" कहते हैं। मंत्र में जो आठ चक्रोंका वर्णन है, वह "मज्जा–तंतु–संस्थान" के आठ केंद्र हैं। जिस प्रकार एक एक इंद्रियमें अद्भुत शक्ति विद्यमान है, उसी प्रकार हरएक मज्जाकेंद्रमें विलक्षण शक्ति है! हरएक स्थानकी शक्ति विकसित करनेके उपदेश वेदमें हैं, इनकाही विचार इस लेखमें करना है। चूंकि संपूर्ण केंद्रोंमें एक ही इंद्रशक्ति पहुंचती है और वहां का कार्य करती है, इसलिये एक इंद्रशक्तिका विकास होनेसे, उसका परिणाम संपूर्ण शक्तिकेन्द्रोंपर होता है। इससे पाठकोंके मनमें यह बात आ चुकी होगी, कि इंद्रशक्तिका विकास करना मुख्य है और इसका ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विचार मुख्यतया इस लेखमें करना है। तथापि जिन लोगोंको विशेष शक्तिकेंद्रोंका ही विकास अभीष्ट है, वे अपने अभीष्ट केंद्रका ही विकास कर सकते हैं। इस बातका विचार किसी अन्य लेखमें किया जायगा। यहां इस मुख्य इंद्र शक्तिके विकासका ही विचार करना है।

(५) इंद्रके गुणधर्म।

अपने अंदर हृदयस्थानमें जो चालक इंद्रशक्ति है, उसके गुणधर्म देखने चाहिये। उस शक्तिके गुणधर्म जाननेके विना उसका विकास करना अथवा विकासका प्रयत्न करना भी अशक्य है। इंद्रदेवताके सूक्तोंमें इसी के गुणधर्म वर्णन किये हैं, और उनका संक्षेपसे वर्णन यास्काचार्यजीने अपने निरुक्तमें किया है। यही निरुक्तका संक्षिप्त वर्णन यहां देखिये—

इन्द्र इरां दृणातीति वेरां ददातीति वेरां दधातीति वेरां दारयत इति वेरां धारयत इति वेन्दवे द्रवतीति वेन्दौ रमत इति वेन्धे भूतानीति वा। तद्यदेनं प्राणैः समैन्धंस्तदिन्द्रस्येन्द्रत्वमिति विज्ञायते। इदं करणादित्याग्रयणः। इदंदर्शनादित्यौपमन्यवः। इन्दते वैश्वकर्मण, इञ्छत्रूणां दारयिता वा द्रावयिता वा दारयिता वा यज्वनाम्॥

निरुक्त ४।१।८

" इरा " शब्दके अर्थ " (१) भूमि, (२) वाणी, (३) जल, (४) अन्न, (५) आनंद, सुख, " ये हैं। इन अर्थोंको लेकर उक्त वचनका अर्थ कीजिये और देखिये कि, इसके कैसे अर्थ बनते हैं—

(१) इरां दृणाति इति इन्द्रः।

भूमिका विदारण करनेवाला इंद्र है। जिस समय बीज भूमिमें बोते हैं, उस समय जलके साथ संबंध होनेसे बीजको तथा भूमिको फाडकर अंकुर ऊपर आता है। इतना कोमल अंकुर होते हुए भी वह कठिण भूमिको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फाडकर ऊपर उठता है, यह जिस शक्तिसे होता है वह " इन्द्रशक्ति " है। हरएक बीजमें इन्द्रशक्ति रहती है। यह इंद्रशक्ति बीजमें ही कैद या बंद रहना नहीं चाहती। अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होते ही कठिनसे कठिन भूमिको फाडकर और सब प्रतिबंधोंको तोडकर ऊपर उठती है!! यही इंद्रशक्तिका विकास है। जिस पिता वृक्षका वह बीज होता है, उस पिताके समान अथवा उससे भी अधिक विस्तृत बननेकी इच्छाशक्ति प्रत्येक बीजके इंद्रके अंदर है, और इसलिये वह भूमिके प्रतिबंधको तोडकर ऊपर उठनेका प्रयत्न करती है।

(२) इरां दारयत इति इंद्रः।

भूमिको फाडनेवाला इंद्र होता है। इसका भी तात्पर्य ऊपर लिखा ही है।

(३) इरां ददाति, दधाति, धारयते वा स इन्द्रः।

जो जल देता है और धारण करता है, वह इंद्र है। मेघस्थानीय विद्युत् इस प्रसंगमें इंद्र है। मेघमें जल उत्पन्न करना, मेघोंसे जलकी वृष्टि करना आदि कार्य इस बिजुलीके हैं।

(४) इंदवे द्रवति, इन्दौ रमते इति इंद्रः।

इंदुके लिये जल छोडता है और इन्दुमें रमता है, वह इंद्र है। " इंदु " का अर्थ है— " सोम, चंद्र, रस, बिंदु "। यहां रस अभीष्ट है। वनस्पति-योंका रस इंदु है। वह वनस्पतिके रसके लिये स्रवता है और वनस्पतिके रसमें रमता है, यह कार्य इंद्रका है। वनस्पतिके रसमें इंद्रशक्ति रमती है, यह बात यहां पाठक ध्यानमें धारण करें, क्योंकि इंद्रशक्तिके विकासके अनुष्ठानमें इस बातका विशेष संबंध आनेवाला है। (इसी लेखमें आगे " वारुणी-पान " का प्रयोग देखिये।)

(५) इन्धे भूतानि इति इन्द्रः।

भूतोंको प्रदीप्त करता है, वह इंद्र है। पदार्थमात्रका रूप इसी इंद्र-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शक्तिके कारण है। विशेषतः पदार्थका तेज इन्द्रके कारण ही है। सूर्यचंद्रादिकोंका तेज, वनस्पतियोंका जीवन, पशुपक्षी और मनुष्योंमें जो जीवनकी तेजस्विता है, जो मरनेके बाद नहीं होती, वह इंद्रका ही तेज है। यही " जीवनकी बिजुली " है, जो प्राणियों और वृक्षोंमें दिखाई देती है।

(६) प्राणैः समैन्धंस्तदिन्द्रस्येंद्रत्वम् ।

प्राणोंसे जो तेज उत्पन्न होता है, अथवा प्राणोंसे जो बढता है, वही इंद्रत्व है। पाठक यहां इस बातका स्मरण रखें, कि इंद्रशक्तिका विकास करनेके अनुष्ठानमें प्राणायामका विशेष महत्त्व है, क्योंकि प्राणोंसे ही इंद्रकी दीप्ति बढानी है।

(७) इदं करणात् इन्द्रः ।

यह बनाता है, इसलिये इसको इन्द्र कहते हैं। इस शरीरको करनेवाला तथा इस शरीरमें शक्तिकी न्यूनाधिकता सिद्ध करनेवाला इंद्र है। इसी लिये इन्द्रशक्तिका विकास करनेसे मनुष्यकी शक्ति बहुत उन्नत होती है।

(८) इदं दर्शनात् इन्द्रः ।

इंद्र इसको देखता है। दर्शक और द्रष्टा इन्द्र है। यहां देखनेवाला तथा करने और बनानेवाला इंद्र है।

(९) इंदति ऐश्वर्यवान् भवतीति इंद्रः ।

ऐश्वर्यसे युक्त होता है, वह इंद्र है। प्रभुत्व स्वामित्व आदि भाव इस अर्थमें हैं। देवोंका यह राजा है, यह बात पूर्व स्थलमें बताई गई है,इसलिये इस अर्थके विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं है।

(१०) इन् शत्रूणां दारयिता वा द्रावयिता वा इन्द्रः ।

शत्रुओंका विदारण अथवा नाश करनेवाला इंद्र है। अर्थात् संपूर्ण विरोधियोंको दूर भगानेवाला यह है। इसका इतना सामर्थ्य है। शरीरमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रोग, व्याधी, बुरे विचार, आदि अनेक शत्रु हैं। उनको दूर करनेकी शक्ति इस इंद्रमें है। इसीलिये इस इद्र की शक्ति विकसित करनी चाहिये, जिससे संपूर्ण आपत्तियोंका नाश होगा और परम आनंद प्राप्त होगा। यही विकास का महत्त्व है।

पूर्वोक्त व्युत्पत्तियोंका आध्यात्मिक भाव ही इस लेखमें अभीष्ट है, इसलिये उतना ही यहां दिया है। पूर्वोक्त व्युत्पत्तियोंको परमात्मविषयक तथा अन्य विषयोंके अर्थ यहां अनावश्यक होनेके कारण उनका यहां विचार नहीं दिया। उनको पाठक स्वयं जान सकते हैं। इन अर्थोंके अतिरिक्त इंद्र शब्दके निम्न अर्थ भी यहां देखने चाहियें—

(१) स्तनयित्नुरेवेन्द्रः। बृ. उ. ३।९।३
(२) इन्धं सतमिंद्र इत्याचक्षते। बृ. उ. ४।२।२
(३) इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा। प्र. उ. २।४
(४) तमिदंद्रं संतमिंद्रमित्याचक्षते। ऐ. उ. ३।१४

(१) मेघोंमें गर्जना करनेवाली विद्युत् ही इंद्र है, (२) प्रदीप्त होता है उसको इंद्र कहते हैं, (३) तेजसे युक्त इंद्र प्राण ही है। (४) इस शरीरमें छिद्र करनेके कारण इसको इंद्र कहते हैं।

ये सब अर्थ इंद्रकी विलक्षण शक्ति बता रहे हैं। वनस्पतिके रसमें, मेघोंमे, सूर्यचंद्रमें, तथा प्राणियोंमें इस प्रकार इंद्रशक्ति है। इसका अनुभव हरएकको करना चाहिये। इंद्रशक्तिके विकास के लिये इसके विज्ञानकी अत्यंत आवश्यकता है। इस प्रकार इंद्रके गुणधर्म जाननेके पश्चात् अब इंद्रके स्थानका विचार करेंगे—

(६) इंद्र-लोक।

जहां इंद्रका स्थान है, वही इंद्रलोक है, इंद्र देवोंका राजा है और देव इंद्रियां ही हैं; इसलिये यह स्पष्ट होता है कि इंद्रियोंके मध्यमें किसी स्थान में इंद्रका लोक है। इसीलिये इसका मध्यस्थान निरुक्तमें कहा है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वायुर्वेन्द्रो वाऽन्तरिक्षस्थानः॥ निरु. दै. १।२।१

" वायु तथा इंद्र अंतरिक्षस्थानीय देवताएं हैं।" अंतरिक्ष ही मध्य-स्थान है। जो बाह्य जगत्में " अंतरिक्ष " हैं वही शरीरमें हृदय, " अंतः-करण " आदि है। इस विचारसे भी सिद्ध हो रहा है कि, इंद्रशक्तिका मुख्य केंद्रस्थान " हृदय " है। इस विषयमें और निम्न वचन देखिये—

अंतरेण तालुके य एष स्तन इवालंबते सेंद्रयोनिः॥
तै. उ. १।६।१

" तालुस्थानके अंदर ऊपर मस्तिष्कमें स्तनके समान जो एक भाग है, वह इंद्रयोनि अर्थात् इंद्रशक्तिका उत्पत्तिस्थान है तथा।"

कस्मिन्नु खलु देवलोका ओताश्च प्रोताश्चेतींद्रलोकेषु गार्गीति॥
बृ.उ.३।६।१

" देवलोक इंद्रलोकके आधारसे रहे हैं।" अध्यात्ममें देवका अर्थ इंद्रिय है, इसलिये " देवलोक " का अर्थ " इंद्रियस्थान " है। इन इंद्रियस्थानोंका संबंध पूर्वोक्त इंद्रस्थानसे है, जो मस्तिष्कमें स्तन जैसा है और जो तालुके ऊपर है, ऐसा तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा है। इन वचनों का विचार करनेसे पता लगता है कि, इंद्रशक्तिका उत्पत्तिस्थान यह मस्तकमें तालुके ऊपरका जो स्तन जैसा भाग है, वह है और उसका कार्य करनेका स्थान हृदय है। तात्पर्य यह है कि हृदयसे लेकर मस्तकतक जो स्थान है, वह " इंद्रलोक " है। इसलिये यदि इंद्रशक्तिका विकास करना है, तो उक्त स्थानकी शक्तियोंकी वृद्धि करना चाहिये।

पूर्वोक्त निरुक्तके वचनमें कहा ही है कि, इंद्र और वायु ये दो देव मध्य-स्थानमें रहते हैं। दोनोंका निवास एकत्र है। वेदमें इस बात की द्योतक देवता " इंद्रवायू " है। अध्यात्ममें अपने शरीरमें भी यह बात प्रत्यक्ष है। फेफडोंमें प्राणवायु रहता है और हृदयमें इंद्र रहता है। तात्पर्य छातीमें ही ये दोनों देव रहते हैं। " रुद्र, वायु, प्राण, मरुत् " ये शब्द प्राणवाचक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं । इससे इंद्रवायू, इंद्रामरुतौ आदि द्विवचनी देवताओंका आध्यात्मिक अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है । इतने लेखसे पाठकोंको पता लगा ही होगा कि इंद्रशक्तिका मूलकेंद्र कहां है और उसकी व्याप्ति कहांतक है ।

(७) इन्द्रकेपर्याय शब्द ।

साधारणतः संस्कृत भाषाका और विशेषतः वैदिक मंत्रोंका प्रत्येक शब्द विशेष गूढ अर्थ धारण करता है । प्रत्येक शब्द एक अथवा अनेक विशेष गुणोंका बोध करता है; इसलिये इंद्रवाचक शब्दोंका यहां मनन करना आवश्यक है। इससे इंद्रशक्तिके गुणधर्मोंका विशेष ज्ञान मिल सकता है, और उसके विकासका मार्ग भी ज्ञात हो सकता है । इसलिये अन्य विचार करनेके पूर्व इंद्रके पर्यायशब्दोंका ही विचार यहां करेंगे ।–

(१) मरुत्वान्= मरुत् जिसके साथ होते हैं, अर्थात् प्राण जिसके साथ रहते हैं । प्राणोंसे युक्त ।

(२) मघवान्= सुख, धन, ऐश्वर्य आदिसे युक्त ।

(३) विडौजाः= (विट्+ओजाः) प्रजाओंमें जिसका बल है । प्राणियोंमें जिसकी शक्ति दिखाई देती है । अथवा व्यापक शक्तिवाला ।

इसका पाठांतर " बिडौजाः " ऐसा भी है । इसका अर्थ (बिड्+ओजाः) तोडनेवाला, फाडनेवाला, बल जिसके पास है, यह है । इस अर्थकी तुलना पूर्वोक्त नरुक्त अर्थके साथ कीजिये ।

(४) शुनासीरः = (शुनः) वायु अथवा प्राण और (सीरः शीरः) सौर्य तेज, अर्थात् प्राण और तेजसे युक्त ।

(५) पुरुहूतः = बहुत प्रशंसनीय ।

(६) पुरंदरः = स्थूल सूक्ष्मादि शरीरोंका भेदन करके अपनी शक्तिका विकास करनेवाला । प्रतिबंधोंको तोडकर बाहर आनेवाला ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(७) जिष्णुः = विजयी।
(८) शक्रः = शक्तिमान्।
(९) शतमन्युः = (शत) सौ (मन्युः) शक्तियोंसे युक्त।
(१०) शतक्रतुः = सौ वर्षपर्यंत यज्ञ करनेवाला।
(११) सुत्रामा = (सु) उत्तम (त्रामा) रक्षक।
(१२) वृषाः = बलवान्।
(१३) स्वराट् = अपने बलसे चमकनेवाला।
(१४) आखंडलः = भेदन करनेवाला।
(१५) तुराषाड् = त्वरासे युक्त, वेगवान्।

ये इंद्रके नाम इंद्रशक्तिके गुणधर्मोंका भाव बता रहे हैं। जो इंद्रशक्ति हृदयमें है, उसमें (१) प्राण धारण करनेकी शक्ति है, इसलिये इस शक्ति के विकसित होनेसे दीर्घकालतक प्राणोंकी धारणा हो सकती है; और दीर्घायु प्राप्त हो सकती है। (२) इसमें सुख होता है, इसलिये इंद्रशक्तिके विकाससे मन आनंदपूर्ण हो जाता है और अनंत आपत्तियोंमें उसके मुख-पर प्रसन्नता दिखाई देती है। (३) सब प्राणियोंमें जो बल है, वह इसीका होनेके कारण इंद्रशक्तिका विकास होनेसे बल बढ जाता है। (४) प्राण और तेज इंद्रके साथ सदा रहते हैं, इसलिये इंद्रशक्तिका विकास होनेसे प्राणका बल बढता है, ओर तेजस्विता भी बढत है। (५) यह अद्भुत शक्तिशाली होनेसे ही सब विद्वान् इसकी प्रशंसा करते हैं। जिसके अन्दर विलक्षण इंद्रशक्तिका विकास होता है, उसकी भी सर्वत्र प्रशंसा हो जाती है। (६) इसीकी प्रबल शक्तिसे शरीरोंमें सुराख होकर इंद्रियां बनी हैं, इसलिये निश्चय हो जाता है कि यह इंद्रशक्ति अधिक विकसित हो जानेसे इंद्रियोंकी शक्तियां भी अधिकाधिक विकसित होती हैं। (७) इंद्र सदा विजयी है, अर्थात् इसका मुकाबला इसके शत्रु नहीं कर सकते। इसलिये स्पष्ट है कि इंद्रशक्तिके विकसित होनेसे उस मनुष्यके भी संपूर्ण शत्रु नष्टभ्रष्ट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो जांयगे, रोग दूर होंगे और उसका सर्वत्र विजय होगा। (८) इतना शक्तिमान् यह है। (९-१०) सौ वर्ष इस शरीरमें रहकर इसको अनेकानेक पुरुषार्थ करने हैं। (११) इससे उत्तम संरक्षण होता है, (१२) बल बढता है और (१३-१५) दूसरेके सहारेके विना अपनेही बलसे वह पुरुष, कि जिसमें इंद्रशक्तिका विकास हुआ है, अल्प समयमें बहुतही कार्य करता हैं, और उसका पुरुषार्थ परिणामकारी होता है।

इतने अनुमान इंद्रके पर्यायशब्दोंसे हमें विदित हो सकते हैं। इंद्रका प्रत्येक शब्द एक अथवा अधिक गुणोंका प्रकाश कर रहा है, इसलिये जो गुण उक्त शब्दोंसे व्यक्त होते हैं, वे इंद्रमें हैं। यदि ये गुण इंद्रमें हैं, तो इंद्रशक्तिका विकास होनेसे इन गुणोंका विकास होना आवश्यकही है। जिस प्रकार मीठे आमके बीजका विकास होकर, उसका वृक्ष बननेपर उसको मधुर फल आते हैं; ठीक उसी प्रकार इंद्रका जो अंशरूप बीज हमारे अंदर है, उसका उतना विकास होनेपर उसके वैसेही गुण होंगे, जैसे मूल इंद्रशक्तिमें होते हैं। शक्तिविकासका यही अर्थ है।

पूर्वोक्त इंद्रवाचक शब्दोंके जो अर्थ दिये हैं, वे अपने विषयके लिये आध्यात्मिक दृष्टिसे जितने आवश्यक हैं, उतने ही दिये हैं। आत्मपरमात्मविषयक अर्थ उन शब्दोंमें हैं, उनका इस विषयके साथ संबंध न होनेसे यहां आवश्यक नहीं हैं। अस्तु। इतने विचारसे पाठकोंको इंद्रशक्तिकी ठीक कल्पना हो गई होगी। इंद्रशक्तिका स्थान हृदय है, उसका उत्पत्तिस्थान मस्तिष्कमें स्तन जैसा अवयव है और यह शक्ति विकसित होकर पूर्वोक्त गुणधर्मोंसे युक्त होती है। इस शक्तिका विकास होनेसे मनुष्यका सामर्थ्य बहुतही बढ जाता है।

(८) इंद्रशक्तिके विकासके चिह्न।

इंद्रशक्तिका विकास होनेसे किन किन शक्तियों की, किस प्रकार उन्नति होती है, इसका पता अंशरूपसे इससे पूर्व बतायाही है, अब उस विकासके बाह्य चिह्नोंका थोडासा विचार करना है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१) जिसके अंदर इंद्रशक्तिका विकास होने लगता है, उसका आरोग्य पूर्वकी अपेक्षा अच्छा रहने लगता है, रोग प्रायः दूर रहते हैं और नीरोगताका आनंद उसके अनुभवमें रहता है।

(२) शरीरलाघव इतना हो जाता है और उसमें उत्साह, स्फूर्ति तथा अंगपाटव इतना हो जाता है कि, उसको थकावट आती ही नहीं। जिस अवस्थामें दूसरे मनुष्य थक जाते हैं, उस अवस्थामें भी उसका कार्य करनेका सामर्थ्य कम न होता हुआ बढता ही जाता है।

(३) उसके उत्साहके साथ शारीरिक शक्तिका कोई भी विशेष संबंध नहीं होता। उसकी शारीरिक शक्ति कम हो, अथवा अधिक हो, उसका उत्साह एक जैसा रहता है। इंद्रशक्तिका विकास जिनमें हुआ होता है, वे शरीरसे निर्बल भी हुए, तभी उनकी मानसिक उत्साहशक्ति बहुतही विलक्षण होती है।

(४) उनके आंखमें विलक्षण तेज दिखाई देता है, तथा उनका सब इंद्रियसंघात निर्दोष रहनेके कारण उनको इंद्रियसंयम सुगम होता है।

(५) उसके विचार, वक्तृत्व और पुरुषार्थमें जीवित भाव दिखाई देता है। निरुत्साह उसके पास नहीं ठहर सकता और वह जनतामें एक विलक्षण स्फूर्तिका केंद्र बनकर रहता है।

(६) सच्ची जागृति उसके जीवनमें दिखाई देती है। वह मृत्युसे भी नहीं डरता और किसी भी प्रलोभनमें नहीं फंसता। उसका संपूर्ण जीवन "धीरोदात्त" वृत्तिसे परिपूर्ण रहता है।

(७) उसका वक्तृत्व थोडा ही होता है, परंतु उसका परिणाम बडा ही गहरा और चिरकाल रहनेवाला होता है। शब्द गिनेचुने होते हैं, तथापि गंभीर अर्थसे परिपूर्ण होते हैं।

(८) उसके शब्दमें वीर्य रहता है, विचारोंमें अपूर्वता रहती है, तथा कृतिमें विलक्षण औदार्य रहता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(९) उसकी शक्तियां विकसित होतीं हैं, परंतु उसकी वृत्ति उच्छृंखल नहीं होती, वह शांति और गंभीरताका पुतला, धैर्य और वीर्यका आधारस्तंभ, नवजीवनका स्रोत, वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय सुधारका जनक, उत्साहमय जीवनका चालक और सार्वजनिक भावका प्रचारक होता है।

(१०) सारांश यह है कि, वह केवल अपने लिये ही जीवित नहीं रहता, प्रत्युत उसका जीवन परोपकारपूर्ण "मित्र–दृष्टिका आदर्श" रूप रहता है।

इस प्रकार थोडेसे चिह्न हैं जो इंद्रशक्तिके विकास होनेके समय आरंभमें ही दिखाई देते हैं। इन गुणोंका प्रादुर्भाव होनेसे पाठकोंको पता लग सकता है कि, इंद्रशक्ति विकसित होने लगी है। इसके सिवाय अन्यभी बहुतसे चिह्न हैं, उनका विचार आगे क्रमशः हो जायगा।

(९) इंद्रतत्त्व क्या है ?

जगत्में शक्तियुक्त जो जो तत्त्व हैं उनके अल्प अंश हमारे शरीरमें रहे हैं। जगत्में अनेक तत्त्व हैं, उनमेंसे इंद्रतत्त्व भी एक है और यह तत्त्व सब तत्त्वोंमें मुख्य है। आत्माको छोडकर सब अन्य तत्त्व इसी इंद्रतत्त्वके आधारसे रहते हैं। एक मूल मायाशक्ति इस इंद्रके ऊपर है, अन्य सब शक्तियां इसके नीचे और इसके आधीन हैं। इसलिये इसका बल बढ जानेसे अन्य शक्तियां जो इसके नीचे हैं, बलवान् होतीं हैं और इसका बल घटनेसे संपूर्ण शक्तियां निर्बलसीं हो जातीं हैं।

जिनके जीवनमें उदासीनता दिखाई देती है, जो आलसी होते हैं, सुस्ति जिनपर छाई रहती है, जो पुरुषार्थका जीवन व्यतीत नहीं करते, जिनके आंख और मुख निस्तेज और मरियलसे होते हैं, समझ लीजिये कि वहां इंद्रशक्ति घट रही है। इस प्रकार जिस इंद्रशक्तिके घट जानेसे मनुष्य मनुष्यत्वसे गिरता है और बढ जानेसे अपने मनुष्यत्वकी उन्नति करता है, उस इंद्रका वर्णन वेदमें सैंकडों मंत्रोंमें हुआ है। इसलिये विचार करके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देखना चाहिये कि उसका स्वरूप क्या है। पूर्वोक्त उपनिषद्वाक्यके अंदर स्पष्ट कहा है कि, " विद्युत् ही इंद्र है। " इसी लिये " इंद्र-वज्र " का अर्थ विद्युत्का आघात समझा जाता है। विश्वव्यापक सूक्ष्म विद्युच्छक्ति ही इंद्र है, परंतु जो विद्युत् दीप जलाती है और यंत्रोंको घुमाती है, वह इस सूक्ष्म इंद्रशक्तिका निर्जीव स्थूल स्वरूप है। यहाँ जिस इंद्रशक्तिका विचार चल रहा है, वह निर्जीव स्थूल शक्ति नहीं है, प्रत्युत सजीव सूक्ष्म इंद्रशक्ति है, जो चेतन सृष्टिके अंदर अंशरूपसे विराजमान होकर विलक्षण कार्य कर रही है !!!

बाह्य जगत् की संपूर्ण शक्तियां हमारे देहमें आकर रहती हैं, यह वैदिक सिद्धांत है। " पिंड–ब्रह्मांडकी समता " इसी दृष्टिसे है। ब्रह्मांडमें जो विशाल रूपसे अनेक तत्त्व हैं, वेही सूक्ष्म रूपसे शरीरमें हैं। इसी प्रकार विश्वव्यापक सजीव सूक्ष्म इंद्रशक्ति अंशरूपसे हमारे शरीरमें रही है, यह एक अल्पसी चिनगारी है। इस छोटीसी चिनगारीकी शक्ति बढानी चाहिये, इसी उद्देश्यसे वैदिक धर्ममें योगशास्त्रकी प्रवृत्ति हो गई है और विविध उपायोंकी योजना ऋषिमुनियोंने की है।

इस शक्तिके विकाससे क्या हो सकता है, इसका वर्णन उपनिषद्में निम्न प्रकार आया है।—

शतं देवानामानंदाः। स एक इंद्रस्यानंदः॥ तै.२।८।१

" देवोंके सौ आनंदोंके बराबर इंद्रका एक आनंद है। " इसका तात्पर्य अध्यात्ममें यह है कि, इंद्रियोंके सौ आनंदोंके समान इंद्रका एक आनंद है। मनुष्योंको जो सुख इंद्रियशक्तियोंके विकाससे हो सकता है, उससे सौगुणा अधिक सुख इंद्रशक्तिके विकाससे मनुष्य प्राप्त कर सकता है !!! यदि मनुष्य सुख और आनंद ही चाहता है, तो उसको उचित है कि, वह एक गुणा सुख प्राप्त करनेकी अपेक्षा सौगुणा आनंद प्राप्त करनेका यत्न करे। सौगुणा आनंद प्राप्त करनेके उपाय ही इंद्रसूक्तोंमें वर्णन किये हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत इससेभी अधिक आनंद प्राप्त करनेके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपाय हैं, परंतु यहां इस लोकके आनंदका ही विचार करना है। इसलिये इंद्रलोक– "इंद्रतत्त्व" का निश्चय करते हुए यह यहां बताया है, कि यह सूक्ष्म सजीव अथवा जीवनपूर्ण विद्युत्तत्त्व है, और वह सर्वत्र व्यापक है।

मनुष्यके जीवनके लिये सूक्ष्मसे सूक्ष्म तत्त्वोंकी आवश्यकता अधिकाधिक है। अन्न, जल और वायु ये तीन पदार्थ मानवी जीवनको सहायक हैं। अन्न स्थूल है, उससे जल सूक्ष्म और उससे अति सूक्ष्म वायु है, इसीलिये अन्नसे जल और जलसे वायुकी आवश्यकता मनुष्यके लिये अत्यधिक है। अन्न न मिलनेपर मनुष्य तीन मासतक प्राणधारण कर सकता है; जल न मिलनेपर मनुष्य केवल सप्ताह तक मुश्किलसे प्राणधारण कर सकता है, तथा प्राणवायु न मिलनेपर थोडसे क्षणोंमें मनुष्य मर सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि, स्थूल तत्त्वकी अपेक्षा सूक्ष्म तत्त्वकी आवश्यकता मनुष्यके लिये कितनी अधिक है !! इंद्रतत्त्वके साथ जीवनका सत्व रहनेके कारण इसकी आवश्यकता सबसे अधिक है। यह बात पूर्वोक्त युक्तिसे ही सिद्ध हो सकती है। इस लिये इस विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

जीवनके लिये जिसकी अत्यधिक आवश्यकता है, उस तत्त्वका अपने अंदर विकास करनेसे अपना जीवन सुखमय और आनंदपूर्ण हो सकता है, यह बात यहां स्पष्ट हो जाती है। इसीलिये इंद्रशक्तिका विकास करनेकी आवश्यकता है।

(१०) इंद्र और सूर्यका प्रभाव।

यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे॥ ऋ० ८।१२।३०

"(यदा) जिस समय (दिवि) द्युलोकमें (अमुं सूर्यं) इस सूर्यके प्रति (शुक्रं ज्योतिः) शुद्ध प्रकाश तुमने (अधारयः) धारण किया;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(आत् इत्) उसी समय सब भुवन (ते) तेरे साथ (येमिरे) संबंधित हुए हैं। ”

इस मंत्रमें स्पष्टतासे कहा है कि, सूर्यके अंदर प्रकाशशक्ति इंद्रकी दी हुई है। और इसी कारण सब भुवनोंका नियमन इंद्र कर रहा है, अर्थात् इंद्र सूर्यके अंदर प्रकाश तत्व रखता है और सूर्यके द्वारा संपूर्ण भुवनोंका नियमन करता है। सूर्यके अंदर इस प्रकार “ इंद्रतत्व ” कार्य कर रहा है। इस मंत्रसे स्पष्ट हो रहा है कि, जो विद्युत् मेघोंमें होती है, वह इंद्रका स्थूलतम रूप है। इंद्रका वास्तविक रूप सूर्यको भी तेज देनेवाला और सूर्यके अंदर व्याप्त है। तथा और देखिये–

यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे ॥
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे। ऋ० ८।१२।२९

“ जिस समय (मारुतीः विशः) प्राणयुक्त प्रजाएं, हे इंद्र ! तेरे साथ नियमबद्ध हो गईं, उसी समय सब भुवन तेरे साथ संबंधित हुए हैं। ”

इस मंत्रसे स्पष्ट हो रहा है कि प्राणसे जीवित रहनेवालीं संपूर्ण प्रजाएं इंद्रके साथ विशेष नियमसे बंधी हैं। इससे पूर्व यही बात प्रमाणान्तरसे बताई गई है, वही इस मंत्रके प्रमाणसे अधिक प्रमाणित हो गई है। इंद्र अपनी शक्ति सूर्यमें रखता है और सूर्य किरणोंद्वारा वह इंद्रशक्ति स्थिरचर सृष्टितक पहुंचाता है। सूर्य किरणोंद्वारा यह इन्द्रशक्ति वनस्पतियोंमें और प्राणियोंमें आती है और सबमें जीवनकी कला बढाती है। इसी कारण सूर्यका प्राणियोंके साथ संबंध वेदने वर्णन किया है। देखिये–

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ऋ. १।११५।१

“ सूर्य स्थावरजंगमका आत्मा है। ” क्यों कि वही अपने किरणों द्वारा जीवनयुक्त इंद्रशक्ति देता है और जीवनकी कला बढाता है। और देखिये—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूर्यः कृणोतु भेषजम्। अ. ६।८३।१

" सूर्य औषध बनावे " अर्थात् सूर्य रोगोंको दूर करे। पहिले बताया ही है कि, इन्द्र (इन्+द्र) शत्रुओंका विदारण करनेवाला है। मनुष्यके जो अनेक शत्रु हैं, जिनसे कि मनुष्यको हर समय युद्ध करना पडता है, उनमें " रोग भी शत्रु ही हैं।" इन रोगरूपी शत्रुओंका नाश सूर्य ही अपने किरणों द्वारा इंद्रशक्तिको चारों ओर फैलाकर करता है। यही " सूर्यकिरणोंके द्वारा चिकित्सा है।" इसीलिये कहा है कि—

सूर्यः पवित्रं स मा पुनातु॥

आप० श्रौ० १२।१९।६

" सूर्य पवित्रता करनेवाला है, इसलिये वह मुझे पवित्र बनावे।" अर्थात् सूर्यकिरणोंद्वारा पवित्र होकर मनुष्य शुद्ध और पवित्र बनकर नीरोग हो सकता है। मानवी नीरोगताके लिये इस प्रकार सूर्यका विशेष संबंध है। और देखिये–

सूर्य शत-वृष्ण्यम्॥ तेना ते तन्वे शं करम्॥

अ. १।३।५

" सूर्य सौ प्रकारका (वृष्ण्यं) वीर्यका बल बढानेवाला है। उससे तेरे (तन्वे) शरीरके लिये (शं) सुख होगा।" तात्पर्य यह है कि, यदि मनुष्य सूर्यकिरणोंका अपने आरोग्यवर्धनके कार्यमें उपयोग करेगा, तो उसका सौ प्रकारका बल बढ सकता है, क्यों कि जीवनसाधक इंद्रशक्ति उसमें विपुल रहती है। तथा और देखिये–

इंद्र जीव, सूर्य जीव, देवा जीवा, जीव्यासमहम्॥
सर्वमायुर्जीव्यासम्॥

अ. १९।७०।१

"हे इंद्र! तू जीवनशक्तिसे युक्त है। हे सूर्य! तू जीवनशक्तियुक्त है, हे देवो! आप जीवनशक्तिसे युक्त हैं। इसलिये मैं जीवित रहूंगा। मैं पूर्ण आयुतक जीवित रहूंगा।" इस मंत्रमें इन्द्र, सूर्य तथा अन्य देवोंका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मानवी जीवनके साथ संबंध स्पष्ट शब्दोंद्वारा बताया है। इंद्रसे सूर्यमें, सूर्यसे अन्य देवोंमें और वहांसे मनुष्यमें जीवन की शक्ति आती है। इस क्रमका विचार करनेसे स्पष्टतापूर्वक पता लगता है कि, किस प्रकार मनुष्य अपनेमें इंद्रशक्ति बढा सकता है और अपनी जीवनकी कला भी किस रीतिसे दृढ कर सकता है—

सूर्यं चामुं रिशादसम् ॥ अ. २०।१२८।१

" यह सूर्य (रिश+अदसं) क्षयका विनाशक है। " जो हिंसक, विनाशक, क्षय और नाश करनेवाला होता है, उसको " रिश " कहते हैं। इस प्रकारके (रिश) विनाशक क्षयबीजोंको सूर्य अपने किरणोंद्वारा दूर करता है, और आरोग्य स्थापन करता है। यहां पाठक " इंद्र " (इन्+द्र) शब्दका जो अर्थ शत्रुविनाशक पूर्व लेखमें बताया है, उसका विचार करें। वही भाव इस मंत्रके " रिशादस् " शब्दसे व्यक्त हो रहा है। इसका कारण स्पष्ट है कि इंद्रकी शत्रुविनाशक शक्ति ही सूर्यके द्वारा हमारे रोगरूपी शत्रुओंको भगा देती है !! इसी लिये दोनों देवताओंके कई नाम एक जैसे अर्थवाले हैं। वेदकी यह शैली पाठकोंको ध्यानमें धरने योग्य है। इससे कई गूढ उपदेशोंका पता लग सकता है। अस्तु। उक्त मंत्रसे सूर्य प्रकाशके साथ प्राप्त होनेवाले जीवनपूर्ण इंद्रशक्तिका विशेष ज्ञान हो सकता है। तथा और देखिये—

सूर्यस्ते तन्वे शं तपति ॥ अ. ८।१।५

" सूर्य तेरे शरीरके लिये सुखकारक तपता है। " यह मंत्र स्पष्ट शब्दोंसे बता रहा है कि, सूर्यकिरणोंमें ऐसी कोई शक्ति है कि, जो शरीरमें सुख, आरोग्य और शांति स्थापन करती है। जो बाबू लोग अपने शरीरको अनेक कपडोंसे लपेट कर तंग कमरेके अंदर सदा बंद रखते हैं, उनको क्यों तपेदिक अथवा क्षय होता है, इसका कारण इस मंत्रके अंदर स्पष्ट हो जाता है। शरीरका आरोग्य तब रह सकता है, जब उसका संबंध सूर्यकिरणोंके साथ योग्य प्रमाणसे होता हो। सूर्यकिरणोंमें जो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यापक इंद्रशक्ति है, उसका यह प्रभाव है। इसी लिये निम्न मंत्रमें कहा है—

सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः॥

अ. ५।३०।१५

"अधिष्ठाता सूर्य अपने किरणोंसे तुझे मृत्युसे बचावे।" इतनी इंद्रशक्ति सूर्यकिरणोंके अंदर है, कि जो मनुष्योंको मृत्युसे बचा सकती है। वेद अपने मंत्रोंद्वारा दीर्घ आयुके विषयमें इतने स्पष्ट उपदेश दे रहा है, तथापि तंग गलियोंके तंग मकानोंमें कमरोंके अंदर निवास करनेवाले भी अपने आपको "वैदिक धर्मी" कह रहे हैं, यह कितना आश्चर्य है! जो लोग समझते हैं कि वैदिक धर्म शब्दोंका ही धर्म है, वे कितनी गलती कर रहे हैं, इसका स्पष्टीकरण उक्त मंत्रसेही होता है। वास्तविक रीतिसे देखा जाय, तो वैदिक धर्म "आचारप्रधान धर्म" है। इसलिये जो बातें वेदमें कहीं हैं, उनको आचारमें लाना चाहिये और उनसे अपना अभ्युदय सिद्ध करना चाहिये। ऐसा जो नहीं करते, वे कितने भी विद्वान् हुए तथापि निःसंदेह सच्चे वैदिक धर्मसे दूरही हैं!!! इस लिये हरएक पाठक इन मंत्रोंका विचार करे और अपने निवासस्थान ऐसे बनावे कि, जिनमें प्रतिदिन सूर्यकिरणोंद्वारा इंद्रशक्ति आ सके। किसी प्रकारकी बीमारी हो, वह जहां विपुल इंद्रशक्ति रहती है, वहांसे दूर भाग जाती है; इसीलिये वेदमंत्रोंमें सूर्यप्रकाशका महत्त्व वर्णन किया है। देखिये निम्न मंत्र—

सूर्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै॥

यजु. २।५

"किसी प्रकारके भी दोषसे अर्थात् विनाशक बीमारीसे सूर्य तेरा रक्षण करे।" सूर्यलोकका इससेभी अधिक महत्त्व है, जिसका वर्णन निम्न मंत्रसे हुआ है—

सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके॥ अ. ८।१।१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"सूर्यका भाग अमृतलोक ही है।" जहां अमृत रहता है वह अमृत-लोक है । अमृत सूर्यकिरणोंमें रहता है, इसलिये अमृतलोक सूर्यलोक ही है । यह अ-मृत लोक है, इसलिये सूर्यकिरणोंसे बीमारियां दूर होती हैं और आरोग्य प्राप्त होता है । इसका अधिक स्पष्टीकरण निम्न मंत्रसे होता है—

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय॥
सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शंतमेन तया
देवतयांऽगिरस्वद् ध्रुवे सीद ॥

यजु० १५।६४

"(१) सब प्रकारके प्राण, अपान, व्यान, उदान आदिकी रक्षाके लिये, (२) (प्रतिष्ठायै) बलकी स्थिरताके लिये और (३) (चरित्राय) उत्तम आचारव्यवहारके लिये, सूर्य अपनी (मह्या स्वस्त्या) महती कल्याणमयी प्रभाके साथ तथा (शंतमेन) अत्यंत सुखदायक (छर्दिषा) उत्तम रक्षाके साथ तेरा पालन करे । उस (देवतया) देवतासे (अंगि-रस्-वत्) अवयवोंके पोषक रसोंसे युक्त होकर (ध्रुवे) स्थिरतामें (सीद) रहो । "

सूर्यकिरणोंद्वारा इंद्रशक्तिकी प्राप्ति होकर मनुष्यका कितना कल्याण होना संभव है, उसका उत्तम वर्णन इस मंत्रमें हुआ है, इसलिये हरएक पाठकको उचित है कि वह इस मंत्रका विशेष अभ्यास करे । सूर्यकिरणोंसे जो इंद्रशक्ति प्राप्त होती है, उससे पाहिली और मुख्य बात यह होती है कि सब प्रकारके प्राण शरीरके अंदर सुरक्षित और बलवान् होते हैं । प्राणोंके बलसे ही सब कुछ अन्य बल रहता है, इसलिये प्राणोंकी सुरक्षितता जिससे होती है, उस सूर्यप्रकाशकी आवश्यकता मानवी जीवनके लिये कितनी है, इसका विचार हरएक मनुष्य ही कर सकता है। मुख्य पांच प्राण और गौण उपप्राण पांच मिलकर दस प्राण होते हैं । इनकी शक्तियां संपूर्ण शरीरमें तथा संपूर्ण अवयवोंमें संचारित हो रहीं हैं। इन सबकी सुरक्षितता ठीक प्रकारसे सूर्यकिरणोंकी इंद्रशक्तिसे होती है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूसरी बात शरीरकी प्रतिष्ठाकी है। संपूर्ण अवयवोंकी स्थिरता, संपूर्ण शरीरका तथा सब अंगोंका बल आदि सुरक्षित रहनेके लिये सूर्यप्रकाशकी अत्यंत आवश्यकता रहती है। जो मनुष्य सदा तंग कमरेके अंधेरेमें बंद रहते हैं, उनके चेहेरेपर फीका रंग आ जाता हैं, खूनका लाल रंग कम हो जाता है, पांडुरोगकी छाया सब शरीरपर फैलती है। इसी लिये वेदकी आज्ञा है कि सूर्यप्रकाशसे अपने शारीरिक बलकी सुरक्षितता करो।

तीसरी बात जो सूर्यप्रकाशसे होती है वह यह है कि, मनुष्यके संपूर्ण व्यवहार चलने योग्य चपलता शरीरमें रहती है। यदि सूर्य कुछ दिन न रहेगा, तो सर्दीके कारण सब लोग सुकड जांयगे, और विविध प्रकारके कष्ट होंगे। इससे स्पष्ट हो रहा है, कि हमारी हलचलके लिये सूर्यप्रकाशकी कितनी आवश्यकता है।

सूर्यप्रकाशसे इन्द्रशक्ति पृथ्वीपर आती है और उसके कारण (मही स्वस्ति) बडी स्वस्थता प्राणिमात्रको प्राप्त होती है, सब प्राणियोंको उत्तम (शं) सुख प्राप्त होता है, (छर्दिः) सुरक्षितता मिलती हैं, यह सूर्यकिरणोंका प्रभाव है। इसलिये इस अपूर्व देवताके साथ रहकर मनुष्योंको उचित है कि वे (अंगि-रस-वत्) अपने अंगरसोंसे युक्त बनें, अथवा अपने अंगोंमें जीवनरसकी अभिवृद्धि करें और अपने जीवनको सुरक्षित तथा स्थिर करें।

इतने विवरणसे पाठकोंको पता लगाही होगा, कि अपनी इन्द्रशक्तिका विकास करनेके अनुष्ठानमें सूर्यप्रकाशका कितना विशेष संबंध है और किस रीतिसे सूर्यप्रकाशद्वारा उक्त लाभ होते हैं।

(११) इन्द्रशक्तिका अधिक परिचय।

इन्द्रशक्ति सूर्यकिरणोंद्वारा भूमंडलपर आकर जो विलक्षण कार्य करती है, उसका वर्णन वेदमंत्रोंद्वारा पूर्व भागमें किया ही है। अब प्रत्यक्ष अनुभवका विचार करना है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूर्यकिरणमें उष्णता रहती है, परंतु यह उष्णता अग्निकी उष्णतासे भिन्न है। सूर्यकिरणोंमें प्रकाश रहता है, परंतु यह दीपके प्रकाशसे भिन्न है। सूर्यकिरणमें गति रहती है, परंतु यह गति वायुकी गतिसे भिन्न है। सूर्यकिरणकी उष्णतासे वृक्ष प्रफुल्लित होते हैं, सूर्यप्रकाशसे आंख योग्य रीतिसे अपना कार्य कर सकते हैं और सूर्यकिरणोंकी गतिसे इतनी विलक्षण गति उत्पन्न होती है कि जिसका मनुष्य उपयोग भी नहीं कर सकता। तथापि सूर्यकिरणोंमें जो " जीवन देनेवाली इन्द्रशक्ति " है, वह और ही विलक्षण है। उष्णता, प्रकाश और गति हमें अन्यत्र मिल सकती है, परंतु उसके साथ साथ जीवनशक्तिसे परिपूर्ण इंद्रशक्ति जैसी सूर्यप्रकाशसे मिल सकती है, वैसी किसी अन्य पदार्थसे नहीं मिलती। इसीलिये सूर्यप्रकाशका महत्त्व वेदके मंत्रोंमें वर्णन किया है।

घरके अंदर यदि कोई पौधा लाकर रख दिया, तो उसकी शाखाएं उस खिडकीकी ओर झुकतीं हैं, जिससे कि सूर्यप्रकाश अंदर आता है। घरके बाहिर उद्यानमें जो वृक्षादि रहते हैं, उनकी शाखाएं उस तर्फ अधिक होती हैं, कि जिस तर्फसे उनको सूर्यप्रकाश अधिकाधिक मिलता है। सूर्यप्रकाश न मिला तो वृक्षोंकी प्रसन्नता भी न्यून हो जाती है। इतना सूर्यप्रकाशका महत्त्व है और यह उस प्रकाशकी उष्णता, प्रकाश और गतिके कारण नहीं है, परंतु उसमें जो सूक्ष्म " इंद्रशक्ति " है उसके कारण ही है। यह बात ध्यानमें धरने योग्य है।

पाठक वृक्षादिकोंपर सूर्यकिरणोंका प्रभाव देखें और स्वयं अनुभव करें, कि यह बात सत्य है या नहीं। क्योंकि आगे जो अनुष्ठान बताना है, उसके साथ इसका अत्यंत निकट संबंध है। जीवनशक्तिकी वृद्धि करनेवाला भगवान् सूर्यनारायण है, वह अपने किरणोंसे यह कार्य कर रहा है, इसका अनुभव होनेके पश्चात् अपने अंदर जीवनशक्ति अथवा इंद्रशक्ति बढानेके उपाय स्वयं ही ज्ञात हो सकते हैं। इसलिये निवेदन है, कि वैदिक उपदेशकी सत्यता पाठक सबसे प्रथम देखें और अनुभव करें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१२) सब शक्तियोंका मूल स्रोत।

संपूर्ण शुभ शक्तियोंका मूल स्रोत मंगलमय परमात्मा ही है। वेदमें यह बात स्पष्ट रूपसे बतानेके लिये ऐसी विलक्षण योजना की है, कि संपूर्ण देवताओंके वाचक शब्द उसी एक अद्वितीय परमात्माके वाचक होते हैं !! इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है, कि सब दैवी शक्तियोंका मूल स्रोत परमात्मा है और उसकी एक शक्ति लेकर संपूर्ण अन्य देवोंका देवत्व व्यक्त हुआ है !! प्रस्तुत ' इंद्र ' के विचार करनेके समय भी यह बात ध्यानमें धरनी चाहिये, कि यह शब्द भी उसी मूल स्रोत परमात्माका ही वाचक है और साथ साथ अन्य पदार्थोंका भी वाचक है।

इंद्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ॥
एकं सद्विप्रा बहुधा वदंत्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

ऋ. १।१६४।४६

" इंद्रादि शब्द एक सद्वस्तुके ही वाचक हैं। " अर्थात् इंद्र, मित्र, वरुण, अग्नि, सुपर्ण, गरुत्मान्, यम, मातरिश्वा तथा अन्य देवतावाचक शब्दोंसे व्यक्त होनेवालीं शक्तियां उसी एक आत्मासे जगत्में फैल रही हैं। इस लिये यदि आपको अपने अंदर इंद्रशक्तिका विकास करना है, तो आपको उचित है, कि उसके मूल स्रोतकी भक्ति आपके मनमें सदा जीवित और जागृत रखिये, क्यों कि उसी मूल स्रोतसे वह शक्ति आपके अंदर आनी है।

प्रत्येक शुभ गुणकी पराकाष्ठा ही परमेश्वर है। इस नियमानुसार इंद्रशक्तिकी पराकाष्ठा परमात्मामें ही है। आप परमात्माकी कल्पना उसको शुभ गुणोंकी पराकाष्ठाका केंद्र मानकर कर सकते हैं। यह परमात्मा जैसा जगत् में सर्वत्र व्यापक है, उसी प्रकार आपके हृदयमें विद्यमान है। आप प्रतिदिन संध्या करनेके पश्चात् अपने हृदयपर हाथ रखिये और " यहां परमात्मा अपने संपूर्ण शक्तियोंसे परिपूर्ण है " इस बातका ध्यान कीजिये। जहांतक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो सके वहांतक उसके साथ अपनी एकतानता कीजिये और सब जगत् को भूलिये। यह एक उपाय है, कि जिससे अपने अंदर इंद्रशक्ति संचारित होने लगती है। यदि मन शांत रखकर आप उक्त प्रकार उपासना कर सकेंगे तो आपको नवीन शक्ति स्फुरित होनेका अनुभव निःसंदेह आ सकता है। वेद भी कहता है–

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युद्ध्यमाना अवसे हवन्ते ॥
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इंद्रः ॥

ऋ. २।१२।९

"सब मनुष्य जिसके विना विजय प्राप्त नहीं कर सकते और युद्ध करनेके समय जिसकी प्रार्थना करते हैं; जो विश्वका प्रमाण हुआ है और जो बलवान् होनेके कारण न हिलनेवालोंको भी हिलाता है, हे लोगो! वही इंद्र है।"

यह भावना मनमें धारण करते हुए अपने हृदयमें इंद्रशक्तिसे संपन्न परमात्माकी भक्ति कीजिये। भक्तिसे मन इतना तैयार कीजिये, कि आपके मनको परमात्माका अपने हृदयमें निवास स्पष्ट प्रतीत होने लगे। निरंतर ध्यान करनेसे ही यह बात सिद्ध हो जाती है। इसके पश्चात्—

(१३) अपने अंदर इंद्रशक्ति।

अपने अंदर जो इंद्रशक्ति है उसका भी स्मरण कीजिये। प्रिय पाठको! आप भी "इंद्र" हैं। इन्द्र शब्द जैसा परमात्माका वाचक है, उसी प्रकार "जीवात्मा" का भी वाचक है, इसलिये आप स्वयं इंद्र हैं। आपके अंदर बीजरूप जो इंद्रशक्ति है, उसीका विस्तार करना है। यदि आपके अंदर इंद्रशक्तिका बीज न होगा तो, बाहिरसे इंद्रशक्ति आकर वह आपके अंदर कार्य नहीं कर सकती। परमात्माके अमृतपुत्र आप हैं। जिस प्रकार पिताकी संपूर्ण शक्ति अंशरूपसे पुत्रमें आती है, उसी प्रकार परम पिता परमात्माकी व्यापक प्रचंड शक्तिका अल्प अंश आपके अंदर है, उस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिंदुरूप अंशमें परमात्माकी संपूर्ण शक्तियां सूक्ष्म रूपमें विराजमान हैं। इन सूक्ष्म और अल्प शक्तियोंका ही विकास करना है। विकासका प्रारंभ होनेके पूर्व आपको इस बातका पता होना चाहिये कि, "अपने अंदर परमपिताके वीर्यका अल्पसा अंश है" जिसका विकास सुनियमोंके द्वारा निश्चयसे होता है।

उस प्रकार विकासका निश्चय होनेकी संभावना आपके मनके अंदर स्थिर और दृढ होनेके पश्चात् पुरुषार्थ–प्रयत्नसे ही यह साध्य होगा, यह विश्वास रखिये। इस विषयमें किसी प्रकारकी संशयवृत्ति न रखिये। क्यों कि संशय ही विनाशका हेतु है। इसलिये आप पुरुषार्थसे सिद्धि मिल सकती है, इस बातपर विश्वास रखिये। इससे आपका मार्ग बहुत सुगम हो जायगा।

जीवात्माका नाम "क्रतु" है। यह शब्द पुरुषार्थका सूचक स्पष्ट है। वेदही आपको क्रतु कहता है, इसलिये अपने कर्तृत्वमें शंका करना आपको उचित नहीं है। ऐसा दृढ निश्चय अपने मनमें स्थिर कीजिये कि, "सब विघ्नोंको दूर करके मैं अवश्य इष्ट सिद्धि प्राप्त करूंगा।" उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि और पराक्रम अपने अंदर बढानेसे मनुष्य हरएक प्रकारकी उन्नति प्राप्त कर सकता है, इस वैदिक सिद्धांतको अपने मनके अंदर स्थिर करके अपनी इंद्रशक्तिका विकास करनेका दृढ निश्चय कीजिये।

वैदिक धर्मका अमली जीवन व्यतीत करनेसे ही इंद्रशक्ति विकसित हो सकती है। किसी भी अन्य धर्मपुस्तकमें इंद्रशक्तिका उल्लेख नहीं है और वेदमें इस इंद्रशक्तिका वर्णन करनेवाले सहस्रों मंत्र विद्यमान हैं। इससे स्पष्ट है, कि इंद्रशक्तिका विकास करनेमें वेदसे कितनी सहायता मिल सकती है। यद्यपि वैदिक जीवन व्यतीत करनेसे इंद्रशक्तिका विकास होता है, यह सत्य है; तथापि "वैदिक जीवन" का स्वरूप क्या है, इस बात का बहुतही थोडे मनुष्योंको पता है। इसलिये यह बात सारांशरूपसे यहाँ बतानेका यत्न करना है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१४) आपका ध्येय "अभ्युदय" है।

सूर्यका उदय होता है, चंद्र और नक्षत्र उदयको प्राप्त करते हैं; बीजसे वृक्षोंका उदय होता है, इस प्रकार सर्वत्र जगत् में अभ्युदय ही अभ्युदय है। हरएक सजीव पदार्थमें यह शक्तिका विकास देखिये और अनुभव कीजिये, कि यह " अभ्युदयका नियम " जगत्में कैसा कार्य कर रहा है! प्रकृतिके सूक्ष्म परमाणुओंसे सूर्यचंद्रादिकोंका उदय हो रहा है; बीजसे वृक्ष बढ रहे हैं; वीर्यबिंदुसे प्राणियोंके शरीर विकासको प्राप्त हो रहे हैं; इस प्रकार सर्वत्र शक्तियोंका विकास हो रहा है। यदि संपूर्ण सृष्टिके अंदर शक्तिका विकास कार्य कर रहा है, तो अशक्त स्थितिमें रहनेसे आपका कैसा कार्य चल सकता है? आपको भी उचित है, कि आप अपनी शक्तिका विकास करें और अन्योंकी अपेक्षा अधिक विकसित होकर आदर्शरूप बनें। वेद भी कह रहा है कि—

उद्यानं ते पुरुष नावयानम्। अ. ८।१।६

" हे मनुष्य! उन्नत होना तेरा कर्तव्य है, अवनत होना नहीं है।" ध्यान रखो कि अभ्युदय, उन्नति, प्रगति ये ही शब्द आपके मार्गदर्शक हैं। आप अन्य हीन बातोंको अपने मनमें न रखिये। आपके अंदर आत्मिक बल, बुद्धिकी शक्ति, मनका वीर्य, इंद्रियोंकी शक्तियां और शरीरकी ओजस्विता कितनी बढ सकती है, उसकी मर्यादा अभीतक किसीने निश्चित नहीं की है। आपके शरीरमें ऐसे शक्तिके केंद्र हैं, कि जिनका पता भी अभीतक किसीको लगा नहीं है। इससे स्पष्ट होता है, कि अपनी शक्तिके विकासका क्षेत्र आपके सामने अमर्यादित है। कोई हद नहीं है, और कोई मर्यादा नहीं है। इस लिये आपको अपनी हिंमत बढानी चाहिये और ऋषिमुनियोंके निश्चित किये हुए साधनमार्गसे आगे बढना चाहिये।

आप अपने आपको और अपने राष्ट्रको अन्योंकी अपेक्षा, पीछे न रखनेका, अर्थात् आगे बढानेका यत्न कीजिये। हरएक कार्यक्षेत्रमें यह नियम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ध्यानमें धारण कीजिये, कि आपको आगे बढना है और विघ्नोंके साथ युद्ध करके विघ्नोंको दूर भगाकर अपना धर्ममार्ग निष्कंटक करना है। जो नियम अन्यान्य कार्यक्षेत्रोंमें है, वही अपनी इंद्रशक्तिका विकास करनेमें भी है। इसलिये इस बातको कभी न भूलिये।

बंधनोंसे पूर्ण मुक्ति ही आपका ध्येय है। इसको आप निर्वाण कहिये, मुक्ति समझिये, या कोई अन्य नाम दीजिये। "पूर्ण स्वतंत्रता" जिसको वेद "स्व-राज्य" कहता है, वही आपका ध्येय है। आजकल जो "स्व-राज्य" शब्द राष्ट्रीय स्वतंत्रताका वाचक प्रसिद्ध है, वह इससे भिन्न है। वेदका "स्वराज्य" शब्द अध्यात्मदृष्टिमें आपके पूर्ण शक्तिविकासका ही नाम है। आधिभौतिक दृष्टिमें उसका अर्थ राष्ट्रीय स्वराज्य है, जिसका वैदिक तात्पर्य इतनाही है कि राष्ट्रकी संपूर्ण शक्तियोंका विकास। जिस प्रकार राष्ट्रकी संपूर्ण शक्तियोंका पूर्ण विकासका भाव राष्ट्रीय स्वराज्यमें है उसी प्रकार अपनी संपूर्ण शक्तियोंके विकासका भाव आध्यात्मिक स्वराज्यमें है। अस्तु। अपनी अनेक शक्तियोंमें जो मुख्य इंद्रशक्ति है, उसका विकास करनेका ध्येय इस समय आपको अपने सन्मुख धारण करना चाहिये। इतना निर्देश इस समय पर्याप्त है।

(१८) मृत्यु और अमरत्व।

हरएकके पीछे मृत्युका डर लगा हुआ है। परंतु मृत्यु, दुःख, कष्ट आदि जो हैं, वे हमारे उत्तम शिक्षक हैं। इस दृष्टिसे देखनेसे मृत्युका महत्त्व ध्यानमें आ सकता है। गलतियों और अशुद्धियोंसे बचानेकी सूचना दुःखों और कष्टोंसे मिलती है। मृत्यु इस नश्वर जगत् की साक्षी दे रहा है और नश्वर जगत्में शाश्वत आत्मा है, यह ज्ञान मृत्युको देखनेसेही होता है। मृत्यु न होगा, तो जन्मभी नहीं होगा। पुत्रजन्मका उत्सव देखना है, तो पूर्वजोंकी मृत्यु अवश्य सहन करनी चाहिए। इस प्रकार मृत्यु हमारी उन्नतिमें विलक्षण सहायता करता है। वृद्ध होनेके कारण कार्य करनेमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

असमर्थ हुआ शरीर दूर करके नवीन कार्यक्षम शरीर मिलनेके लिये मृत्युकी अत्यंत सहाय्यता है। जो मृत्यु पुराने शरीरको दूर करता है और नवीन शरीरके साथ योग होनेमें सहायता देता है, हमारी उन्नतिमें निःसंदेह अद्भुत सहायता करता है। इस दृष्टिसे सहायकारी मृत्युसे डरना उचित नहीं है। परंतु मृत्युके अंदर भी परमात्माका कृपाहस्त देखकर उसको भावी उन्नतिका सूचक समझना चाहिये। इसका यह भाव नहीं, कि हरएक मनुष्य अतिशीघ्र मरनेका यत्न करे; नहीं, हरएक मनुष्यको दीर्घ जीवनके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये। परंतु किसी समय कारणवश मृत्यु प्राप्त होने लगा, तो उससे डरना नहीं चाहिये।

मनुष्यकी शक्ति विकसित करनेके लिये समय समयपर दुःखों, कष्टों और मृत्युको भी आनंदसे स्वीकारना पडता है। सत्पक्षके ऊपर असत्पक्षका हमला होनेके समय सत्पक्षके साथ मिलकर असत्पक्षसे युद्ध करना होता है। यह आवश्यक कर्मही है। यह आवश्यक कर्तव्य न किया, तो उन्नति अशक्य है। इसी प्रकार समाज, जाति और राष्ट्रके संरक्षणका युद्ध आवश्यक होनेपर उसमें अपना भाग अवश्य करना पडता है। इस प्रकारके धर्मयुद्ध करनेसे उन्नति और न करनसे अवनति निश्चित होती है। इसलिये आत्मशक्तिका विकास करनेवालेको उचित है, कि इस प्रकारके धर्मयुद्धके लिये वह सदा तैयार रहे। युद्धके लिये तैयार होनेका अर्थ यही है, कि मृत्युके लियेही सिद्ध होना। इस प्रकारके कार्योंमें मृत्युभी उन्नतिका साधक होता है।

मृत्युसे उन्नति किस प्रकार होती है? यह प्रश्न यहां हो सकता है। इसका उत्तर यह है, कि "त्याग" भावसे उन्नति होती है, यह सब शास्त्रकार मानते ही हैं। पूर्वोक्त प्रकारके धर्मयुद्धमें तथा अन्य प्रकारके सत्कर्मोंमें जो मृत्यु होता है, उसको स्वीकार करनेके समय "सर्वस्वत्याग" करनेकी आवश्यकता है। यदि थोडेसे त्यागभावसे उन्नति होती है, तो सर्वस्वत्याग करनेसे कितनी उन्नति संभवनीय है इसका विचार पाठक करें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्यागभावसे जो संस्कार आत्माके ऊपर होते हैं, उन संस्कारोंसे आत्मिक बल बढता है, इस रीतिसे और इस क्रमसे जातिके हितके लिये आत्मसमर्पण करनेके समय होनेवाले मृत्युसे आत्मिक बलका विकास होता है, जो इंद्रशक्तिके विकासका प्रधान हेतु है।

यहां कोई यह न समझे, कि इस प्रकारके सार्वजनिक कर्ममें देहपात होनेसे अपना सर्वस्व नष्ट हो जाता है। प्रत्युत इस प्रकारकी मृत्युसे आत्मिक बल विलक्षण बढ जाता है, जो आगामी जन्ममें विना मेहनत प्राप्त होता है। इस प्रकार क्रमसे उन्नति होती है, इसलिये हरएकको उचित है, कि वह मृत्युमें परमेश्वरका शुभ मंगलमय हाथ देखें और मृत्युको भी अपना सहायक माने।

जगत्में मृत्यु है, इसलिये अमरत्वकी प्राप्ति करनेकी अभिलाषा मनुष्यमें उत्पन्न होती है। व्यक्तिके पीछे मृत्यु लगता है, परंतु समष्टिको मृत्युका कष्ट नहीं होता। व्यक्ति मरणधर्मसे युक्त है, परंतु समष्टि अमर है। एक एक व्यक्ति मरती है, परंतु वह मनुष्य जिस जातिका एक अवयव होता है, वह जाति अमर होती है, इसलिये मृत्युसे तैर जाने और अमरत्व प्राप्त करनेका उपाय यह है कि, मनुष्य वैयक्तिक अहंकारको छोड दे और सामुदायिक जीवन अधिकाधिक व्यतीत करे। जितना सामुदायिक जीवनका क्षेत्र अधिक व्यापक होगा, उतना अमरपन भी अधिक होगा, यह बात यहां स्पष्ट हो गई है। अकेले रहनेमें मृत्यु और समुदायके रूपमें रहनेसे अमरपन इस प्रकार होता है। यह मृत्यु और अमरपनका संबंध देखकर उसको अपने जीवनमें ढालनेका यत्न हरएकको करना चाहिये।

परमात्मा, जीवात्मा, मृत्यु और अमरपनका इस प्रकारका संबंध विचार की आंखसे देखिये और अपनी शक्ति विकसित करनेके लिये परमात्माकी अपने हृदयमें भक्ति कीजिये; जीवात्माकी शक्तियोंका निश्चित ज्ञान प्राप्त कीजिये; मृत्युकी सहाय्यता देखिये और सामुदायिक जीवनसे अमरत्वकी प्राप्ति किस प्रकार होती है, इस बातका अनुभव कीजिये। इनके विषयमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आपका निश्चय हुआ, तो समझ लीजिये कि इंद्रशक्तिका विकास करनेकी आपकी योग्य तैयारी हो गई है।

(१६) इंद्र और वृत्रका युद्ध।

वेदमें "इंद्र और वृत्रका सनातन युद्ध" वर्णन किया है। यह युद्ध सनातन है। इसी युद्धसे अंतमें इंद्रका विजय होता है और इंद्रकी शक्ति विकसित होनी है। वृत्रको इंद्र क्यों मारता है और इन दोनोंका सनातन युद्ध क्यों होता है, यह बात समझनेके लिये वृत्रकी कल्पना पहिले होनी चाहिये। सैकडों वेदमंत्र इस युद्धका मनोहर वर्णन कर रहे हैं, वे सब मंत्र देखनेके लिये यहां स्थान नहीं है। तथापि इस लेखका कार्य केवल वृत्रका स्वरूप जाननेसे ही हो सकता है। "वृत्र" का स्वरूप इसी शब्दसे ज्ञात हो जाता है। जो चारों ओरसे घेरता है उसको वृत्र कहते हैं। घेरनेवालेका नाम वृत्र है। घेरनेका अर्थ प्रतिबंध करनेसे है। इंद्र अपना प्रभाव बढाना चाहता है, उसको चारों ओरसे घेरकर जो प्रतिबंध करते हैं, उनका नाम वृत्रासुर है। इसी लिये प्रभाव बढानेवाले इंद्रको उचित है, कि प्रतिबंध करनेवालेके साथ युद्ध करे और उसका पराभव करके अपना प्रभाव बढावे। इंद्र और वृत्रके युद्धका यही तात्पर्य है। अब इसका स्वरूप बाह्य सृष्टिमें तथा आंतरिक सृष्टिमें देखना चाहिये।

पाठको! यदि आप अपने अंदर हृदयमें और बाह्य जगत्में अपनी विचारकी आंख खोलकर देखेंगे, तो आपको पता लग जायगा, कि आपको प्रतिबंध करनेवाली शक्तियां अनेक हैं। आपकी प्रगतिमें जो प्रतिबंध डालते हैं, वेही आपके वृत्र हैं और उनके बीचमें आप ही इंद्र हैं। आपको उनके साथ सदा सर्वदा युद्ध करना अत्यावश्यक है। यदि आप इस युद्धसे पीछे हटेंगे, तो आपका पूर्ण पराजय हो जायगा और आपकी इंद्रशक्ति नष्ट हो जायगी। परंतु यदि आप बाह्य और आंतरिक प्रतिबंधोंको तोडकर अपनी स्वतंत्रता सिद्ध करेंगे, तो आपके प्रभावका दिव्य तेज चारों ओर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फैल जायगा। यह इंद्र और वृत्रोंके सनातन युद्धका सारांशसे स्वरूप है। अब इसीका थोडासा विस्तार करना आवश्यक है। वेद कहता है कि—

अप्रतीतो जयति सं धनानि।
प्रतिजन्यान्युत या सजन्या॥ ऋ. ४।५०।९

"जो (अ-प्रति-इतः) जो पीछे नहीं हटता है, वही उन धनोंको (सं-जयति) उत्तम प्रकारसे प्राप्त करता है, जो धन (प्रतिजन्यानि) वैयक्तिक अधिकारके तथा (स-जन्यानि) समाजके अधिकारके होते हैं।"

तात्पर्य यह है कि, वैयक्तिक और सामुदायिक विजय तब प्राप्त होगा, कि जब युद्ध करनेवाला वीर युद्धक्षेत्रसे पीछे न हटेगा। हरएक मनुष्य प्रतिक्षण युद्धमें है, इसी युद्धको "जीवन-युद्ध" कहते हैं। इस जीवनयुद्धमें जो प्रतिपक्षी है, वह आपको प्रतिबंध करनेके कारण आप इंद्र है और आपकी अपेक्षासे, वह वृत्र है। इसलिये आपको उचित है कि, आप उसके साथ युद्ध करके उसका पराजय करें और अपना जय संपादन करें।

यदि आप अपने चारों ओर देखेंगे, तो आपको सामाजिक राष्ट्रीय कार्यक्षेत्रमें बीसियों शक्तियां आपकी उन्नतिमें बाधा डाल रहीं हैं, इसका अनुभव हो जायगा। तथा अपने शरीरके अंदरभी रोगादि तथा दुष्ट भावनादि अनेक असुर खडे हैं, जो आपको प्रतिबंध कर रहें हैं। अपने आध्यात्मिक क्षेत्रमें रोग और दुष्ट भाव, आधिभौतिक युद्धक्षेत्रमें सामाजिक और राजकीय प्रतिबंध करनेवाले, तथा आधिदैविक युद्धक्षेत्रमें भूचाल अवर्षणादि विघ्न आपको घेर रहे हैं और आपको घेरकर आपको उठने नहीं देते हैं। इन प्रतिबंधक शक्तियोंका पराभव करना और अपने अभ्युदयकी सिद्धि करना आपका यहां आवश्यक कर्तव्य है।

यदि आप इस पद्धतिसे विचार करेंगे, तो आपको पता लग जायगा, कि इंद्र और वृत्रका युद्ध मानवी जीवनमें भी सनातन युद्ध है। मनुष्यके हृदयस्थानमें जो इंद्रका अंशावतार हुआ है, उसको उचित है, कि वह अपने अभ्युदयके मार्गमें प्रतिबंध करनेवाले इन वृत्रोंको पराजित करे और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपनी उन्नति प्राप्त करे। वेदमें जो इंद्र-वृत्रके युद्धका वर्णन है वह इस प्रकार सनातन युद्ध है, और जो हरएक मानवको करना है। जिस समय पाठकवृन्द इस सनातन युद्धका अनुभव करेंगे, उसी समय वेदके मंत्रोंका सनातन उपदेश उनके ध्यानमें आसकता है, और तब पता लग सकता है, कि वेदका आशय कितना गंभीर है, और उसका संबंध मनुष्यके प्रतिदिनके व्यवहारके साथ कैसा है। अस्तु। इस प्रकार प्रतिबंध करनेवाले असुरोंके साथ होनेवाले सनातन युद्धका स्वरूप है; अब इसीका अधिक विस्तारसे वर्णन करते हैं—

(१) प्रायः असुर अभावरूप ही होते हैं, जैसा " अ-सुर " यह शब्द ही " सुरोंका अभाव " बता रहा है। उसी प्रकार प्रकाशका अभाव, ज्ञानका अभाव, धैर्यका अभाव इ० हैं। यद्यपि अभाव शब्दसे किसी वस्तुविशेषका बोध नहीं होता, तथापि ये अभावरूपी असुर स्वयं वस्तुरूप न होते हुए भी बडे प्रतिबंध खडे कर देते हैं। ज्ञानका अभाव ही अज्ञान है। अज्ञान करके कोई वस्तु या पदार्थ नही हैं, तथापि यह असुर हरएक मनुष्यके मन और बुद्धिके कार्यक्षेत्रमें आकर बडे प्रतिबंध खडे करते हैं। गाढ अंधकार प्रकाशका अभाव ही है, तथापि कई प्रकारकी बाधाएं इस अंधकारसे उत्पन्न होती हैं। तात्पर्य वृत्र वास्तवमें तमःस्वरूपी अभावरूपी होनेपर भी हर स्थानमें बाधा उत्पन्न करता है।

(२) आत्मिक कार्यक्षेत्रमें आत्मिक बलका अभाव होनेके कारण कई मनुष्य शक्तियां होते हुए भी सबसे पीछे पडे रहते हैं, क्यों कि उनके अंदर इतना होसला नहीं होता कि आगे बढें। केवल इस बलके अभावके कारण उनकी सब प्रकारकी उन्नति बंद हो जाती है।

(३) वृत्रादि असुरोंका स्वरूप वेदमें अंधकारमय वर्णन किया है। वेद कहता है, कि जहां वृत्र जाता है, वहां अंधेरा होता है, इसका तात्पर्य ऊपर वर्णन किया ही है। हरएक क्षेत्रमें जहां अभावरूप असुर भासमान होता है, वहां अंधेरा वढता जाता है। इंद्र प्रकाशका प्रतिनिधि है और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसके विरोधी सब असुर अंधेरेके प्रतिनिधि हैं। इस जगत् में प्रकाश और अंधकारेका युद्ध हमेशासे चल रहा है।

(४) मनुष्यके मनोभूमिमें उत्साह, फूर्ति, उद्यमशीलता, धैर्य, गंभीरता, धार्मिक भाव आदि शुभ गुण प्रकाशसे संबंध रखते हैं, ये इंद्रके सहचारी " देवगुण " हैं। निरुत्साह, आलस्य, सुस्ती, भय, हीन वृत्ति आदि संपूर्ण अशुभ दुर्गुण अंधेरेके साथ संबंध रखते हैं और ये सब वृत्रके सहचारी " असुर गुण " हैं। इनका विस्तार बहुत है, जिसको पाठक स्वयं जान सकते हैं।

यदि पाठक इंद्रसूक्तके मंत्र पढेंगे, तो वहां इंद्रका प्रभाव और उत्कर्ष दिखाई देगा। यदि पाठकोंके मनमें इंद्रके मंत्रोंका भाव स्थिर हो जाय, तो उस मनमें भी प्रभावयुक्त प्रतिभा स्थिर रूपसे विराजमान हो जायगी और वहांसे चिंता और हीनता दूर हो जायगी। इंद्रसूक्तोंका भाव ठीक प्रकार ध्यानमें आनेके लिये हरएक स्थानके इंद्रशक्तिकी जैसी कल्पना होनी चाहिये, उसी प्रकार विरोधी असुरवृत्तिकी भी कल्पना होनेके लिये यहां नीचे एक कोष्टक देता हूं जिससे उक्त भाव अधिक स्पष्ट हो जायगा—

युद्धक्षेत्र	इंद्र और उसकी विभूति	वृत्र और उसकी दुर्भूति
बुद्धि	ज्ञान	अज्ञान
मन	उत्साह, शिव संकल्प,	चिंता, हीन विचार
इंद्रिय	इंद्रियकी शुभ प्रवृत्ति,	इंद्रियकी हीन वृत्ति
शरीर	फूर्तियुक्त नीरोग शरीर, आरोग्य	आलस्युक्त रोग पीडित शरीर
कुटुंब	एक विचारसे रहनेवाला परिवार	भिन्न विचारसे आपसमें झगडनेवाला परिवार
ग्राम	आरोग्यपूर्ण नगर	रोगी गांव
राष्ट्र	प्रगतिशील विजयी राष्ट्र	अवनत जाति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समाज	अभ्युदय प्राप्त करनेवाला समाज	झगडनेवाला समाज
अन्न पान	जो हितकारक पथ्य और बल वर्धक भोजन और पेय है।	जो बलहारक रोगवर्धक खाना होता हैं।
बाह्य विश्व	सूर्य, विद्युत्, दिन, प्रकाश	मेघ, रात्री, अंधेरा

इस छोटेसे कोष्टकसे पाठकोंको इंद्रशक्ति और असुर शक्तिकी व्यापकताकी और उनके सनातन युद्धकी कल्पना हो सकती है और यह कल्पना होनेके पश्चात् वे अपने आपको इस युद्धक्षेत्रमें देख सकते हैं। जिस समय अपने आपको इस युद्धक्षेत्रमें पाठक देखेंगे, तब उनको इंद्रशक्ति बढानेके उपाय ज्ञात हो सकते हैं। अनुष्ठानका प्रारंभ होनेके पूर्व पाठकोंकी इतनी तैयारी अवश्य होनी चाहिये।

इस प्रकार इंद्रके शत्रुओंका सामान्य स्वरूप है। हरएक स्थानमें तथा अवस्थामें इनका वास्तव्य है और योग्य दक्षता न रखनेपर इनका हमला हो जाता है। यदि अपनी यथायोग्य युद्ध करनेकी तैयारी न रही, तो हृदयकी इंद्रशक्ति दब जाती है। इस लिये इंद्रशक्तिका विकास करनेकी इच्छा करनेवालोंको सब प्रकारका पथ्य रखनेकी आवश्यकता होती है। यह पथ्य केवल खानपानका ही नहीं है, प्रत्युत सब प्रकारके अन्य व्यवहारोंमें भी रखना चाहिए।

ऋषिप्रणीत आचारशास्त्रोंमें इस पथ्य व्यवहारका विचार बहुत ही है, उसीका अतिसंक्षेपसे यहां सारांश लेता हूं—

(१७) इन्द्रशक्तिका घातक खानपान।

शक्तिके पोषण करनेका विचार जहां चलता है, वहां खानपानका विचार सबसे प्रथम करना चाहिये। विशेषतः आजकाल इस बातकी अत्यंत आवश्यकता है, क्यों कि इस समय " आसुरी पदार्थ" आर्योंके खानपानमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतने घुस गये हैं कि, उनको दूर करना कठिन हो गया है। जिन ऋषि-मुनियोंने आचारव्यवस्थापर इतना जोर दिया था और खानपानव्यवस्था यहांतक पूर्ण बनाई थी कि, वे "इच्छा-मरण" की शक्ति बढा सके थे, उसी देशमें आज वह ऋषिव्यवस्था टूट गई और पूर्णतासे आसुरी खानपान चल पडा है !!! किया क्या जाय ? परंतु ऐसा हुआ है, इसीलिये वैदिक धर्मियोंको अधिकाधिक प्रयत्न करना चाहिये और इंद्रशक्तिका विकास करनेकी ऋषिमुनियोंकी रीति पुनः प्रचारमें लानेका यत्न करना चाहिये।

आजकलके खानपानमें चा, काफी, सोडावाटर, तमाखु, भंग, मद्य, तेलके तले चटपटे पदार्थ, विविध प्रकारके उत्तेजक मसाले, डब्बोंमें भरकर बेचे जानेवाले खानेके पदार्थ, अनेक प्रकारके खट्टे और तीखे अचार आदि अनंत पदार्थ निःसंदेह आसुरी पदार्थ हैं, जो पेटमें जाकर खूनको बिगाड कर हृदयकी इंद्रशक्तिको हतबल कर रहे हैं, परंतु "फैशन" के शौकी मौज करते हैं और इस मौजके कारण अपना घात कैसा हो रहा है, इसकी कोई भी पर्वाह नहीं करता !!!

अखबारी दुनियांके अंदर "कामोत्तेजक औषध" की गोलियां और रस इतने बढ रहे हैं कि चतुर लोगोंको पैसा कमानेका दूसरा "सभ्य धंदा" ही मिलना अशक्य हुआ है !! इस विषयमें अधिक लिखनेकी यहां आवश्यकता नहीं है। और यहां न इतना विस्तृत स्थान है, परंतु अपथ्य खानपानकी व्याप्ति बतानेके लिये यहां इसका नामनिर्देश करना आवश्यक हुआ, इसीलिये लिखा है।

मनुष्यका शरीर, इंद्रियां, मन, बुद्धि आदि सब हमारे खानपानके साथ संबंध रखते हैं। आजकल मज्जातंतुकी निर्बलताका मूल कारण विपरीत आसुरी खानपान ही है। मस्तिष्ककी कमजोरीका मूल कारण विपरीत आसुरी खानपान ही है। मस्तिष्ककी कमजोरीका आदि कारण अपथ्य भोजनमें है। तथा प्रतिदिन जो विलक्षण बीमारियां बढ रहीं हैं, उनका हेतु वास्तविक रीतिसे अयोग्य खानपान तथा अयोग्य व्यवहारही है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परंतु " फैशन " की गुलामीके कारण मनुष्य इसका विचार नहीं करते और विपत्तिमें प्रतिदिन डूब रहे हैं। इसलिये वैदिक धर्मियोंको उचित है कि वे इस बातका विचार करें और स्वयं अनुष्ठान करके योग्य आचार, विचार और व्यवहारका प्रचार करें।

अपना शरीर देवताओंका मंदिर है, इस देवगृहमें कौनसा पदार्थ लाना और कौनसा न लाना, इसका विचार हरएक मनुष्यको करना चाहिये। परंतु आश्चर्यकी बात यह है, कि इसी बातका विचार सबसे कम किया जाता है, जिसका परिणाम आजकलकी नाना प्रकारकी आधियां और व्याधियां हैं !!!

देखिये, उत्तम शुद्ध जल पीना शरीरस्वास्थ्यके लिये लाभदायक है, परंतु चा, काफी, सोडावाटर ये उष्ण पेय तथा अन्य प्रकारके शीत पेय बाजारोंमें बेचते हैं और कोई इसको रोकनेवाला नहीं है !! कानूनमें " विष-प्रयोग " से किसीके जीवितका थोडे कालमें नाश किया तो अदालतोंमें इस गुन्हेगारको दंड होता है; परंतु उक्त अपेय पानोंके दुकानदार अल्प प्रमाणमें " विष–प्रयोग " कर रहे हैं, और उसको किसी कानूनसे रोका नहीं जाता, परंतु इन विषोंसे शीघ्र मृत्यु नहीं होता है !!! क्या यह आश्चर्य नहीं है ? यदि ऐसी बात ऋषिकालमें कोई करता, तो निःसंदेह वह वधदंडका भागी हो जाता !

उक्त पेयोंके अंदर विशेष प्रकारके विष हैं, जो शरीरमें घुस कर हर प्रकारसे जीवनशक्तिको कम करते हैं। यही कारण है कि जिससे नवीन बीमारियां उत्पन्न हो रहीं हैं, जिनके नाम प्राचीन ग्रंथोंमें देखे भी नहीं जाते !

तमाखू, बीडी, सिगरेट आदिके विज्ञापन बडे बडे राष्ट्रीय वृत्तपत्रोंमें भी फडकते हैं, परंतु ये पत्रकार सोचते नहीं कि जिनके अंदर राजकीय भावना की जागृति करनेके लिये ये अखबार चलाये जाते हैं, उनकेही स्वास्थ्यकी जड ये विज्ञापन काट देते हैं !!! धार्मिक और सामाजिक अखबारोंके विज्ञापनोंमें " ब्रह्मचर्यवटी, वीर्यवर्धक गोली और कामवर्धक गुटिकाएं "

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कम नहीं हैं ! जहां धर्मप्रचारके कार्यसाधक अखबारवाले अपने ग्राहकोंके स्वास्थ्यकी आहुति लेकर अपना स्वार्थसाधन करनेकी तैयारी कर रहे हैं, वहां अन्योंकी अवस्था क्या विचार करनी है ?

दवाईयोंके विज्ञापन तथा शरबतोंके इश्तिहार कोई कम घात नहीं कर रहे हैं। चरक और सुश्रुत पढनेसे पता लग सकता है कि औषधिप्रयोग किस प्रकार और कितनी सावधानतासे करना चाहिये। परंतु आजकल ऋषिमुनियोंके नाम भी अखबारोंमें रगडे जा रहे हैं। इसका हेतु "द्रव्य कमाना" ही केवल है।

यह "द्रव्यकी प्यास" जगत् में कितने अनर्थ करा रही है, इसका कोई ठिकाना नहीं ! इस लेखमें केवल सूचना मात्र लिखा है। पाठक सोचें और विचारें कि, शत्रुओंकी संख्या कितनी है। इन आसुरोंकी विरोधी शक्तिका प्रतिकार करके पाठकोंको अपनी "इंद्रशक्ति" विकसित करनी है।

उक्त विचारसे पाठक यह न समझें कि बाजारोंकी मिठाईकी दुकानें और दूधवालोंके स्थान तथा छावडीवालोंके व्यवहार सब उत्तम हैं। यद्यपि ये साक्षात् जहर नहीं बेचते, तथापि ये इतने अस्वच्छ और अपवित्र रहते हैं और इनके दुकानोंमें इतनी गंदगी भरी रहती है, कि कोई भी अपने आरोग्यका हितचिंतक इनसे कोई पदार्थ लेकर खा नहीं सकता। इसलिये इनको स्वच्छता और पवित्रताकी दीक्षा देनी अत्यावश्यक है। इस खान-पानके विषयमें इस दृष्टिसे पाठक विचार करें और सोचें कि अपनी शक्ति क्षीण करनेके लिये किस मिषसे ये शत्रु बैठे हैं !!!

इंद्रशक्तिके घातक खानपानके विचारके अंतमें मांसाहारका विचार करना चाहिये। मांसभोजन करनेवाले जो लोग होते हैं उनको फी सदी ३६ बीमारियां अधिक होती हैं और फलभोजियोंको उतनी कम होती हैं। इससेभी अधिक इस विषयपर लिखा जा सकता है, परंतु इतनाही यहां पर्याप्त है। इंद्रशक्तिका विकास करनेके अनुष्ठानके लिये नीरोग जीवनकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्यंत आवश्यकता है, इसलिये जिस खानपानसे आधि और व्याधि बढ जाती है, वह खानपान सर्वथा दूर करना चाहिये। अब इंद्रकी साधक शक्तिका विचार करेंगे—

(१८) इंद्र और मरुत् !

इंद्र और मरुतोंका संबंध अत्यंत निकट है, इसकी साक्षी "इंद्रा-मरुतौ" यह वैदिक देवता दे रही है। इंद्रके सूक्तोंमें मरुतोंका और मरुतोंके सूक्तोंमें इंद्रका संबंध आता है। यह संबंध विचार करने योग्य है। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वा पृतना जयासि।
ऋ. ८।९६।७

"हे इंद्र! तेरी मित्रता मरुतोंके साथ रहे, इसीसे तेरा विजय इन सब युद्धों में होगा" तथा—

मरुत्वाँ इंद्र वृषभो रणाय ॥ ऋ. ३।४७।१

"इंद्र (वृष-भः) बलवान् तथा (रणाय) युद्धके लिये समर्थ है।" तथा—

मरुत्वान्नो भवत्विद्र ऊती। ऋ. १।१००।१

"मरुतोंसे युक्त इंद्र हमारा रक्षण करनेवाला होवे।" और देखिये—

मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा। ऋ. ७।५६।२३

"मरुतोंके साथ होनेसे शूर और युद्धोंमें विजयी होता है।" इस प्रकार अनेक मंत्रोंमें वर्णन है। इसका तात्पर्य यहां देखना चाहिये। "मरुत्" शब्दका अर्थ अध्यात्ममें "प्राण" और अधिदैवतमें "वायु" है, यह कई वार बताया ही है। अधिदैवतके वायुका संबंध हमारे प्राणसे निश्चित है। अधिदैवतका वायु विश्वव्यापक प्राण है और अध्यात्मका प्राण शरीरके अंदरका प्राण है। इस प्रकार इनका अभेद संबंध है। तात्पर्य अपने प्रचलित विषयका विचार करनेके संबंधमें—वैयक्तिक विकासका विचार कर्तव्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है, इस लिये यहां " मरुत् " शब्दका अर्थ " प्राण " ही है। प्राण अनेक होनेसे ही मरुत् शब्दका बहुवचन उक्त मंत्रोंमें आया है, वह सार्थ है। तात्पर्य यह है कि " प्राणोंके साथ इंद्रका बल बढता है " यह उक्त मंत्रोंका आशय है। इस प्रकार प्राणायामका संबंध इंद्रशक्तिके विकासके साथ है। प्राणायामसे प्राणोंका बल बढ जाता है और प्राणोंके बल बढनेसे अपनी इंद्रशक्ति विकसित होती है।

प्राणोंका इंद्रके साथ वही संबंध है कि जो सैनिकोंका सेनापतिके साथ होता है। मरुद्गण ये इंद्रके सैनिक होनेका वर्णन वेदमें है, इसका भी यही तात्पर्य है। जिस प्रकार निःशक्त सैनिकोंका सेनापति निर्बल होता है, ठीक उस प्रकार जिसके प्राण निर्बल होते हैं उसकी, इंद्रशक्ति भी निर्बल ही होती है।

पाठको! यहां देखिये कि वेदके मंत्र किस प्रकार आपका बल बढानेकी सूचना दे रहे हैं। इस लिये आपको उचित है, कि आप इस ढंगसे वेद-मंत्रोंका विचार कीजिये और शक्तिका विकास करनेके सनातन नियम जान-कर उनके अनुष्ठानसे अपनी शक्ति विकसित करनेका पुरुषार्थ कीजिये।

(१९) प्राणायाम की पूर्व तैयारी।

इस समयतकके विचारसे पाठकोंको पता लगाही होगा, कि प्राणायाम एक उपाय है कि, जिससे इंद्रशक्ति विकसित हो जाती है। इसलिये क्रम-प्राप्त प्राणायामकी पूर्व तैयारीका विचार करना है।

स्थानशुद्धि– प्राणायामका विचार करनेके समय प्राणायामकी विधि जाननेके पूर्व किस स्थानपर प्राणायाम करना चाहिये, इस बातका ज्ञान अत्यावश्यक है। क्यों कि अयोग्य स्थानमें प्राणायाम करनेके कारण कई प्रकारकी बीमारियां उत्पन्न होती हैं। ऋषिकालकी सब व्यवस्था अब रही नहीं और जो व्यवस्था आज कल प्राप्त हुई है, वह स्वास्थ्यसुखकी दृष्टिसे अत्यंत हानिकारक है। ऋषिकालमें आयुके प्रथमके २५ वर्ष गुरुकुलके अरण्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वासमें जाते थे। पचीस वर्षके पश्चात् के २५ वर्ष गृहस्थाश्रममें नगरमें व्यतीत होते थे। इनके पश्चात् अर्थात् ५० वर्षकी आयुके नंतरकी आयु प्रायः वानप्रस्थ और संन्यासके निमित्त वनमें ही व्यतीत होती थी। अर्थात् आयुका बहुतसा भाग वनके शुद्ध वायुमंडलमें व्यतीत होता था। परंतु आज कल बालपनसे लेकर मरनेतकका संपूर्ण आयुष्य तंग गलियोंके तंग कमरोंमें जाता है। इस प्रकारके कमरोंमें प्राणायाम करना कदापि उचित नहीं है।

मकानके पाससे गली नालीयां और मोरियां चल रही हैं, वहांसे अनेक मक्खियां कमरोंमें आ रही हैं, दुर्गंधयुक्त वायुसे मकानके कमरे भर रहे हैं, एक एक मकानमें अनेक कुटुंब खींचा खींच करके निवास कर रहे हैं, इस प्रकारके स्थान प्राणायामके लिये सर्वथा अयोग्य हैं।

मनुष्यके उच्छ्वासका जो दूषित वायु बाहिर जाता है, वह विषयुक्त होता है। उच्छ्वासका विषपूर्ण वायु किसीके फेंफडोंमें सदा जाता रहा, तो उसकी अकाल मृत्यु होनेमें कोई शंकाही नहीं है। तंग गलियोंमें यही बात होती है।

इसलिये प्राणायामके लिये स्थान ऐसा चाहिये कि जहां वायु और सूर्यप्रकाश विपुल आता हो, जहां अपूर्व स्वच्छता और प्रसन्नता हो, घरके बाहिर अच्छा उद्यान हो और उसमें विविध प्रकारके सुगंधित फूल विकसित हुए हों। तथा आसपास किसी प्रकारकी अशुद्धि न हो।

इस प्रकार स्थानशुद्धिका विचार अवश्य करना चाहिये। स्थान एकांत हो, रम्य हो, प्रशस्त और निर्मल हो, तथा वहां उतने ही पदार्थ हों, कि जो इस इंद्रशक्तिके विकासके साथ संबंध रखते हों। जिस कमरे में रहना है, वह सब स्थान प्रातिदिन स्वच्छ और शुद्ध किया जाय और किसी प्रकार अस्वच्छता वहां न हो। क्यों कि जहां मलीनता होती है, वहां इंद्रशक्ति क्षीण होती है।

यदि वृक्षके नीचे बैठनेके लिये स्थान प्राप्त होगा तो सबसे उत्तम है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्थान प्रशस्त होनेके साथ साथ उपद्रव रहित होना चाहिये। "घर" का नाम ही वेदमें "क्षय" है, इसलिये क्षयके साथ जितना कम रहा जाय उतना अधिक अच्छा है। घरके बाहिर रहनेसे सूर्यके द्वारा प्राप्त होनेवाली इंद्रशक्तिके साथ मनुष्यका संबंध आता है, इसलिये इंद्रशक्तिकी वृद्धि होनेमें सहायता हो जाती है। वृक्षोंमें भी वडका वृक्ष इस कार्यके लिये बडा उपयोगी है। वडके रसके कई गुण हैं। इस वडमें ऐसी एक विलक्षण शक्ति है, कि जो मनुष्यको दीर्घजीवी बना देती है। यह शक्ति इस वृक्षमें रहती है, इसीलिये वडका वृक्ष प्रायः अति दीर्घजीवी होता है। ऋषिमुनि वडके नीचे अथवा पास रहते थे, इसका कारण केवल इसकी छाया नहीं है, प्रत्युत उसके अन्य गुण ही है। पाठकोंमें जो वैद्य हैं, उनको इसका अधिक विचार करना चाहिये। अस्तु।

स्थानशुद्धिका विचार करनेके समय और एक बातका अवश्य विचार करना चाहिये, वह बात "धूलि" है। घरमें झाडू लगानेके समय जो धूलि अथवा कचरा हवामें उडता है, तथा मार्गपरसे जो धूली वायुसे हवामें उडती है, कपडे झटकनेके समय जो कचरा उडता है, तथा इस प्रकार अनेक कारणोंके सबब जो धूलिके कण हवामें उडते हैं, वे भी प्राणायामके लिये और उसी प्रकार साधारण श्वासके लिये भी, हानिकारक हैं। यह धूलि फेंफडोंमें जाकर अनेक प्रकारके अनर्थकारक रोग उत्पन्न करती है। इस लिये स्थानशुद्धि करनेके समय धूलि न उडे ऐसा प्रबंध करना चाहिये। यह बात अनेक प्रकारसे साध्य हो सकती है। झाडू देनेके पूर्व पानीका थोडासा छिडकाव करनेसे अथवा लकडीका भूसा गीला करके उसको झाडूके पूर्व भूमिपर छिडकनेसे तथा कई अन्य उपायोंसे धूलि उडनेको रोका जा सकता है। नगरके निवासकी अपेक्षा उद्यानका तथा वनका निवास अधिक आरोग्यवर्धक होनेका कारण ही मुख्यतया यह है।

वैदिक कालके घरोंके साथ उद्यान अथवा पुष्पवाटिकाएं अवश्य रहती थीं। "उद्याननगरी" की कल्पना वैदिक है। वेदमें "उद्यान" शब्दका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थ जैसा "बाग" है, उसी प्रकार उसका उर्थ उन्नति भी है। ऊपर चढना, उन्नत होना यह भी अर्थ "उद्यान" (उत्-यान) शब्दमें है। इसका तात्पर्य यह है, कि घरके साथ उद्यान और पुष्पवाटिका रहनेसे उस घरमें रहनेवालोंकी उन्नति होनेमें सहायता होती है। घरके साथ उद्यान रहनेसे धूलीकी बाधा कम होती है, यह भी एक कारण है कि जो मनुष्योंकी आयु बढाता है। इसके अतिरिक्त भी अनेक लाभ हैं, जिनका उल्लेख यहां करनेकी आवश्यकता नहीं है।

वैदिकी धर्मको आचरणमें लानेके लिये इस प्रकार उद्याननगरीकी रचना होनी चाहिये। यदि इसकी सिद्धता होनेमें देरी होगी, तो कमसे कम "इंद्रशक्ति" का विकास करनेके इच्छुकोंको उचित है कि वे मिलकर एक छोटासा सुरम्य स्थान नगरके बाहिर बनावें कि जहां इसका अनुष्ठान हो सकता है। तबतक हरएक पाठक अपने स्थानमें ही जहांतक हो सके पवित्रता रखनेका यत्न करें और अपनी उन्नति करनेका पुरुषार्थ करें।

(२०) आसन और प्राणायाम।

उक्त प्रकारके पवित्र स्थानमें आसनोंका अभ्यास करना चाहिये। अपनी "इंद्रशक्ति" बढानेके लिये "आसनोंका अभ्यास" अत्यावश्यक है। आसनोंसे जिस प्रकार शरीर निर्दोष हो जाता है, वैसा किसी अन्य व्यायामसे नहीं। आसनोंमें यह खूबी है कि श्वासोंकी संख्या न बढते हुए व्यायाम होकर नसनाडियों और पुठ्ठोंकी शुद्धता होती है। यह शुद्धता इंद्रशक्तिके विकासके लिये अत्यावश्यक है।

शरीर शुद्धिके साथ बलसंवर्धनकी इच्छा हो तो "सूर्यभेदन" व्यायाम कर सकते हैं। यह आपकी इच्छापर निर्भर है। यह कोई अत्यावश्यक बात नहीं है। परंतु आसनों और इस व्यायामके पश्चात् शीर्षासन करना अत्यावश्यक है,और यह कमसे कम आधा घंटातक करना चाहिये। अन्य आसनोंका अभ्यास यद्यपि लाभकारी हैं तथापि प्रतिदिन आवश्यक है, ऐसी बात

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं है; जैसा शीर्षासन प्रातिदिन अत्यावश्यक है। तथा इंद्रशक्तिवर्धनके-लिये जो शीर्षासन करना होता है, उसमें श्वास जितना शांतिसे चलाया जाय उतना लाभकारी होता है। अर्थात् वेगसे चलाना नहीं चाहिये। अभ्यास होनेपर शीर्षासनका श्वासपर इष्ट परिणाम होने लगता है। जो शीर्षासनके अभ्यासी हैं उनको पता है कि पंद्रह मिनीट शीर्षासनमें स्थिर रहनेके पश्चात् श्वासकी गति स्थिर,शांत,गंभीर और मंद हो जाती है और यह अत्यंत इष्ट है। चित्तको स्थिर करनेके कार्यमें इस शीर्षासनसे अत्यंत लाभ होते हैं। मज्जातंतुओंका स्वास्थ्य इससे प्राप्त होता है। जिनका मस्तिष्क कमजोर है,वे इस अभ्याससे बहुतही लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसके अन्य लाभ बहुतही हैं,परंतु उनका उल्लेख यहां करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार प्राणकी गति शांत और गंभीर होनेके पश्चात् तथा आसनोंके अभ्यासका परिश्रम दूर होनेके नंतर प्राणायामका समय आ जाता है।

यहां इस बातका स्मरण रखना चाहिये कि यदि प्राणायामका अभ्यास विशेष अधिक करना है, तो उसके पूर्व या उन दिनोंमें ऐसा कोई व्यायाम करना प्रशस्त नहीं है, कि जिससे श्वासोंकी संख्या अत्यधिक होती है। परंतु अपने कार्यके लिये अधिक प्राणायाम करनेकी भी आवश्यकता नहीं है। साधारण प्राणायाम वह होता है कि, जो दिनमें एकवार या दो वारही किया जाता है। इसके लिये प्रातः और शामका समय प्रशस्त होता है विशेष प्राणायामका अभ्यास जो करना चाहते हैं, वे दिनमें चार वार करते हैं। और प्रति समय दो दो घंटे अभ्यास करते हैं। ऐसे विशेष प्राणायाम करनेवालोंको ऐसा कोई व्यायाम करना नहीं चाहिये कि जिससे श्वासोंकी संख्या अधिक होती हो। परंतु हमारे कार्यके लिये इतना अधिक प्राणायाम करनेकी आवश्यकता नहीं है। सबेरे दस पंद्रह मिनिट और उतनाही शामको अभ्यास पर्याप्त है। इस लिये पूर्वोक्त प्रकार आसनोंके अभ्यासके पश्चात् प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इंद्रशक्तिको बढानेवाले प्राणायामका अभ्यास करनेके लिये सिद्धासन, सुखासन या बद्धपद्मासन प्रशस्त होता है। आसन ठीक प्रकार लगाकर पीठकी रीढ ठीक सीधी रखकर गर्दन और सिर सम रेखामें रखना चाहिये। पश्चात् परमेश्वरका स्मरण करके " मैं उस परमात्माके अंदर हूं और वह मेरे अंदर तथा चारों ओर बाहिर है " इस विचारसे अपना मन भरपूर करना चाहिये। चार पांच मिनिट यह विचार अपने मनके अंदर स्थिर करनेके पश्चात् " अपने हृदयके अंदर जो बीजरूप इंद्रतत्त्व है " उसका चिंतन कीजिये। हृदयपर हाथ रख कर कहिए कि " इस मेरे हृदयके स्थानमें बीजरूप इंद्रशक्ति है, जो अंतरिक्षव्यापक इंद्रतत्त्वका अंश है, यह शक्ति प्राणशक्तिके आयामसे बढती है, इस लिये अब जो प्राणायाम मैं करूंगा, उससे मेरी इंद्रशक्ति बढ जायगी। " यह भावना अपने मनके अंदर पांच मिनिट तक धारण कीजिये और इस बात पर विश्वास रखिये कि परम पिता परमात्माकी कृपासे आपकी इंद्रशक्ति अवश्य ही बढेगी। कृपा करके इस समय कमसे कम अपने मनके अंदर कुतर्क न रखिये। क्यों कि मनमें कुतर्क आने लगे तो परम पिताके साथ अपने आत्माकी एकतानता नहीं होती, और जो शक्ति प्राप्त होनी है, वह प्राप्त नहीं होती। इसलिये इस समय कोई कुतर्क मनमें खडे न कीजिये।

इतना होनेके पश्चात् बाह्य मरुतोंका अंश ही अपने अंदर प्राण बना है और अपने प्राणकी शक्ति विश्वव्यापक मरुतोंकी सहायतासे बढ सकती है। इसके लिये प्राणायाम ही एक उपाय है, तथा जिस प्रकार मरुतोंसे इंद्रशक्ति बढती है, उसी प्रकार प्राणोंके बलसे अपनी इंद्रशक्ति अवश्य बढेगी, क्यों कि बाह्य जगत् का जो व्यापक नियम है, वही अपने अंदरके छोटे विश्वमें भी कार्य कर रहा है। यह भाव एक दो मिनिट अपने स्थिर कीजिये और मन शांत, गंभीर और ईश्वरकी भक्तिसे परिपूर्ण करके निम्न लिखित विधिके अनुसार प्राणायाम कीजिये।

नाकके द्वारा मंद वेगसे श्वास फेंफडोंके अंदर पुरा भर दीजिये। श्वास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रथमतः उदरकी ओरकें फेंफडोंके भागमें चला जाय और क्रमसे फेंफडोंके ऊपरके भाग पूर्ण भर जांय। इस प्रकार "पूरक" कीजिये। पूरक होनेके पश्चात् थोडासा "कुंभक" कीजिये। पश्चात् मंद वेगसे "रेचक" कीजिये। रेचकके समय एकदम श्वास न छोड दें। इस विषयमें ठीक प्रकार सावधानता रखिये कि रेचकके समय बहुत घबराहट न हो और एकदम श्वास न छूटे। यदि एकदम श्वास छोडना पडा, तो वह बलकी हानि करता है। इसलिये रेचक मंद वेगसे ही होना चाहिये। पूरक और रेचकके समय नाकसे ही श्वासको लेना चाहिये। श्वासके आने और जानेका शब्द बहुत बडा नहीं परंतु मन्द शब्द होता रहे। यह प्राणायाम इंद्रशक्तिका विकास करनेके लिये ही खासकर है। इसमें "बाह्य कुंभक" की आवश्यकता नहीं है, "अंतः—कुंभक" भी बडी देरतक करनेकी आवश्यकता नहीं है।

ये प्राणायाम प्रथम दिन दोचार किये जांय, और प्रतिदिन अथवा प्रति दो दिनोंमें एक दो बढाये जांय। जब अधिक संख्या अर्थात् दस या पंद्रह तक प्राणायामोंकी संख्या हो जाय, तब किंचित् कुंभक बढानेका विचार करना योग्य है। परंतु स्मरण रहे कि, अपनी शक्तिसे अत्यधिक कुंभक करना योग्य नहीं, इसलिये शनैः शनैः प्राणको वशमें लाकर कुंभकका प्रमाण अपनी शक्तिके अनुसार रखिये। यह प्राणायाम शनैः शनैः बढानेपर १५ की संख्या पंद्रह दिनोंमें अथवा एक मासमें हो जाती है। तत्पश्चात् १५ या २० मिनिटतक ही सबेरे और उतना शामको अभ्यास करना पर्याप्त हैं, इससे अधिक नहीं। इस अवधिमें जितने प्राणायाम होंगे, उतने पर्याप्त हैं। जैसा जैसा कुंभक बढेगा, उतनी प्राणायामोंकी संख्या कम होती जायगी, यह बात यहां पाठकोंके ध्यानमें आगई होगी। खाली पेट रहनेकी अवस्थामें यह अभ्यास करना योग्य है। प्राणायाम करनेके पश्चात् आधा घंटा व्यतीत होनेके पश्चात् खानपान किया जा सकता है, परंतु खानेके पश्चात् तीन चार घंटे उक्त प्राणायामका अभ्यास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करना नहीं चाहिये।

आसनोंका अभ्यास पर्याप्त प्रमाणमें सबेरे करनेपर शामको फिर करनेकी जरूरत नहीं है। ऐसी अवस्थामें शामको केवल पंद्रह मिनिट शीर्षासन करना पर्याप्त है। शेष अभ्यास पूर्ववत् करना चाहिये।

इस प्रकार नियमपूर्वक पांच या छः मासतक अभ्यास करनेसे इंद्रशक्ति बढनेका अनुभव आने लगता है, विशेषतः बुद्धि और मानसिक शक्तिमें उन्नति स्पष्ट अनुभवमें आती है। इसके पश्चात् भी यह अभ्यास नियम-पूर्वक चलाना चाहिये और दिव्य इंद्रशक्ति जितनी बढाई जा सकती है, उतनी बढानी चाहिये। इसके अभ्यास करनेके समय वीर्यकी रक्षा करनेसे बडे लाभ होते हैं। वीर्यरक्षा करनेके उपाय " ब्रह्मचर्य " पुस्तकमें पाठक देख सकते हैं।

(२१) प्रयत्नसे इंद्रशक्तिका वर्धन।

अपनी "इंद्रशक्ति" का संवर्धन करनेके अनुष्ठानके विषयमें वेदके अनेक मंत्र मनन करने योग्य हैं। उनमेंसे थोडे मंत्र यहां देता हूं—

इंद्रं वर्धन्ति कर्मभिः। ऋ. ९।४६।३

"पुरुषार्थ प्रयत्नोंसे इंद्रका सामर्थ्य बढाते हैं।" इस मंत्रसे यह स्पष्ट हो जाता है कि, इंद्रशक्तिके संवर्धनके साधक जो कर्म हैं, वे करनेसे ही इंद्रशक्ति बढ जाती है। ऋषिमुनि लोग इसी रीतिसे अपनी इंद्रशक्ति बढाते रहे। उस प्रकारके पुरुषार्थ प्रयत्न करनेपर इस समय भी चतुर लोग अपनी इंद्रशक्ति बढा सकते हैं। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

इंद्रं बलेन वर्धयन्। यजु. २१।३२

" बलके साथ इंद्रका संवर्धन करना है।" इस मंत्रभागमें पुरुषार्थ प्रयत्न बलके साथ करना चाहिये, यह बात स्पष्ट कर दी है। उपनिषद् भी कहता है कि—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः। मुंड० ३।२।४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" बलहीन मनुष्य इस आत्माको प्राप्त नहीं कर सकता । " यह बात जैसी आत्माके विषयमें सत्य है उसी प्रकार इंद्रशक्तिकी वृद्धि करनेमें भी सत्य है। निर्बल मनुष्य किसी प्रकारकी उन्नति प्राप्त ही नहीं कर सकता, इसीलिये " वैदिक धर्ममें" बल-संवर्धनपर बहुतही जोर दिया है। शारीरिक, इंद्रियविषयक, मानसिक और बौद्धिक बलके साथ जो योग्य प्रयत्न किये जाते हैं, उनके द्वारा इंद्रशक्ति बढ जाती है और यह बढी हुई इंद्रशक्ति फिर पूर्वोक्त बलोंको द्विगुणित करती है। यह अन्योन्याश्रय विचार करने योग्य है। बलसे इंद्रशक्ति बढती है और इंद्रशक्तिसे बल बढ जाता है। पाठकों ! इस नियमको ठीक प्रकार स्मरण रखिये। यह नियम आपकी उन्नति करेगा। इस विषयमें निम्न लिखित वचन देखिये—

इंद्र इंद्रियैः.........शर्म यंसत् ॥ ऋ. १।१०७।२

"इंद्र अपनी इंद्रशक्तियोंसे सुख देता है" इंद्रकी शक्ति इंद्रियोंमें आती है और वह सुख देती है, तथा इंद्रियोंके बलसे ही जो अनुष्ठान किया जाता है, उससे इंद्रका संवर्धन होता है। यह परस्पर सहाय्य करनेका प्रश्न अत्यंत महत्त्वका है। इस नियमके ऊपर ही कई सामाजिक और राष्ट्रीय नियम बने हैं। परस्पर सहकारिताका उपदेश इस प्रकार वेद दे रहा है। अस्तु। पूर्वोक्त रीतिसे इंद्रशक्तिका संवर्धन किया जाता है, इसमें प्रारंभ शुद्ध विचारोंके साथ किया जाता है, अर्थात् अपने अंदर शक्तिपोषणके विचार धारण करना मुख्य बात है। हीन विचारोंको मनमें कोई स्थान देना नहीं चाहिये। इस विषयमें वेदकी आज्ञा स्पष्ट है, देखिये—

इंद्रं वर्धन्तु नो गिरः। ऋ. ८।१३।१६

" हमारी वाणी इंद्रशक्तिका संवर्धन करे । " वाणीसे संवर्धन करनेका उपाय यह है कि, उत्तम ओजस्वी भावोंके साथही हमारे मुखसे शब्द निकलें। कोई ऐसा शब्द हमारे मुखसे न निकले कि जिससे हीन भाव अथवा निर्बलताका विचार व्यक्त होता हो। इसमें मानसशास्त्रका एक बडा भारी तत्त्व है। जो भाव शब्दोंद्वारा व्यक्त होता है, वह मनमें जम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाता है, इसलिये हीन भावनाके शब्द बहुतही बुरा परिणाम करते हैं, इस कारण वेद आपको बडी सावधानताकी सूचना दे रहा है। इस विषयमें और देखिये—

तमिद्वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम् । ऋ. ८।१३।१८

" सदा बढनेवाले इंद्रको हमारी वाणी बढावे।" अर्थात् हमारी वाणीमें ऐसा कोई शब्द प्रयुक्त न हो, कि जो इंद्रशक्तिका संवर्धक न हो। इसका तात्पर्य यह है, कि हम बोलने और सुननेमें यह सावधानी रखें, कि न हीन भावका शब्द बोला जाय और न सुना जाय। लेखोंमें भी ऐसा कोई वाक्य न लिखा जाय जो नीच भावनासे भरा हुआ हो। जो मनुष्य अपनी इंद्रशक्ति बढानेके उद्योगमें हैं, उनको उचित है, कि वे चुने हुए उत्साहवर्धक शब्द बोलें, शक्तिके प्रोत्साहक ग्रंथ पढें और ऐसे मित्रोंके साथ रहें, कि जो धीर और गंभीर विचारोंकी जागृति करनेवाले हों। कभी निरुत्साही मनुष्योंके साथ सहवास न करें, क्यों कि इंद्रशक्तिका मनोभूमिकाके साथही विशेष संबंध है। इसीलिये वेद कहता है—

मनीषिणः प्र भरध्वं मनीषां यथा यथा मतयः सन्ति नृणाम्॥
इंद्रं सत्यैरेरयामा कृतेभिः स हि वीरो गिर्वणस्युर्विदानः॥
ऋ. १०।१११।१

" (१) हे (मनीषिणः) बुद्धिमान् मनुष्यों! अपनी (मनीषां) बुद्धिको (प्रभरध्वं) प्रयत्न करके सुविचारसे भर दें। (२) मनुष्योंकी (यथा यथा) जैसी जैसी (मतयः) बुद्धियां होतीं हैं, वैसेही मनुष्य बनते हैं। (३) हम (सत्यैः कृतेभिः) सत्यपूर्ण शुभ कर्मोंसे इंद्रको (एरयाम) प्राप्त करें। (४) वही वीर (विदानः) ज्ञानी और (गिर् – वनस्युः) वाणीसे सेवन करने योग्य है।"

इस मंत्रमें इंद्रशक्तिकी वृद्धि करनेके कई नियम उत्तम प्रकारसे कहे हैं— (१) मन और बुद्धिको उत्तम विचारोंसे सदा भरपूर रखना, अर्थात् किसीभी समय कोई हीन विचार मनमें न लाना, यह पहिला आवश्यक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्तव्य है। यह करनेका कारण यह है कि (२) मनुष्योंकी जैसी बुद्धि और मनःप्रवृत्तियां होती हैं, वैसाही मनुष्य होता है। इस लिये उत्साही विचारोंके साथ ही मनुष्यकी हरएक शक्ति बढती है और निरुत्साहके साथ शक्तिका क्षय होता है। यही कारण है, कि हरएक मनुष्यको अपनी विचारपरंपराका अवश्य विचार करना चाहिये, कि यह विचारसरणी शक्तिवर्धक है, या शक्तिनाशक है? इस विषयकी वैदिक रीति यह है—

तमर्कैभिस्तं सामभिस्तं गायत्रैश्चर्षणयः। इंद्रं वर्धन्ति क्षितयः॥

ऋ. ८।१६।९

"(तं इंद्रं) उस इंद्रको अर्क, साम और गायत्रोंसे (चर्षणयः क्षितयः) पुरुषार्थी मनुष्य बढाते हैं।"

"अर्क, साम और गायत्र" ये तीन साधन हैं, कि जिनसे इंद्रशक्तिकी वृद्धि होती है। (१) "गाय-त्र" शब्द "प्राणोंका त्राण" करनेका भाव बता रहा है। प्राणोंका त्राण, प्राणोंका रक्षण, प्राणशक्तिका संवर्धन प्राणायामसे होता है, इसलिये यह शब्द प्राणायाम तथा प्राणरक्षणके अन्य नियमोंका सूचक है। (२) "साम" शब्द "शांति" का सूचक है। मन बुद्धि चित्त अहंकार तथा इंद्रियादिकोंमें जो चंचलता रहती है, उसको दूर करके उसके अंदर शांति और गंभीरता स्थापन करना इससे सूचित होता है। (३) "अर्क" शब्द उपासना, प्रकाश, वीर्य, ज्ञान, ज्ञानी और अन्नका वाचक कोशोंमें है। यहां इन्द्रशक्तिके संवर्धनके प्रकरणमें उपासना, ज्ञान, वीर्य और अन्न, ये अर्थ सुसंगत हो सकते हैं।

इन तीनों अर्थोंका विचार करनेसे पूर्व मंत्रका यह तात्पर्य ध्यानमें आसकता है कि-(१) प्राणका बल बढाने, (२) मनकी चंचलता दूर करके उसमें एकाग्रता लाने और (३) ज्ञानपूर्वक उपासना करनेसे इंद्रशक्तिका संवर्धन होता है। ये तीन उपाय पाठकोंको ध्यानमें धारण करने चाहिये। अब इसी विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखिये—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इंद्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ॥
अपघ्नन्तो अराव्णः ॥ ऋ० ९।६३।५

"जो (अप्–तुरः) प्रयत्नशील पुरुषार्थी लोग (विश्वं आर्यं) विश्वको आर्य (कृण्वन्तः) बनानेवाले हैं और जो (अ–राव्णः) दान न देनेवालोंको अर्थात् अनुदार स्वार्थी मनुष्योंको दूर करते हैं, वे अपने पुरुषार्थसे (इंद्रं वर्धन्ति) इंद्रका संवर्धन करते हैं।"

(१) स्वार्थभावको दूर करना और परोपकारी शील धारण करना, (२) सबको आर्य अर्थात् प्रगतिशील बनाना और (३) स्वयं सतत अविश्रांत पुरुषार्थ करना, ये तीन सद्गुण हैं, कि जो इंद्रशक्तिको बढानेवाले हैं। इसलिये जो इंद्रशक्तिकी वृद्धि करनेके इच्छुक हैं, उनको यह मंत्र विचार करने योग्य है। इसी विषयमें और एक मंत्र देखिये—

तमिद्विप्रा अवस्यवः प्रवत्वतीभिरूतिभिः ॥
इंद्रं क्षोणीरवर्धयन् ॥ ऋ० ८।१३।१७

"(प्रवत्वतीभिः ऊतिभिः) उच्च रक्षणोंसे अपना (अवस्यवः) संरक्षण करनेवाले (वि–प्राः) ज्ञानी (क्षोणीः) मनुष्य (तं इंद्रं वर्धयन्) उस इंद्रको बढाते हैं।"

(१) सब प्रकारके संरक्षक नियमोंका पालन करके अपना संरक्षण करनेकी इच्छा करना, (२) हरप्रयत्न करके अपनी उन्नतिका विचार करना, (३) ज्ञानी बनकर पुरुषार्थ प्रयत्नसे उन्नतिका यत्न करना, ये गुण इंद्रशक्तिकी वृद्धि करनेवालोंमें अवश्य चाहियें। यह तात्पर्य पाठक ऊपरके मंत्रमें देख सकते हैं।

इन सब मंत्रोंका तात्पर्य यह है, कि अपनी शक्तिका विकास करनेकी प्रबल इच्छा, विकास करनेके लिये महान् पुरुषार्थ करनेकी सिद्धता और सब प्रकारके योग्य साधनोंका सदुपयोग करनेसे निश्चयसे उन्नति होती है। इस विषयमें जो मंत्र ऊपर दिये हैं उनका विचार हरएक पाठक करें और अपनी उन्नतिके नियम जानकर उनका आचरण करके अपनी शक्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विकसित करें। वैदिक धर्मका जीवन अमलमें लानेका यही एक मात्र उपाय है। आशा है, कि वैदिक धर्मके प्रेमी सज्जन इसका अवश्य विचार करेंगे। अस्तु। इस प्रकार इंद्रशक्तिके विकासके नियम देखनेके पश्चात् अब इस मार्गके साधक पथ्यका विचार करना चाहिये।

(२२) पितापुत्र-संबंध।

बाह्य सृष्टिमें जो पृथ्वी, आप, तेज, वायु आदि तत्त्व हैं उनके अंश अल्प प्रमाणमें हमारे शरीरमें रहे हैं। मानो कि जगद्व्यापक जो तत्त्व हैं वे पितृरूप हैं और अपने शरीरमें जो उन तत्वोंके अंश हैं वे उनके पुत्र हैं। पाठक जानते ही हैं कि पितापुत्रमें विरोध नहीं चाहिये। वायु पिता है, प्राण उसका पुत्र है, शुद्ध वायुके साथ इस प्राणका संबंध रहनेसे ही प्राणका बल बढता है। इसी प्रकार सूर्यप्रकाशसे चक्षुका आरोग्य होता है, तथा इतर तत्वोंके साथ हमारे शरीरका आरोग्य, बल, तथा ओज स्थिर रहता है। अब देखिये कि तंग मकानमें बंद रहनेसे पूर्वोक्त पिता-पुत्र-संबंधमें पर्दा खडा होता है। इस कारण उनमें विरोध उत्पन्न होता है और यही विरोध मनुष्योंके अनारोग्यका कारण है। इसलिये मनुष्योंको आवश्यक है कि वे खुली हवामें तथा खुले प्रकाशमें जितना अधिक रह सकें उतना रहें, यह इंद्रशक्तिको बढानेका पहिला पथ्य है। यदि मनुष्य घरके बाहिर ही रहेंगे, तो उनको सौमें न्यानवे रोग हो ही नहीं सकते। आर्ष वैद्यक ग्रंथोंमें स्पष्ट कहा है कि—

"जबसे लोग मकानोंमें रहने लगे हैं, तबसे रोग उत्पन्न हुए हैं।"

यह बिलकुल सत्य है। इसी लिये ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास अर्थात् इन तीनों आश्रमोंमें रहनेवाले लोग जंगलमें रहते हैं। वैद्यक आश्रमधर्मका यह मुख्य तत्त्व है कि उसमें तीनचौथाई आयुष्यका भाग जंगलकी खुली हवामें व्यतीत होता है। पाठक इसका अवश्य विचार करें और तत्त्वका अमल जितना हो सकता है, अवश्य करें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२३) ऋतुओंका साक्षात्कार।

हरएक मनुष्य ऋतुओंको जानता है, परंतु बहुत थोडे विद्वान् ऐसे हैं कि जिन्होंने वैदिक दृष्टिसे ऋतुओंका साक्षात्कार किया है। प्रायः सब लोग समझते हैं कि, दो मासका एक ऋतु है, और इस प्रकार सालमें छः ऋतु होते हैं। यह बिलकुल स्थूल दृष्टि है। वेदकी दृष्टि इससे भिन्न है। वेदकी दृष्टिसे ऋतु प्रतिदिन होते हैं, प्रत्येककी आयुमें होते हैं, प्रत्येक वर्षमें होते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक जातिके जीवितमें भी होते हैं। उदाहरणके लिये देखिये कि "वसंत ऋतु" का अवस्थान कितने स्थानोंमें किस प्रकार है। "वसंत ऋतु" दिनमें प्रातःकाल है, मानवी आयुमें ब्रह्मचर्याश्रम है, वर्षमें चैत्र वैशाखके दो मास हैं, जातिमें उदयोन्मुख वृत्ति है, इत्यादि प्रकार वसंत ऋतुकी विभूति है। इसका अनुभव करना चाहिये। इसी पद्धतिसे अन्य ऋतुओंकी विभूति भी देखनी उचित है। इसीको ऋतुओंका साक्षात्कार कहते हैं।

ऋतुओंका साक्षात्कार इस प्रकार करनेसे शक्तिवर्धनके कार्यकी ऋतुचर्या और दिनचर्या निश्चित करना सुगम हो जाता है। देखिये कि, दिनके प्रहरोंमें प्रातःकालका समय अधिक बलसंपन्न और उत्साहपूर्ण होता है। इसी प्रकार वर्षमें वसंत ऋतु, आयुमें ब्रह्मचर्यकी आयु, तथा इसी प्रकार सब ही वासंतिक समय बलप्रद होते हैं। यदि आपको अपने अंदर इंद्रशक्तिका विकास करना है, तो आपको उचित है कि आप इस समयसे लाभ उठावें। जो शक्तिवर्धनका अनुष्ठान करना है वह इस समय विशेष रूपसे करें और इस समयके सूर्यके इंद्रशक्तिपूर्ण किरणोंसे अधिकाधिक लाभ प्राप्त करें। आर्ष ग्रंथोंमें जो दिनचर्या और ऋतुचर्या लिखी है, इसमें यही तत्व है, इसलिये इसका आपभी अधिक विचार करके अपनी दिनचर्या उक्त तत्त्वके अनुरूप बनाके जितना हो सकता है, उतना इंद्रका बल अपने अंदर बढाइये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२४) इंद्रशक्तिवर्धक खानपान ।

वारुणीपान, सोमपान ।

इससे पूर्व बताया जा चुका है कि इंद्रशक्तिका नाशक खानपान कौनसा है। अब बताना है कि इंद्रशक्तिको बढानेवाला पथ्यकारक खानपान, कौनसा है। इस विचारमें सबसे प्रथम " वारुणी-पान " का विचार करना चाहिये।

साधारणतः सब कोशोंमें " वारुणी " शब्दका अर्थ ' मद्य ' दिया है !! इसलिये पाठक ' वारुणीपान ' का तात्पर्य ' मद्य-पान ' ही समझेंगे तो कोई आश्चर्य नहीं है !!! परंतु वैदिक दृष्टिसे वारुणीपानका तात्पर्य औरही है। वेदमें वरुण देवता जलकी अधिष्ठात्री देवता है। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

वरुणोऽपामधिपतिः स मावतु । अथर्व ५।२४।१२

" वरुण जलका अधिष्ठाता है, वह मेरा रक्षण करे। " इस मंत्रमें वरुणका जलके साथ संबंध बताया है, तथा और देखिये—

अपो निषिंचन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु
गर्गरा अपां वरुणाव नीचीरपः सृज ॥ अ. ४।१५।१५

" हे वरुण ! तू हमारा (पिता) रक्षक (अपः निषिंचन्) जलकी वृष्टि करता हुआ (अपां गर्गराः) जलके प्रवाह (श्वसन्तु) फैलें, इस प्रकार भूमिपर (अपः सृज) जल छोडो और हमारा (असु-रः) प्राणदाता बन। "

इस प्रकार वरुणका वर्णन वेदमंत्रोंमें है। वरुण ऊपरसे जो वृष्टिका जल भेजता है, वही " वारुणी वृष्टि " है। इस जलका पान करनेका नाम " वारुणी पान " है। मद्यका इसके साथ कोई संबंध नहीं है। वृष्टिका जल पीना आरोग्यवर्धक है, इसीलिये वरुणके विशेषण (असु-र) प्राणरक्षक, (पिता-पाता) संरक्षक, इत्यादि वेदमें आगये हैं। जलके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नामोंमें, (रेतः) वीर्य, (सु-क्षेम) उत्तम कल्याण, (भेषजं) औषध, (अ-क्षर) अक्षयकारी, (सुखं) इंद्रियोंको उत्तम अवस्थामें रखनेवाला, (पवित्रं) शुद्ध, (अ मृत) अमर, आदि शब्द आ गये हैं। ये शब्द जलके गुणधर्म बता रहे हैं, वह जल वरुणदेवताद्वारा प्राप्त होता है, इसलिये उसको " वारुण-जल " किंवा " वारुणी वृष्टि " कहते हैं। वृष्टिका जल शुद्ध होता है, इसलिये उसका पीना आरोग्यवर्धक होता है। तथा इस वृष्टिजलमें अंतरिक्षस्थ इंद्रशक्तियुक्त प्राणभी अधिक होता है।

" अमर-वारुणी " नाम भी वृष्टिजलका है। अमरलोक अंतरिक्ष है, जहां मेघमंडल होता है। वहांसे जो जल आता है, अर्थात् वृष्टिद्वारा प्राप्त होता है, वही " अमर-वारुणी " है। वास्तवमें इस अमर लोकसे जो जल वृष्टिद्वारा प्राप्त होता है, उसीका नाम अमृत है। "अ-मर" लोकसे जो मिलता है, वही " अ-मृत " होता हैं। तात्पर्य " अमृत " नाम वृष्टिसे प्राप्त " जल " का है। " अमर " और " सुर " ये शब्द एक अर्थवाले ही हैं। अमरलोक और सुरलोकका भाव एक ही है। अमरलोकसे वृष्टिद्वारा " अमृत " अथवा " अमरवारुणी " का जल मिलता है, वही " सुर-लोक " से आता है, इसलिये उसको " सुरा " कहते हैं। सुरलोकसे जो वृष्टि आती है, वही " सुरा " है। निघंटुके जलवाचक नामोंमें " सिरा, सुरा, सूरा " ये पाठ हैं। जलवाचक सुरा शब्दका तात्पर्य वृष्टिजल ही है।

" वारुणी, अमरवारुणी, सुरा " ये शब्द एक समयमें " वृष्टिजल " के वाचक थे, इसमें कोई शंका नहीं है। यद्यपि आजकलके कोशोंमें इनका अर्थ " मद्य " ही दिया होता है, तथापि पूर्वोक्त संबंध देखनेसे मूल अर्थका पता लग सकता है। परंतु यहां देखना है कि वृष्टिजलवाचक शब्द मद्यवाचक क्यों हुए ? इसका कारण दोनोंमें बननेकी समानता है। सूर्यकिरणोंसे पृथ्वीपरके जलकी भांप होकर ऊपर जाती है और वहां कुछ काल ठहरकर शीतताके साथ संबंध हो जानेसे उसका जल बनकर वृष्टि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती है; इसी प्रकार मद्य बनता है। दोनोंमें समता "(१) द्रवकी भांप होकर ऊपर जाना और (२) उस भांपका फिर द्रव पदार्थ बनना" यह है। इसी कारण "वृष्टिजल" वाचक वारुणी, अमरवारुणी तथा सुरा शब्द "मद्य" वाचक बने हैं। अस्तु।

जिस "शुंडा-यंत्र" से जलकी भांप और भांपका फिर पानी बनाते है और इस रीतिसे वृष्टिजलके अभावमें शुद्धोदक प्राप्त करते हैं, उसी प्रकारके यंत्रसे-अबकारी भट्टीसे-मद्य बनाया जाता है। प्रारंभमें यह "आप्-कारी" अर्थात् "जल बनानेका यंत्र" था जिसको आजकल "आब-कारी" अर्थात् मद्यसंबंधी व्यवसाय कहते हैं !! आजकलकी बातोंको छोडकर हमें अपना विषय देखना है। उस विषयमें इतनाही कहना पर्याप्त है, कि वृष्टिका शुद्ध जल संगृहित करके रखा जाय और पीनेके कार्यमें उसीका उपयोग किया जाय, तो अमरत्व प्राप्त होगा, अर्थात् शीघ्र वार्धक्य नहीं होगा। जिन देशोंमें "आंधी" आकर हवामें धूली भर जाती है, उस देशकी वृष्टि अशुद्ध होती है। इस लिये जिस समय आंधीके विना वृष्टि होगी, अथवा जहां ऐसी वृष्टि होती है, वहां वृष्टिजल संग्रह करना उचित है। तथा प्रारंभकी वृष्टिका जल लेना योग्य नहीं है। ये नियम आर्य वैद्यकमें देखने योग्य हैं। इस प्रकार वृष्टिजल इकट्ठा करके सालभर बोतलोंमें भरकर रखा जा सकता है और वह पीनेसे बडे लाभ हैं।

पर्याप्त वृष्टिजल न मिलनेकी अवस्थामें "शुंडायंत्र" द्वारा भांपका पानी बनाकर काममें लाया जा सकता है, परंतु इसको पीनेके पूर्व इसको प्राणवायुसे परिपूर्ण बनाना चाहिये। कई वार एक बरतनसे दूसरेमें गिरानेसे जल प्राणवायुसे मिश्रित हो जाता है। इसके पश्चात् वह पीने योग्य होता है।

परमेश्वरकी अद्भुत सृष्टिमें दयालु परमात्माने कितने उपयोगी साधन मनुष्योंके उपयोगार्थ निर्माण किये हैं, परंतु मनुष्य ऐसा कुकर्मी बन रहा है, कि वह प्रायः उन सब साधनोंका दुरुपयोग करता है और अवनत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता है। जिस प्रकार ईश्वर सूर्यकिरणोंके द्वारा पानीकी भांप बनाकर उसको शुद्ध करके वृष्टिद्वारा शुद्ध जल हमारे पास भेज देता है, उसी प्रकार कई वृक्ष उन्होंने बनाये हैं, कि जो शुद्ध, स्वादु, और विविध औषधिरसोंसे परिपूर्ण रसदार फल देते हैं। नारियलका वृक्ष इनमें प्रमुख है। इसके ऊंचे होनेके कारण भूमिसे खींचा हुआ जल वृक्षके आंतरिक छाननियोंसे छाना जाता है और शुद्ध होकर फलमें इकट्ठा होता है। यही बात संपूर्ण वृक्षोंमें है। नारियलका जल आरोग्यवर्धक, बलकारक और शतशः गुण बढानेवाला है। अनार, संगतरे, नारिंगी आदि फलोंके रस उक्त कारण ही आरोग्यदायी हैं। इसके अतिरिक्त नारियलके वृक्षका रस जो वृक्षके कंठसे लिया जाता है, वह भी बडाही उपयोगी है। परंतु शोक है कि नारियल, ताल आदि वृक्षोंके कंठरससे आजकल मद्य अर्थात् शराब ही बनाकर बेची जाती है और ताजा रस उपयोगमें नहीं लाते!! कितना पदार्थोंका दुरुपयोग हो रहा है!!! इस प्रकार अनेक वृक्षों, फलों तथा वल्लियोंका अंगरस " इंद्र-शक्ति " का संवर्धक है। युक्तिसे इसका उपयोग करना चाहिये।

" सोम रस " इंद्रकी शक्ति बढानेवाला है और इसका वर्णन वेदमें सैंकडों मंत्रोंमें है। सोमवल्ली अंधेरेमें प्रकाशती है और चांदकी कलाओंकी क्षयवृद्धिके समान उस वल्लीके पत्तोंमें क्षयवृद्धि होती है। यह सोमवल्ली हिमालयके मौंजवान् पर्वतपर मिलती है, ऐसा सुनते हैं। प्रयत्नशील पुरुषोंको उचित है, कि वे हिमवान् पर्वतपर इसकी खोज करें और अपने देशमें उसको निर्माण करनेका यत्न करें। आजकल यह सोमवल्ली कहींभी प्राप्त नहीं होती। यदि यह वैदिक सोमवल्ली मिल जाय, तो उसका रस निःसंदेह इंद्रशक्तिकी वृद्धि करनेवाला है। इसलिये उद्यमी पुरुष इसकी अवश्य खोज करें।

कई विद्वान् पंडित " सोम-रस " और मद्यको एकही मानते हैं। यूरोपीयन पंडितोंने इसके विषयमें बहुत गलती खाई है। वास्तवमें "वारुणि" और मद्यमें जितना भेद है उससे अधिक भेद " सोमरस " और मद्यमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है । पाठक इस विषयमें गलती न करें । इंद्रशक्तिका संवर्धन करनेके जो उपाय वेदमें वर्णन किये हैं,उन सबमें सोमका रस प्रधान स्थान रखता है, इतनाही कह देना पर्याप्त है । " सोमयाग " एक वैदिक यागसंस्था है, जो केवल इंद्रशक्तिको बढानेके हेतुसेही वेदमें लिखी गयी है । परंतु इसका स्वरूपभी याज्ञिकोंने औरही बनाया है ।

इन सब बातोंका विचार करनेके लिये यहां स्थान नहीं है, केवल दिग्दर्शनही यहां किया है; इससे पाठक ही विचार करें और समझें कि वास्तविक कल्पना कितनी उच्च और सरल है ।

पेय पदार्थोंके विषयमें इतना लिखनाही यहां पर्याप्त है। खानेके पदार्थोंके विषयमें इतनाही पर्याप्त है, कि जो सात्विक भोजन है, वह इंद्रशक्तिका वर्धन करनेवाला ही है । चावल, गेहूं, गायका दूध, घी, मख्खन, छाछ, लस्सी, आदिके साथ सब्जी आदि पदार्थोंका सात्विक भोजन पाठक जानतेही हैं । यद्यपि खानपानके विषयमें विशेष लिखना इस समय आवश्यक है, तथापि लेखविस्तार बहुत होनेके भयमें इतनाही यहां पर्याप्त है ।

(२९) अंतिम शब्द ।

वेदमें इंद्रशक्तिके संवर्धनके विषयमें सैंकडों मंत्र हैं, उन सबका यथायोग्य विचार करके विस्तृत लेख लिखनेका विचार है । परंतु उस पुस्तकके बननेमें कालावधि बडी लगनी है । इसलिये जो पाठक इस विषयका विचार करते होंगे उनको इस विशेष रीतिका विचार करनेकी प्रेरणा करनेके हेतुसे यह सारांशरूप लेख लिखा है । आशा है, कि इस विषयकी खोज करनेवाले पाठक अपने विचारका परिणाम अवश्य प्रसिद्ध करेंगे ! एकही विषय अनेकोंद्वारा विचारित होनेसे बडा लाभकारी होता है ।

जो अन्य पाठक हैं, वे इस लेखमें लिखे विषयका अच्छी प्रकार मनन करें और जो हो सकता है, उतना अनुभव करके अपनी शक्ति बढानेका यत्न करें । इसी विषयकी बहुत खोज करके अनेक लेख लिखनेका संकल्प

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है, उसकी पूर्णताके लिये अनुष्ठानी पाठकोंसे बहुत सहायता हो सकती है।

इस लेखमें जो बातें लिखीं हैं, सबकी सब करनेके लिये सुगम और लाभदायी हैं। केवल काल्पनिक बात एकभी नहीं है। इस लिये पाठक निःसंदेह इनका अनुष्ठान कर सकते हैं और जो जितना अनुष्ठान करेंगे, उनको उतना लाभ अवश्य होगा।

इंद्रशक्तिके संवर्धनका विषय अत्यंत गंभीर है और वेदका यह मुख्य विषय है। इसी हेतुसे इसकी गंभीरता बडी है। इस विषयके बहुतसे पहलुओंका विचार अभीतक हुआ ही नहीं है और कई बातोंका विचार करनेके साधनभी उपस्थित नहीं हैं। इसलिये इस लेखमें उतना ही लिखा है, कि जितना आज हो सकता है। इस विषयकी जितनी जितनी खोज होती जायगी, उतनी उतनी लेखरूपसे प्रसिद्ध की जायगी। आशा है, कि सब पंडित जन इस अत्यावश्यक और प्रतिदिनके उपयोगी विषयकी खोजमें जाधिकाधिक दत्तचित्त होंगे और इस प्रकार वैदिक धर्मको अमली जविनमें ढालनेके प्रयोगमें सहायक बनेंगे।

इन्द्रशक्तिके अभावके कारण आर्य जनतामें परमावधिकी उदासीनता आजकल दिखाई देती है। यह उदासीनता न केवल आर्यत्वसे गिरा रही है, परंतु मनुष्यत्वसे भी गिरा रही है। इस बातका विचार हरएक वैदिक धर्मीको करना सांप्रतमें अत्यावश्यक है।

केवल वैदिक धर्मका अभिमान किसी प्रकारसे भी हमें उठा नहीं सकता। जबतक हम वेदके उच्च तत्त्वोंको प्रतिदिनके आचरणमें लानेका यत्न न करेंगें, तबतक बाह्य अवडंबरोंसे किसीकी भी उन्नति होनेकी किंचित् भी आशा नहीं है।

इस लिये इस समयका हमारा कर्तव्य निश्चित रीतिसे यह है कि हम अपना वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय कर्तव्य जानकर उनको पूर्ण करनेके वैदिक मार्गोंका ज्ञान प्राप्त करके शीघ्रही उन मार्गोंके ऊपरसे आक्रमण करनेका यत्न करें और सफलता प्राप्त करनेतक बीचमें प्रारंभ किये हुए सत्कर्मको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न छोडें।

इंद्रशक्तिके संवर्धनके अनुष्ठानमें भी यही बात है। अनुष्ठान करते करते बीचमेंही स्तब्ध होनेसे जो हानि होती है, उसका वर्णन करना अशक्य है। इसलिये निश्चयके बलसेही अपनी उन्नति करनेके कार्य पूर्णतातक पहुंचाने चाहियें।

इसलिये हे प्रिय पाठकों! आप इंद्रशक्तिके संवर्धनका प्रयत्न कीजिये और अपने आपको वैदिक धर्मके उज्ज्वल श्रेयके लिये योग्य बनाइये।

इन्द्रशक्तिवर्धक अनुष्ठानका तत्त्व।

ऐतरेय उपनिषदका आशय।

प्रथम अध्याय। वैदिक विकासवाद।

(१) प्रथम खंड।--प्रारंभमें एक ही आत्मा था और आंख हिलानेवाला कुछ भी नहीं था। उसने सोचा कि "मैं लोकोंको रचूं" और उसने इन लोकोंको रचा। द्युलोक और मरनेवाला यह पृथिवी लोक जिसके साथ जल है। पश्चात् उसने लोकपालोंकी उत्पत्ति करनेकी इच्छासे जलोंमेंसे ही एक पुरुषको बनाया और उसे तपाया। जब वह तप गया, तब उसका मुख खुला, जैसा अंडा फटता है, उस मुखसे वाणी और वाणीसे अग्नि। दोनों नासिकाएं खुल गईं, नासिकाओंसे प्राण और प्राणसे वायु। दोनों आंखें खुल गईं, आंखोंसे चक्षु और चक्षुसे सूर्य। कान खुल गये, कानोंसे श्रोत्र और श्रोत्रसे दिशाएं। त्वचा बनी, त्वचासे लोम और लोमोंसे औषधि वनस्पतियें। हृदय बना हृदयसे मन और मनसे चंद्रमा। नाभि खुल गई, नाभिसे अपान और अपानसे मृत्यु। शिस्न बना, शिस्नसे रेत और रेतसे जल बना।

यह ऐतरेय उपनिषद के प्रथम खंडका वर्णन है, इसका तात्पर्य यह है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कि, " एक आत्माकी इच्छा की प्रेरणेसे द्युलोक, अंतरिक्षलोक और भूलोक यह त्रिलोकी बनी। इसमें अंभ, मरीची और जल ये तत्त्व क्रमशः हैं। तत्पश्चात् उसने एक पुरुष बनाया और उसके इंद्रियोंसे बाह्य देवताओं-की निम्न प्रकार उत्पत्ति हुई—

इन्द्रिय	इन्द्रिय-शक्ति	देवता
मुख	वाणी (वचन)	अग्नि
नासिका	प्राण (प्राणन)	वायु
आंख	चक्षु (दर्शन)	सूर्य
कान	श्रोत्र (श्रवण)	दिशा
त्वचा	लोम (स्पर्शन)	औषधि
हृदय	मन (मनन)	चंद्रमा
नाभि	अपान (अपानन)	मृत्यु
शिस्न	रेत (प्रजनन)	जल

इस प्रकार पुरुषके इंद्रियोंके साथ बाह्य देवताओंका संबंध है। इसका स्मरण अच्छी प्रकार रखना चाहिये, क्यों कि आगे इसका विशेष संबंध आनेवाला है।

वैदिक संकोच-वाद।

(२) द्वितीय खंड- ये देवताएं इस प्रकार उत्पन्न होनेके पश्चात् बडे समुद्रमें आ पडीं और उनके पीछे भूख और प्यास लगी। भूख और प्याससे युक्त होकर देवताओंने उस आत्मासे कहा है कि हमारे लिये स्थान दो, जहां बैठकर हम अन्न खाएं। वह आत्मा उन देवताओंके लिये एक बैल …और पश्चात् घोडा…. लाया। देवताओंने कहा कि " यह हमारे लिये पर्याप्त नहीं है। " पश्चात् वह आत्मा मनुष्य लाया, तब उसको देखकर देवताओंने कहा कि, " यह बहुत अच्छा बना है !! निःसंदेह यह अच्छा बना है !! " इसके पश्चात् आत्माने देवताओंको कहा कि " अपने अपने स्थानमें प्रवेश कर जाओ। " तत्पश्चात्—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत्, वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशत्, दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन् चंद्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्, मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत्, आपो रेतो भूत्वा शिस्नं प्राविशन्।

ऐ. उ. २।१–५

(१) अग्नि वाणी बनकर मुखमें प्रविष्ट हुआ, (२) वायु प्राण बनकर नासिकामें घुसा, (३) सूर्य चक्षु बनकर आंखोंमें वसने लगा, (४) दिशाएं श्रोत्र बनकर कानोंमें रहने लगीं, (५) औषधिवनस्पतिएं लोम बनकर त्वचामें आ बसीं, (६) चंद्रमा मन बनकर हृदयमें रहने लगा, (७) मृत्यु अपान बनकर नाभिमें प्रविष्ट हुआ, (८) जल वीर्य बन कर शिश्नमें विराजने लगा।

इस प्रकार देवताओंका अपने योग्य स्थान में निवास होनेके पश्चात् भूख और प्यास इन दोनोंने आत्मासे कहा कि "हमारे लिये भी कुछ आज्ञा होनी चाहिये।" तब आत्माने उनसे कहा कि "मैं इनही देवताओंमें तुम दोनोंको हिस्सेदार बनाता हूं।" इस प्रकार इंद्रियभोगोंमें भूख और प्यास हिस्सेदार बनाये हैं।

यह भाव दूसरे खंडका है। प्रथम खंडमें कहा था, कि पुरुष की इंद्रियशक्तियोंसे अग्नि वायु, सूर्य आदि देव बने हैं। अब इस द्वितीय खंडमें कहा है, कि उक्त अग्नि आदि देवताएं पुरुष के प्रत्येक इंद्रियमें आकर वसी हैं, इनका क्रम यह है–

देवता	इंद्रियश[illegible]	निवासस्थान
अग्नि	वाणी	मुख
वायु	प्राण	नासिका
सूर्य	चक्षु	आंख
दिशा	श्रोत्र	कान
औषधि	लोम	त्वचा

५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चंद्रमा	मन	हृदय
मृत्यु	अपान	नाभि
जल	वीर्य	शिश्न

इस रीतिसे देवताओंने इंद्रियशक्तियों का रूप धारण करके इंद्रियस्थानमें निवास किया है। पूर्व स्थानमें जितनी देवताएं हैं उतनी यहां हैं परंतु पूर्व स्थानमें पुरुषकी इच्छाशक्तिसे इंद्रिय, इंद्रियों में इंद्रियशक्ति और उस इंद्रियशक्तिसे देवता बननेका "विकासवाद" है। वैदिक विकासवाद की किंचित् सी कल्पना यहां हो सकती है। विकास के पश्चात् "संकोच" होना आवश्यकही है। इसलिये द्वितीय खंडमें वैदिक "संकोचवाद" का वर्णन करते हुए यह बताया है कि, विश्वव्यापी विशाल देवताओंने सूक्ष्म रूप धारण करके इस देहमें अवतार लिया। देवताओंने अवतारके लिये बैल, घोडा आदि पशुओंके शरीर अर्थात्, मछली, सूअर, हाथी, घोडा, गाय, बैल आदि प्राणियोंके शरीर पसंद नहीं किये, अथवा इन पाशवी शरीरोंमें उक्त देवताओंके लिये रहनेका आनंद नहीं आया, परंतु जब मनुष्य-शरीर बना, तब उन सब देवताओंको अत्यंत हर्ष हुआ और संपूर्ण देवताओंने अपने अपने अंश भेजकर इस नरदेहमें अवतार लिया और सब देवताएं यहां आकर उक्त स्थानोंमें वसने लगीं।

संकोच और विकासका स्वरूप।

एक वृक्षका बीज होता है, उस बीजमें जड, शाखा, पत्ते, फूल तथा फल आदि वृक्षविस्तारके अंश सूक्ष्मरूपसे रहते हैं। अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होतेही, योग्य भूमि, उत्तम जल और खाद मिलते ही, उस बीजका बडा भारी विस्तार होता है। यही उस बीजका विकास है। मानवी वीर्य के शुक्रबिंदुमें मनुष्यके संपूर्ण इंद्रियों और अवयवोंके अंश अति सूक्ष्म रूपसे रहते हैं। माताके सुयोग्य गर्भस्थानमें उनका परिपोष होकर वे ही बीज के अंश विकास प्राप्त करके बढ जाते हैं। इस प्रकार हरएक शक्ति का विकास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होकर परिपूर्ण मानवी देह बन जाता है, यही विकाश का क्रम प्रत्येक बीजके विस्तारमें अनुभव होता है। जगत्के अंदर हरएक योनिमें इसके उदाहरण सहस्रों हैं।

बडे वृक्षमें फूल के पश्चात् फल की उत्पत्ति होती है। मनुष्य अथवा अन्य प्राणिकी तारुण्य अवस्थामें प्रजननके उपयोगी वीर्य उत्पन्न होता है। इस फल में और इस बीजमें पिताके संपूर्ण शक्तियोंके अंश रहते हैं। यहां तक ये अंश आते हैं कि, पुत्रके कई अंग, इंद्रिय और अवयव हूबहू पिताके उन अंगों, इंद्रियों और अवयवोंके समान होते हैं। कई मनुष्य तो पिताके सदृश रंग, रूप और आकारमें पूर्ण रूपसे दिखाई देते हैं!! इस बातको देखनेसे पता लग सकता है कि बीजमें पिताके अंश कितने प्रमाणसे आने संभव हैं। यह संकोचका क्रम है और यह हरएक योनिके बीजमें दिखाई देता है। जगत्में सर्वत्र इसके उदाहरण हैं! इस रीतिसे " संकोच और विकास " से यह जगत् चल रहा है।

संकोचमें कितनी शक्ति रहती है, इसका प्रमाण देखनेके कोई साधन हमारे पास इस समय नहीं हैं। बडासे बडा सूक्ष्मदर्शक यंत्र भी वीर्यबिंदुमें संपूर्ण इंद्रियशक्तियोंको दिखानेमें असमर्थ है, तथापि वीर्यबिंदुमें तथा बीजमें अतिसूक्ष्म रूपसे पिताके संपूर्ण शक्तिसमूह रहते हैं, इसमें कोई संदेह ही नहीं है।

बीजका विस्तार और विस्तारसे पुनः बीज बननेकी क्रिया इस प्रकार सृष्टिमें सनातन कालसे चल रही है। जो उक्त सत्यता वैयक्तिक बीजके विषयमें सत्य है। वही समष्टिदृष्टिसे भी उसी प्रकार सत्य है, यही सत्य सिद्धांत पूर्वोक्त ऐतरेय उपनिषद्के दो खंडोंमें बताया है।

बीजप्रदाता जगत्पिता।

यहां जगत्पिता परमात्मा, व्यापक ब्रह्म, बीजप्रदाता होने से उनकी संपूर्ण शक्तियां अत्यंत सूक्ष्मांश रूपसे प्रत्येक प्राणीके अंदर आती हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशेषतः विकासक्षम मनुष्ययोनिके प्राणीके अंदर तो अवश्य ही आती हैं। इस अंशरूप शक्तिके अवतारका मननीय वर्णन ऐतरेय उपनिषद् के द्वितीय खंडमें पाठकोंने देखा है ! ! सर्वव्यापक ब्रह्म अथवा एक आत्मा मुख्य है और तेतीस कोटी देव उसके साथी अथवा उसके विश्वव्यापी शरीरके अवयव और अंग हैं। यही परम पिता परमात्मा है। यदि हम उसीके "अमृत पुत्र" हैं तो हमारेमें उसीका वीर्य या बीज है और यदि उसीका बीज हमारेमें है, तो उसी की संपूर्ण शक्तियां हमारे अंदर अति सूक्ष्म अंशरूपसे अवश्य निवास करती हैं। इन शक्तियोंका निवास हमारे शरीरमें कहां होता है, इसका औपनिषदिक वर्णन पूर्व-स्थलमें आचुका ही है।

क्षणभर विषय समझने के लिये मान लीजिये कि परम पिता परमात्मा का यह विश्व ही प्रचंड शरीर है, और उसके आंख सूर्य हैं, और उसके अन्य इंद्रियगण अर्थात् वाणी, श्रोत्र, त्वक्, नासिका, हृदय, नाभि, शिस्न आदि इंद्रियगण क्रमशः अग्नि, दिशा, औषधि, वायु, चंद्रमा, मृत्यु और जल हैं। इसी महावृक्षके फल हम सब मानव हैं, ऐसी कल्पना करतेही पाठकोंके ध्यानमें आ जायगा कि, पिताके गुणधर्म पुत्रमें आनेके नियमके अनुसार परमात्माके आत्मिक बीज के साथ अन्य तेतीस देवताओंके भी अंश हमारे अंदर आते ही हैं। यही उक्त उपनिषद् का कथन है। नाना अलंकारोंसे विविध प्रकारका वर्णन होनेपर भी कथनीय बात एक ही होती है। यह एक स्पष्ट रहस्य की बात है कि हमारे अंदर परम-पिता परमात्माकी अंशरूप आत्मिक शक्ति मध्यमें विराज रही है और उसके चारों ओर परमात्माके आश्रयसे रहनेवाले तेतीस देवोंके अथवा तेतीस कोटी देवोंके अंश हैं। इसका अंशावतार किस प्रकार हुआ है, यह ऐतरेय उपनिषद्के शब्दोंमें बताया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवोंका अंशावतार। प्रवेशका मार्ग।

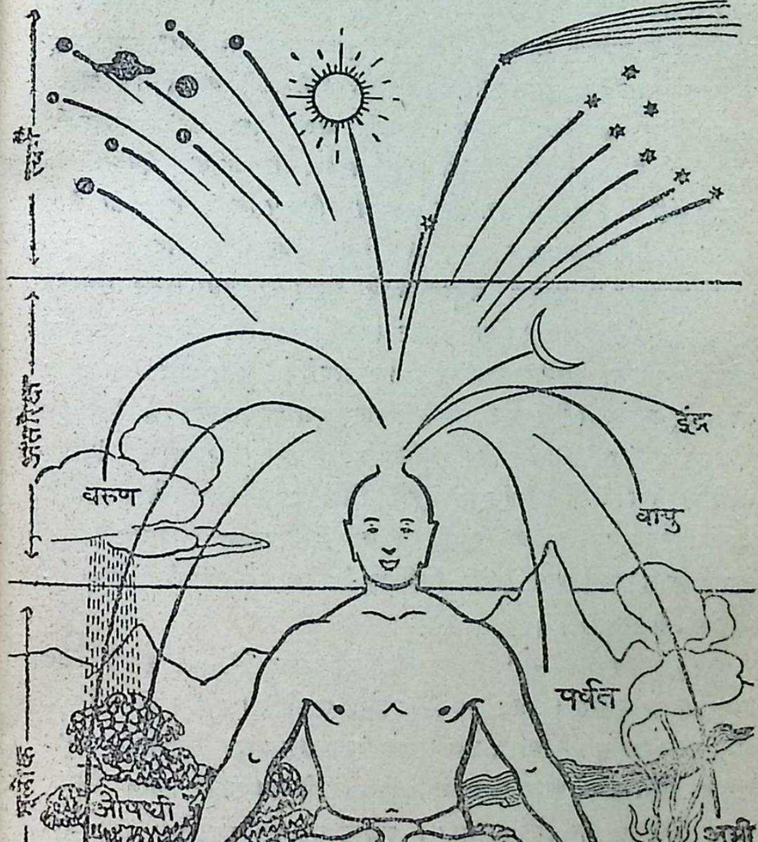

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संपूर्ण देवोंके अंशावतारका यह चित्र है। इसमें बताया है कि अग्नि, वायु,सूर्य,आदि देवताएं किस रीतिसे हमारे शरीरमें आकर रही हैं। पूर्वोक्त उपनिषद् के वर्णनके साथ इस चित्र की तुलना कीजिये और उपनिषद् का रहस्य जाननेका यत्न कीजिये। वैदिक धर्म का कथन है कि अपने आपको देवतारूप किंवा देवतामय समझो! अब विचार करके पाठक ही देख सकते हैं कि, अपने शरीरका कोई भी अंग और अवयव देवताओं से खाली नहीं है। हरएक अंग और अवयव इंद्रियमें किसी देवताका अंश अवश्य ही है। इस प्रकार यह शरीर सचमुच देवताओंका मंदिर है। इस लिये आवश्यक है, हरएक मनुष्य अपने शरीर को तथा अपने आपको सच्चा देवताओंका मंदिर बनावे और कदापि राक्षसोंका निवासस्थान न बनावे। वैदिक धर्मके उपदेशोंका मनन करनेसे जो बात निःसंदेह ज्ञात होती है, वह यही है। अब इसके पश्चात् प्रश्न हो सकता है, कि इन अंशरूप दैवी शक्तियों का विकास किस प्रकार करना है। इसका विचार करने के पूर्व ये देवताएं इस देहमें किस प्रकार और किस मार्गसे आईं और इनका मुख्याधिष्ठाता कौन है, इसका मनन करना आवश्यक है। यह बात ऐतरेय उपनिषद् के निम्न लिखित खंडों के मनन-से ज्ञात हो सकती है।

(१) तृतीय खंड— " ये लोक और लोकपाल हैं, अब इनके लिये अन्न उत्पन्न करूंगा। उसने जलको तपाया, उससे जो मूर्ति बनी वही अन्न है। वह अन्न भागने लगा, उस समय यह उस अन्न को पकडने लगा। उसने वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, शिस्न से पकडनेका यत्न किया, परंतु इनसे अन्न पकडा नहीं गया। पश्चात् अपानसे पकडनेका यत्न किया तो उससे पकडा गया। इस लिये यही वायु (अन्न-ग्रहः) अन्नको पकडनेवाला है, इसी लिये इसको (अन्नायु) अन्नसे आयुकी वृद्धि करने-वाला कहते हैं। उस आत्माने सोचा कि मेरे विना यह देह कैसे रहेगा? ऐसा विचार करके उसने अंदर प्रवेश करने का विचार किया।... तब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसने इस सीमाका विदारण करके अंदर प्रवेश किया । यही द्वार 'विदति' नामक है, और यही (नान्दनं) नंदनवन है, अर्थात् यही परम आनंदका स्थान है । इस आत्माके तीन स्थान हैं । आंख, कण्ठ और हृदय । यहां यह रहता है । जब वह जन्मा, तब उसने सब भूतों पर दृष्टि डाली, उसने फैले हुए ब्रह्मको देखा और कहा कि मैंने यह देख लिया । इसका नाम " इदं-द्र " है । परंतु गुह्यता के कारण इसीको " इंद्र " कहते हैं ॥ "

(ऐ. उ. अ. १।३)

सिरमें 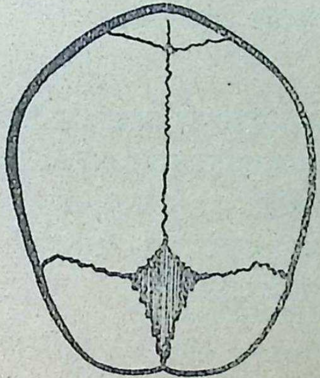 विदति द्वार ।

इस तृतीय खंडमें आत्माके शरीरमें प्रवेशके मार्गका वर्णन है । सिरमें विदति नामक द्वार है। इस मार्गसे इसका प्रवेश शरीरमें हो गया है । यही " नंदनवन " है, स्वर्ग कैलास आदि इसीके नाम हैं । स्वर्गीय उद्यानसे जो इसका अधःपात हुआ है, वह यहांसे ही है । यहांसे उसके अधःपातका मार्ग कंठ, हृदय और आंख हैं। इस विदति द्वार से अंदर प्रविष्ट होकर पृष्ठवंशके मार्गसे सीधा नीचे उतर कर यह मूलाधार चक्रमें आता है, वहांसे अज्ञात मार्गसे नाभी में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पहुंच कर हृदयमें आता है वहां की ऊर्ध्व नाडीसे मस्तिष्क में चढकर आंखमें वसता है और वहांसे जगत् का निरीक्षण करता है और अन्य अनुभव लेता है। विदारण करके अंदर घुसता है, इस लिये इसको (इन्-द्र) इंद्र कहते हैं। यही अन्नादिका भोग करता है। इतना वर्णन देखनेके पश्चात् इसी उपनिषद्का निम्न भाग देखिये–

गर्भ-प्रकरण।

(ऐ. उ० अध्याय २) खंड प्रथममें निम्न लिखित वाक्य अपने प्रचलित विषय के लिये अत्यंत उपयोगी हैं। उसलिये उनका अब विचार करते हैं–

पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति यदेतद्रेतः। तदेतत्सर्वेभ्योऽगेभ्यस्तेजःसंभूतमात्मन्येवात्मानं बिभर्ति। तद्यदा स्त्रियां सिंचत्यथैनज्जनयति। तदस्य प्रथमं जन्म। तत्स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति यथा स्वमंगं तथा...। तं स्त्री गर्भं बिभर्ति।
...तदस्य द्वितीयं जन्म॥ ऐ. उ. अ. २।१

"(यत् रेतः) जो यह रेत–वीर्य– है, वही (पुरुषे गर्भः) पहिले पुरुष में गर्भ होता है, (तत् एतत्) वह यह वीर्य (सर्वेभ्यः अंगेभ्यः) सब अंगोंसे (संभूतं तेजः) इकट्ठा हुआ तेज ही है। वह (आत्मनि एव आत्मना) अपने अंदर ही अपने आपको (बिभर्ति) धारण करता है। जब (तत्) वह रेत स्त्रीमें सिंचन किया जाता है, तब (अस्य प्रथमं जन्म) इसका पहिला जन्म होता है। पश्चात् वह वीर्य (स्त्रिया आत्मभूयं) स्त्रीके शरीरके साथ अपनासा– अपने अंग जैसा-बन जाता है। ...... इस गर्भका स्त्री धारण पोषण करती है। ...... पश्चात् प्रसूत होती है, वह उसका दूसरा जन्म है॥"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संपूर्ण अंगोंका तेज।

इसमें वीर्यका वर्णन किया है। हरएक अंगमें एक प्रकार का तेज होता है, उस प्रत्येक अंगके तेज का अल्प अंश इकट्ठा होकर जो सारभूत तत्त्व बनता है, वही वीर्य का बिंदु है। अर्थात् इस वीर्यबिंदुमें हरएक अवयव, अंग और इंद्रियका साररूप तेज है, इसीलिये इस वीर्यबिंदुके विकास से पिताके समान देह बन जाता है। इस कारण इस देहका पहिला जन्म पिताके देहसे जो वीर्य मातृगर्भाशय में जाता है उस समय होता है और दूसरा जन्म माताके गर्भाशयसे बाहिर आनेके समय होता है।

माताके देह में जो शरीर बनता है, उस देहमें आत्माका प्रवेश शिर स्थानीय "विदृति" द्वार से होता है। इस आत्मा के साथही साथमें अन्य देवताएं भी आकर स्वकीय नियत स्थानमें विराजती हैं। इस बातका विचार इससे पूर्व हो चुका है। इस प्रकार पाठक भी ऐतरेय उपनिषद् के पूर्व खंडोंके कथन के साथ इस खंडके कथन की तुलना करते जांय और इस रहस्य बातका अनुभव अपने अंदर करते जांय। यही अनुष्ठान का तत्त्व है। अब इस आत्माकी मुक्तता होनेका विचार निम्न प्रकार अग्रिम खंडमें किया है –

आत्माकी मुक्ति।

कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे, कतरः स आत्मा? येन वा पश्यति, येन वा श्रृणोति, येन वा गंधानाजिघ्रति, येन वा वाचं व्याकरोति; येन वा स्वादु चाऽस्वादु च विजानाति, यदेतद्धृदयं मनश्चैतत् संज्ञानमाज्ञानं, विज्ञानं, प्रज्ञानं, मेधा, दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा, जूतिः, स्मृतिः संकल्पः, क्रतुरसुः, कामो, वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवंति। एष ब्रह्मैष इन्द्र, एष प्रजापतिरेते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वे देवाः ... सर्वं प्रज्ञानेत्रं, प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं, प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा, प्रज्ञानं ब्रह्म ॥ स एतेन प्राज्ञेनात्मनाऽस्मा-ल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन् त्स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् ॥ ऐ० उ० अ० २।२

" यह कौन है जिसकी हम आत्माके नामसे उपासना करते हैं? कौनसा वह आत्मा है? जिससे देखता है, सुनता है, सूंघता है, वाणीका उच्चार करता है, स्वादु को जानता है, स्वादु तथा अस्वादु को जानता है, यह हृदय और यह मन, संज्ञान, (आज्ञान) आज्ञा, विज्ञान, प्रज्ञान, मेधा, दृष्टि, धृति, मति, मनीषा, (जूति) वेग, स्मृति, संकल्प, क्रतु, (असु) प्राण, काम और (वश) स्वाधीनता ये सब ही प्रज्ञान के नाम हैं। यह ब्रह्मा, यह इंद्र, यह प्रजापति ये सब देव हैं... यह सब प्रज्ञाके नेत्र से युक्त हैं। यह प्रज्ञानपर ही ठहरा है, सारा लोक प्रज्ञानेत्रवाला है, प्रज्ञान पर ठहरा है, प्रज्ञान ब्रह्म है। वह प्राज्ञ आत्माके द्वारा इस लोकसे ऊपर चढकर उस स्वर्गमें सारी कामनाओंको पाकर अमर हो गया । "

इसमें प्रारंभमें आत्माका स्वरूप बताकर अमर होनेका मार्ग बताया है। जिसकी शक्ति से दिखाई देता है, सुनाई देता है तथा अन्य कार्य किये जाते हैं, वह आत्मा है। इसीका चित् स्वरूप है, इसलिये यही ज्ञान-वाला अतएव " प्रज्ञान " है। संज्ञान आदि इसीके नाम हैं। यही ब्रह्मा, इंद्र, प्रजापति आदि नामसे वेदमें प्रसिद्ध है। यह जान कर प्रज्ञानरूप आत्मासे इस लोक से ऊपर उठकर, उस स्वर्गलोकमें सब इच्छाओंकी तृप्ति करके अमर होना चाहिये, यह उक्त उपनिषद् का तात्पर्य है।

अब देखना चाहिये, कि इस उपनिषद्वाक्य का भावार्थ क्या है। जिसकी शक्तिसे आंख देखता है, कान सुनता है, वह आत्मा है इस विषयमें कोई शंका नहीं; सर्वत्र उपनिषदोंमें यही कहा है। विशेषकर केन उपनिषद् के प्रथम खंड में यही विषय स्पष्ट हुआ है। अतः आत्माका स्वरूप इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकार ज्ञात हुआ और उसकी शक्ति की भी कल्पना हुई। अब बात रही कि, इस आत्माको (१) ऊपर उठाना, (२) स्वर्गधाममें पहुंचाना और (३) अमर करना, किस रीतिसे हो सकता है? किस प्रकार यह ऊपर उठाया जा सकता है, किस रीतिसे स्वर्गमें पहुंचता है और किस रीतिसे अमर होता है, यह विचार करना है। इस विचारके लिये इसके आगेके आगेका विचार अवश्य करना चाहिये।

विहृति द्वार।

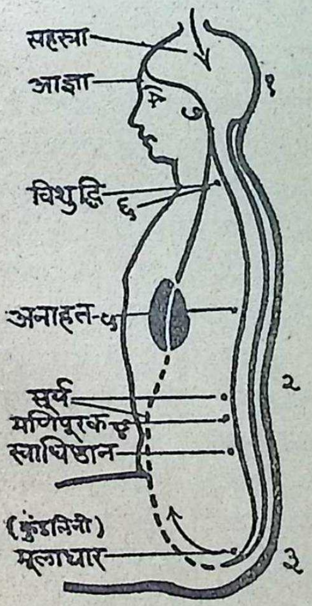

नंदनवन।

इसी लेखमें बताया ही है कि संपूर्ण देवोंके अंशोंके साथ यह आत्मा इस शरीरके अंदर 'विदृति' द्वारसे आ गया है। इस द्वारसे अंदर आकर मस्तिष्कमें रहा है। शरीरमें गुदासे नाभितकका प्रदेश भूलोक, बीचका प्रदेश अंतरिक्षलोक और हृदयसे ऊपर का मस्तिष्क प्रदेश स्वर्गधाम है। अतः पूर्वोक्त विदृति द्वार से अंदर प्रविष्ट होते ही यह स्वर्ग के उद्यानमें रहता है इसीका नाम पूर्वोक्त उपनिषद् वाक्यमें 'नांदन' कहा है, यही नंदनवन है। स्वर्ग, बहिश्त, नंदनवन आदि सभी नाम इसी स्थान के हैं। यहां ही कल्पना का "कल्प-वृक्ष" है और कामना पूर्ण करनेवाली "काम-धेनु" है। पूर्वोक्त उपनिषद्वचन में इस बातके सूचक "संकल्प तथा काम" शब्द अवश्य देखिये। इस प्रकार यह इस "नवद्वार पुरी" का सम्राट् आत्माराम इस नंदनवनमें विराजता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह स्थान अत्यंत प्रकाशपूर्ण है, जिस प्रकाश का सादृश्य जगत् में कोई भी पदार्थ नहीं बता सकता। यहां से यह आत्माराम नीचे उतरने लगता है। सीढी इसके लिये तैयार रहती है, यही पृष्ठवंशका मार्ग है। अथवा स्वर्नदी के प्रवाह से यह नीचे उतरने लगता है। दोनों का भाव एक ही है, क्यों कि पृष्ठवंश के अंदर से आनेवाले मज्जाप्रवाह का नाम सुषुम्ना, स्वर्नदी, स्वर्गगंगा आदि है और पृष्ठवंशमें अनेक ग्रंथियां हैं, उनको ही संकेतसे पांडीयां भी कहते हैं। इस स्थान से उतरनेके समय मस्तिष्कसे नीचे कंठमें प्रथम आता है और वहांसे नीचे उतरनेका प्रारंभ होता है।

चक्रव्यूहमें प्रवेश ।

उतरना आसान है, गिरना सुगम है, पतन विनायत्न हो जाता है, इस प्रकार इसका नीचे आना भी आसानीसे हो जाता है। उपनिषदमें कण्ठ, हृदय और नेत्र ये तीन स्थान इसके बताये हैं। "विदृति" द्वार से यह उक्त मार्ग से कण्ठमें आता है और वहांसे और नीचे उतरता है। स्वर्गधामसे "बाबा आदम" का पतन होने लगता है, इस समय प्रत्येक निचली सीढीपर उसको अनुभव होता है कि "मैं अधिक प्रकाश के स्थान से न्यून प्रकाशके स्थानमें जा रहा हूं।" परंतु अब उस बिचारे के आधीन नहीं रहा, कि फिर लौटना। क्यों कि "चक्रव्यूह में प्रवेश करना और वहां युद्ध करना अभिमन्यु जानता था, परंतु चक्रव्यूह से वापस लौट आना अभिमन्युसे नहीं हुआ। इस लिये वह उसी चक्रव्यूहमें मारा गया!!! चक्रव्यूह में जाना, वहां युद्ध करना और विजय प्राप्त करके फिर उसी मार्ग से वापस आना, यह बड़ा बिकट कार्य केवल एक ही वीर विजय अर्जुन ही जानता था।" इस महाभारतीय कथाका स्मरण यहां पाठक अवश्य रखें, क्यों कि प्रचलित विषयमें हमारा आत्मा भी इस शरीर रूपी अष्टचक्रोंसे युक्त चक्रव्यूहमें घुस रहा है और देखना है कि, इसका आगे जाकर क्या बनता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्येक सीढीपर नीचे उतरते ही उसको अनुभव हो रहा है कि पूर्व के समान वहां प्रकाश और ज्योति नहीं है । इस का अनुभव करता हुआ, यह वीर नीचे उतरता है। इस विचार से नीचे उतरता है कि, आगे क्या है यह देखेंगे । इसकी आशा होती है कि, आगे इससे भी अधिक उत्तम अवस्था प्राप्त होगी ! ! !

परंतु यह स्वर्गसे गिरा है, इसको अब आसानी से स्वर्गधाम कैसा मिलेगा ? स्वर्गसे भ्रष्ट होते ही स्वर्गका द्वार बंद किया गया है, और जैसा जैसा यह आगे बढता है, वैसे वैसे ऊपर जानेके किवाड बंद हो रहे हैं, इसका इसको पता नहीं ! ! ! अंतमें आकर यह इस चक्रव्यूहमें फँसता हुआ मूलाधार चक्रमें प्राप्त होता है । वहां मूल शक्ति भुजंगी पार्वती दुर्गा देवी ईश्वरी उमासे मिलता है और उसके सौंदर्य से उसके आधीन हो जाता है । इतनेमें वह भगवती देवी ऊपर जानेका द्वार बंद करती हैं । यहां इसका प्रकाश का मार्ग बंद होता है ।

जो प्रकाश ऊपरसे अर्थात् शीर्षस्थानीय ब्रह्मलोकसे आता है, वह एक एक किवाड बंद होनेसे कारण न्यून न्यून ही होता जाता है और मूलाधार चक्रका किवाड बंद होते ही वह अंधकारमय आकाशमें प्राप्त होता है। इसी अंधेरे आकाशमें वापस जानेके समय इसी पराभूत "इंद्र को उमा देवीका दर्शन" होनेका वर्णन केन उपनिषद् में है। परंतु वह वापस जानेके समय का वर्णन है। उक्त बात का अनुसंधान करनेसे पाठकोंको केनोपनिषद् के कथन की भी सत्यता ज्ञात हो सकती है । अस्तु ।

इस मार्ग– अर्थात् यहां के अज्ञात मार्गसे वह नाभिस्थानमें पहुंचता है और हृदयमें नाभिसे ऊपर चढ कर आता है । ऐतरेय उपनिषद्में इसका जो हृदयस्थान बताया है, वह यहां उसको प्राप्त होता है । यहांसे जो नाडी ऊपर मस्तिष्क तक जाती है, उसके द्वारा वह मस्तिष्कमें फिर जाता है और वहां नेत्रमें रहकर बाहिर की सृष्टिको देखता है, नासिकासे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आकर सुगंध लेता है, मुखमें आकर जिह्वासे स्वाद लेता है, कानमें आकर शब्द सुनता है, इस प्रकार यह दुनयवी मौजें करने लग जाता है! मस्तिष्क के जिस प्रदेशमें अब यह रहता है, वह उसका कैदखाना है। पाठक यहां स्मरण रखें कि मस्तिष्कमें जो इसका स्वर्गधाम था, वह इसके लिये अब बंद हुआ है। यद्यपि इस समय यह मस्तिष्कमें आया है तथापि पांचों पशुओंके आधीन होनेके कारण गुलामीकी अवस्थामें यह यहां रहता है!!! जिस समय यह अब आये हुए मार्ग से वापस जायगा और अपने प्रयत्नसे सब द्वारों को खोलकर स्वतंत्रतासे अपने पूर्व अनुभूत स्वर्गधाम में पहुंचेगा और स्वकीय इच्छासे वहां इसका आना जाना संभव होगा, तब ही इसको "स्व-तंत्र" अर्थात् बंधनसे निवृत्त अत एव मुक्त कहना संभव होगा। नीचे गिरनेका यह फल है। गिरना आसान है, परंतु उठना कठिन है?

पुरुषार्थका अवसर।

गिरना निःसंदेह बुरा है,परंतु गिर जानेसे ही ऊपरली अवस्थाका मूल्य जाना जाता है। परतंत्रता में आने से ही 'स्वातंत्र्य' की श्रेष्ठताका पता लगता है, गुलामीसे ही स्वाधीनताके सुख का महत्त्व है। अथवा यों कहिये कि गिरने की संभावनाके पश्चात् ही उठनेका पुरुषार्थ होता है,परतंत्र अवस्थानमें स्वाधीनता की प्राप्तिके परम पुरुषार्थ किये जाते हैं। तथा जो स्वाधीनताके लिये पुरुषार्थ करते हैं, उनका यश बढता है। सब लोग इन महात्माओं की प्रशंसा करने लगते हैं। यदि गुलामी, पराधीनता अथवा पतित अवस्था ही न होगी, तो पुरुषार्थीयोंके लिये यशःप्राप्ति किससे होगी? इसलिये सच्चे महात्मा लोग प्राप्त कठिनता से डरते नहीं, गुलामीमें रोते नहीं रहते, परंतु पुरुषार्थ करके ऊपर उठते हैं और दूसरों को उठाते हैं।

अतः अपने आत्माकी इस पराधीन अवस्थाके कारण दुःख करते बैठने का अवसर नहीं है। परंतु जो अवस्था प्राप्त हुई है उस से उन्नत होनेका पुरुषार्थ करना चाहिये। सदा पुरुषार्थ करनेका उत्साह धारण करके उद्यत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होना चाहिये, अपने से जितना हो सकता है, उतना परम पुरुषार्थ करके, अपनी उन्नति साध्य करनी चाहिये। इसका विचार करनेके पूर्व अपनी अवस्थाका यहां थोडासा विचार करना है-

शरीरमें देवताओंका निवास।

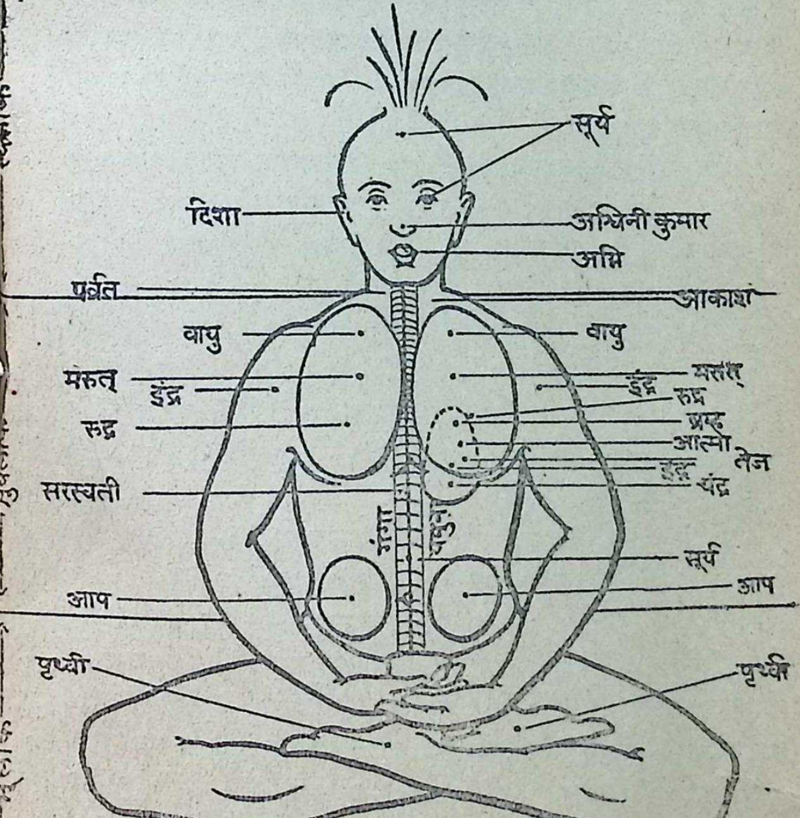

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐतरेय उपनिषद् तथा अन्य उपनिषद्, तथा वेदमंत्र और ब्राह्मण-वाक्योंके उपदेशसे जो देवताओं के स्थान का निश्चय होता है, वह इस चित्रमें बताया है । इस चित्रमें देखकर अपने देहमें- इस नवद्वारयुक्त अयोध्या नगरीमें- इस द्वारवतीमें- कहां कौनसी देवना निवास करती है, इसका पता लग सकता है । इस देहमें तीनों लोक कहां हैं, यह भी इसी चित्रमें देखिये । तथा विशाल जगत्का छोटासा चित्र अपने अंदर ही जाननेका यत्न कीजिये । अनुष्ठानका तत्व समझने के लिये इस अनुभव की अत्यंत आवश्यकता है ।

जगत् के अंदर परम पिता है और इस देहमें आपका आत्मा है। जगत्में अग्नि, वायु, रवि आदि तैंतीस देवताएं हैं, आपके देहमें भी उनके तेतीस अंश आकर रहे हैं, अर्थात् आपके देहमें अंशरूप तेतीस देवताएं निवास कर रहीं हैं । इस सब बीजरूप दैवी शक्तियों का तथा अपनी आत्म-शक्तिका भी यथोचित विकास करना इस समय आपका "परम धर्म" हैं।

इस चित्रमें थोडीसी देवताएं बताईं हैं, परंतु वहां सब तेतीस देवता-ओंकी कल्पना करनी चाहिये । क्यों कि यह शरीर त्रिलोकी की छोटीसी प्रतिमा है । इसलिये त्रिलोकीमें जितनी देवताएं हैं, इनके सब प्रतिनिधि अंशरूपसे इसमें आगये ही हैं ।

यह "प्रतिनिधि राज्यशासन संस्था" है, इसका यहां अनुभव कीजिये। मानवी संस्थाओंमें प्रतिनिधि चुननेका अधिकार कइयोंको होता है और कइयोंको नहीं होता । उस प्रकार का बहिष्कार इस आध्यात्मिक प्रातिनि-धिक संस्थामें नहीं है । वेदके द्वारा इस प्रकारके प्रातिनिधिक राज्यशासन संस्थाका उपदेश ऋषियोंको प्राप्त हुआ था, जिसमें सब के प्रतिनिधि चुने जानेका ही उपदेश प्रधान स्थान रखता था। काला, गोरा, पीला, लाल अथवा गन्दमी रंगके कारण किसी प्रकारका भेदभाव यहां उत्पन्न होनेकी संभावनाही नहीं है !! वैदिक आदर्शकी उच्चता यहां पाठक अनुभवमें देख सकते हैं । यदि इस समय वैदिक धर्मियोंके अंदर भेदभाव आया है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो वह वैदिक धर्म की जागृति न होनेके कारण ही है। अस्तु। इस प्रकारके कई बोध पाठकोंको यहां मिल सकते हैं।

अपनी आत्मशक्तिका ध्यान।

उक्त प्रकार अपने देहको विशाल जगत् की छोटीसी प्रतिमा और अपने आपको परमात्माके अमृत बीजसे युक्त "अमृत-पुत्र" समझिये। इसी बातका ध्यान कीजिये और कभी यह भाव अपने मनसे हटने न दें। इसीमें आत्मशक्ति की जागृति है, अपने आपको "अमृत-पुत्र" अनुभव करनेका यही एक "वैदिक-मार्ग" है। इस बातसे निम्न लिखित मंत्रों का अनुभव आप कर सकते हैं–

इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ
त्रयश्च त्रिंशच्च। मनोर्देवा यज्ञियासः॥ ऋ. ८।३०।२

"इस प्रकार (मनोः देवाः) मनुष्यके अंदरके देव हैं जो (यज्ञियासः) पूजनीय तथा (रिशादसः) बुराईका नाश करनेवाले (त्रयः-त्रिंशत्) तेतिस देव हैं।" यह इस मंत्रका तात्पर्य देखने और विचार करने योग्य है। ये तैंतीस देव (मनोः देवाः) मनुष्यके अंदर हैं, जैसा कि पूर्वोक्त चित्रमें बताया है। उस चित्रमें वास्तवमें संपूर्ण देवताओंका स्थाननिर्देश करना आवश्यक है, तथापि स्थान अल्प होनेके कारण सबको चित्रित करना कठिन हुआ। परंतु पाठक इस रीतिसे अन्य देवताओंकी कल्पना कर सकते हैं। इस प्रकार अपने आपको देवतामय अनुभव करने के पश्चात् निम्न लिखित मंत्रोंका अर्थ स्पष्ट हो सकता है–

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामेकादश स्थ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ॥ ऋ० १-१३९-११ य० ७-३९

"पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्यु लोकमें अर्थात् त्रिलोकीमें- प्रत्येकमें ग्यारह सब मिलकर- तैंतीस देव हैं।" यह वर्णन अध्यात्मपक्षमें अपने अंदर भी पूर्वोक्त प्रकार देखा जाता है। इसी प्रकार–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ये देवा दिव्येकादश स्थ० ॥ ११ ॥
ये देवा अंतरिक्ष एकादश स्थ० ॥ १२ ॥
ये देवा पृथिव्यामेकादश स्थ० ॥ १३ ॥ अथर्व १९।२७

त्रिलोकीके साथ तेतीस देव जिनका वर्णन इस प्रकार के सैंकडों मंत्रोंमें हुआ है. उनका अपने अंदर अनुभव इसी रीति से होता है और यह अनुभव करना वेदको अभीष्ट है। पाठक देख सकते हैं कि वेदका उपदेश अनुभवमें आनेसे अपनी शक्ति का पता लगता है। जो मनुष्य अपने आप को हीन और दीन समझता था, यदि उसको वेदका ज्ञानामृत पिलाया जाय, तो उसकी हीन वृत्ति लोप हो जायगी और वह अपूर्व आत्मिक बलसे युक्त होगा।

अपने अंदर तैतीस देवताओंका अनुभव।

इतना विवेचन देखनेके पश्चात् अब निम्न मंत्र देखिये

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे सर्वे समाहिताः ॥ १३ ॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा ॥ २३ ॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे गात्रा विभेजिरे ॥
तान्वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥ २७ ॥ अ. १०।७

" जिसके अंगमें सब तेतीस देव रहे हैं। जिसका खजाना तेतीस देव संरक्षित रखते हैं। जिसके अंगके गात्रोंमें तेतीस देव रहे हैं। उन तेतीस देवोंको अकेले ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं। "

यह वर्णन परमात्मा परक होते हुए भी उसके अमृत पुत्र में किस प्रकार घट सकता है, यह बात अब स्पष्ट हो गई है। इसीलिये वेदमें कहा है, कि–

ये पुरुष ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ॥ अ० १०।७।१७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"जो इस पुरुषके देहमें ब्रह्मको देखता हैं, वही परमेष्ठी प्रजापतिको जानता है।" परमात्मा की कल्पना ठीक प्रकार होने के लिये अपने अंदर वेद मंत्रोक्त उपदेशका अनुभव आना आवश्यक है। उस अनुभवको प्राप्त करने की रीति इस लेखमें बताई है। अब ऐतरेय उपनिषद् के वचन का अपने अंदर अनुभव देखने के लिये निम्न लिखित वेदमंत्र देखिये–

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य विभेजिरे। अ० ११।८।३१

"सूर्य चक्षु बनकर तथा वायु प्राण बनकर इस पुरुष की सेवा कर रहे हैं।" तथा–

सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १३ ॥
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १८ ॥
रेतः कृत्वा आज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ २९ ॥
शरीरं ब्रह्म प्राविशत् ॥ ३० ॥ अ. ११।८

"सब मर्त्य को भिगोकर देव पुरुषमें घुसे हैं ॥ मर्त्य घर बना कर देव पुरुषमें प्रविष्ट हुए हैं ॥ वीर्य का घी बना कर देव पुरुषमें आगये हैं ॥ शरीरमें ब्रह्म प्रविष्ट हुआ है ॥"

इन मंत्रोंमें "मर्त्यं, गृहं" ये शब्द इस शरीरके वाचक हैं, "पुरुष" शब्द मनुष्यवाचक हैं। "रेत का घी बनाकर देव इस पुरुषमें घुसे हैं," इस मंत्रभागमें तो स्पष्ट है कि, रेतले बननेवाले रजवीर्यसे उत्पन्न होनेवाले– इस देहमें सब देव आकर रहे हैं। इसीलिये निम्न मंत्रमें कहा है–

तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते।
सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥ ३२ ॥ अ० ११।८

"इस लिये (पुरुषं विद्वान्) इस पुरुषको यथावत् जाननेवाला ज्ञानी इसको (इदं ब्रह्म) यह ब्रह्म अथात् यह बडा शक्तिशाली है, ऐसा (मन्यते) मानता है, (हि) क्यों कि (सर्वाः देवताः) सब देवताएं इसमें (गावः गोष्ठ इव) गौवें गोशालामें इकट्ठी रहनेके समान रहती हैं।

*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मनुष्य के देहके अंदर अर्थात् जीवित देहके अंदर सब देवताएं रहती हैं और उनका मुख्य अधिष्ठाता आत्मा है, यह बात इस प्रकार वेद मंत्रों के प्रमाणों से स्पष्ट हो गई है। अपनी आत्मिक उन्नति करने के विचार में इस ज्ञान की बडी ही उपयोगिता है। उपनिषदों के रहस्य का विचार करनेके समय इसप्रकार वेद मंत्रोंकी सहायता होती है। वास्तवमें देखा जाय तो वेद मंत्रोंका आशय लेकर ही उपनिषदोंकी रचना हुई है। इस-लिये हरएक उपनिषद् के प्रत्येक कथन का विचार करने के समय वेद मंत्रोंकी संगति लगाकर ही देखना चाहिये और दोनोंकी संगतिसे ही अर्थका निश्चय करना चाहिये। अस्तु। यहां हमने देखा, कि अपने शरीर में शक्तियोंका निवास है, यह ज्ञान प्राप्त होनेसे किस प्रकार अपनी योग्यता ठीक ठीक ज्ञात हो सकती है। इतना ज्ञान होनेके पश्चात् अपनी उन्नतिका मार्ग अतीव सुगम हो जाता है।

उन्नतिका उपाय।

शक्तियां बीजरूपसे अपने अंदर हैं, इतना केवल ज्ञात होने से सिद्धि नहीं मिल सकती, सिद्धिके लिये अनुष्ठान अत्यावश्यक है। इस की रूपरेखा अब थोडीसी बतानी है।

बंधनमें पडा हुआ आत्मा मस्तिष्कमें बैठता है और जागृतिके व्यवहार करता है, तथा विश्राम लेने के लिये हृदय में आता है। आत्मा का मस्तिष्कमें निवास "प्रवृत्ति" का दर्शक है और हृदयमें निवास निवृत्तिका सूचक है। मस्तिष्कसे हृदयमें आना भी इस विचारके आधीन नहीं है। शरीर थक जानेसे इसको परवश होकर हृदयमें आना ही पडता है। इसका मस्तिष्कमें निवास जागृति बताता है और सुषुप्तिमें यह हृदयमें आता है। जिस समय यह स्वशक्तिसे हृदयमें उतरेगा, उसी समय उसको समाधि सिद्ध होगी। स्थान वही है, परंतु स्वाधीनतासे वहां पहुंचनेपर समाधि और परवश होकर पहुंचनेसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निद्रा, इतना भेद हो जाता है। देखिये स्वाधीनता और पराधानितामें कितनी भिन्नता है ! ! !

मस्तिष्कमें रहता हुआ यह आत्मा पंचज्ञानेंद्रियोंसे मिलकर नाना भोग भोगता है और मौजे उडाता है ! परंतु इन मौजोंमें उसको वह आनंद नहीं मिलता, कि जो वह चाहता है। इन इंद्रियोंके साथ उसकी वृत्ति सदा चंचल रहती है, कभी यह सुगंध लेता है, कभी शब्द सुनता है और कभी रूप देखने लग जाता है ! हरएक इंद्रियके साथ भला और कभी बुरा भाव भी लगा ही होता है। इस प्रकार वृत्तिकी चंचलता होनेके कारण इसको क्षणमात्र भी आराम नहीं मिलता, इसलिये इस समय इसको दो उपाय करने चाहियें–

(१) सबसे प्रथम बुरे भावोंसे मनको हटाना और केवल अच्छे भावों और अच्छे कर्मोंमें ही उसको लगाना।

इतना होनेसे आधा झंझाट इसके पीछेसे हट जाता है वेदमें—

" भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम। " (ऋ० १- ८९ -८)

" कान आदि इंद्रियोंसे हम सदा अच्छी बातें सुनें। " यह उपदेश तथा इसप्रकार का अन्य उपदेश इस मार्ग का द्योतक है। इसके पश्चात्–

(२) मनको एक ही सद्विषयमें लीन करके एकाग्र करना।

इससे चित्तकी सब व्यग्रता दूर होती है और जितनी एकाग्रता सिद्ध होती जायगी, उतना उसको आत्मशक्तिका अनुभव होने लगेगा। व्यग्रता की अवस्थामें जो अपने आपको अत्यंत निर्बल समझता था, वही अब एकाग्रताकी सिद्धि मिलनेके बाद अपने आपको " शक्तिका केंद्र " अनुभव करने लग जाता है ! ! ! प्रकाशके मार्गका आक्रमण प्रारंभ होते ही यही अपूर्व लाभ उसको होता है। इसको प्रकाशका मार्ग इसलिये कहते हैं कि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसमें " प्रकाश दर्शन " स्पष्ट रूपसे होता है। एकाग्रता सिद्ध होनेके पश्चात् प्रकाशदर्शन तथा अन्य अनुभव भी होने लगते हैं।

एकाग्रताका अभ्यास सिद्ध होते ही यह अपनी स्वाधीनतासे हृदय में उतर सकता है और वहांके अनुभव ले सकता है। हृदयस्थानमें जो प्रकाशपूर्ण स्वर्गधाम है वह इस समय दिखाई देता है. इसका वर्णन वेदमें निम्न प्रकार आता है–

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ अ.१०।२।६१

" आठ चक्र और नौ द्वारों वाली यह देवोंकी अयोध्या नगरी है, उसमें सुवर्णमय कोश तजसे परिपूर्ण स्वर्ग ही है। " इसी हृदयाकाशमें वह पहुंचता है और उसको तेज का अनुभव मिलता है।

प्रकाशका मार्ग।

आगे प्रकाशके मार्ग में ही अपने आपको रखना चाहिये। अर्थात् अपनी चित्तकी स्थिरता उसी प्रकाशमें करनी चाहिये जिससे आगेका पथ स्वयं विदित हो जाता है। सदा प्रकाशमें यह रहता है, इसलिये इस मार्गको " अर्चिरादि मार्ग " अर्थात् प्रकाशादि मार्ग कहते हैं। इसी प्रकाशमें चित्त की स्थिरता करने और दूसरे किसीमें ध्यान न देनेसे यह आये हुए मार्गसे फिर हृदयसे नाभिमें उतर कर वहांसे मूलाधार चक्रमें पहुंचता है यहां इसको उमा देवीका दर्शन होता है और वह सुषुम्ना मार्गसे ऊपर चढने लगता है। इस पर्वतारोहणसे कैलास शिखर पर पहुंचता है। इस समय उसको इतनी शक्ति आती है, कि जिस समय चाहे वह पूर्वोक्त " विदृतिद्वार "से अर्थात् सिरको फाड कर बाहिर निकलता है, इस समय बडा आवाज भी होता है। सब शरीर स्वाधीन करके योगसे तनुका त्याग करना इसीको कहते हैं–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पृष्ठवंश ।

(पर्व-वान् = पर्वत)

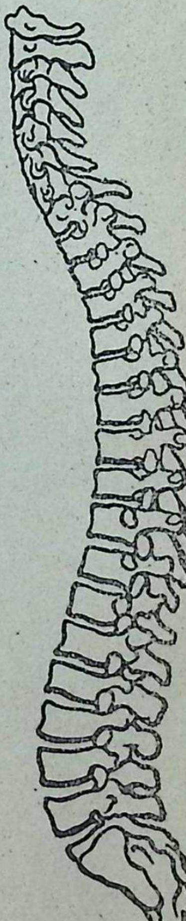

आजकल संन्यासियों की परंपरामें इस का प्रतिनिधिभूत एक उपाय करते हैं, वह यह है, कि जिस समय संन्यासी मरने लगता है अथवा जिस समय उसका प्राण चला जाता है, उस समय "शंख से उसका सिर फाड देते हैं।" और समझते हैं, कि ऐसा करने से वह मुक्त हुआ !! परंतु यह मूल बातका उपहास मात्र है !!! अपनी शक्तिसे विद्वातिद्वार खोलकर बाहिर जाना और बात है, तथा दूसरोंने शंख से मस्तक तोडना और बात है। अस्तु इस प्रकार यह प्रकाशके मार्ग का महत्व है। सब तत्वज्ञानके ग्रंथोंमें कहा है कि इस मार्गसे उक्त प्रकार जानेवालों को पुनर्जन्म नहीं होता। अस्तु।

यहां एक पृष्ठवंशका चित्र दिया है। इसीको "पर्वत" कहते हैं, क्यों कि इसमें "पर्व" होते हैं। जिस प्रकार बांसमें पर्व होते हैं, इसी प्रकार इसमें हैं। "पर्व" होने के कारण ही इसका "(पर्व-वत्) पर्वत" कहते हैं। इसीमें अनेक ग्रंथियां हैं और कई प्रकार के शक्ति-केंद्र हैं। अथर्वश्रुतिमें आठ चक्र कहे हैं, वे इसीमें हैं। इसका वर्णन किसी अन्य प्रसंगमें किया जायगा। इसी को पर्वत 'हिमवान्' कैलास, गिरि, आदि नाम हैं।

उपनिषद के रहस्य की बात जो इस लेखमें विशेष प्रकार से कहनी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

थी, वह उक्त वर्णन से दताई है । अपने अंदर देवताओंके अंशोंका निवास है और मैं उनका अधिष्ठाता हूं, यह मुख्य बात इसमें है । इसका विस्तार बहुत हा होना संभव है, उसका विचार किसी अन्य प्रसंगमें होगा । यहां इतनाही पर्याप्त है ।।

इन्द्रशक्तिवर्धनका अनुष्ठान ।

इसके पूर्व जो वर्णन किया हैं उसका मननपूर्वक उत्तम अभ्यास करके अपने मनके अंदर संपूर्ण बातों का ठीक ठीक ज्ञान स्थिर करना, यह सबसे प्रथम करना चाहिये। अन्यथा अनुष्ठान करना असंभव है ।

खानपानका पथ्य, अन्य रहना सहना इत्यादि सब पूर्व लिखे अनुसार करके मनसे चिन्ता को हटाना, तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, मत्सर, मद आदिके कारण भी मनसे हटानेका यत्न करना चाहिये । तथा मन शांत गंभीर विचारोंसे परिपूर्ण करना चाहिये ।

अपने घरके पारिवारिक जन अपने विचार के साथ सहमत होंगे तो अनुष्ठानमें सुविधा होगी, इसलिये यदि यह अनुकूल परिस्थिति न होगी तो उस विषयमें भी प्रयत्न करना चाहिये । इस सबका तात्पर्य यह है कि विरोध का वायु मंडल जहांतक हो सके वहांतक दूर रखना चाहिये और अपने चारों ओर शुभ विचारोंका पवित्र वायुमंडल बनाना चाहिये ।

यदि ऐसा न हुआ और यदि विरोधी वायु मंडलमें ही रहना पडा, तो अन्योंके द्वारा होनेवाले विरोधका परिणाम अपने मन पर न होनेके लिये अपना मन सावधान रखना उचित है । इसका सबसे उत्तम मार्ग यही है कि जो अपने सन्मार्गका विरोध करते हों, उनका भला करनेके लिये और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसको सद्‌बुद्धि प्रदान करनेद्वारा सन्मार्ग पर लानेकी प्रार्थना परमेश्वर के पास करना। जितना विरोधी वायुमंडल अधिक हो उतनी अधिक अपने मनकी शांति धारण करके उतनी अधिक ईशप्रार्थना करते जाना चाहिये। यह विरोधी वायुमंडल अपनी परीक्षा के लिये ही निर्माण हुआ है, ऐसा समझकर इस परीक्षामें उत्तीर्ण होनेका यत्न करना चाहिये। वास्तवमें देखा जाय, तो अनुकूल वायुमंडल की अपेक्षा विरोधी वायुमंडलसे मनकी शक्ति अधिक बढ सकती है; यदि अपना निश्चय स्थिर रहा तो ही शक्ति बढ जाती है, अन्यथा नहीं। इस प्रकार विरोधी वायुमंडलको अपनी उन्नति के साधनमें लगानेसे लाभ अधिक हो सकता है।

इस रीतिसे अपनी बाह्य परिस्थितिकी अनुकूलता संपादन करके अपने आंतरिक अनुष्ठानमें दत्तचित्त होना चाहिये। इस लिये यदि अपने अंदर अहिंसावृत्ति उत्तम प्रकार स्थिर हो जाय तो सबसे उत्तम होगा। किसीकी हिंसा न हो किसीको दुःख न पहुंचे, सबका कल्याण हो जाय, मैं अपनी ओरसे सबको अभय देता हू, इत्यादि रीतिसे अपने आचरणसे अहिंसाकी भावना स्थिर करना चाहिये। यह बात प्रारंभमें नहीं बन सकती, परंतु प्रयत्न करनेपर कालान्तरसे बन सकती है। शीघ्र बने या देरसे बने इस दिशासे प्रयत्न अवश्य होना चाहिये।

इसके पश्चात् घरके अंदर एक कमरा स्वच्छ सुंदर और मनोरम इस कार्य के लिये लेना चाहिये, उसमें धीर वीर तथा साधुसंतों के चित्र लगे हों और अन्य सामान भी ऐसा हो कि जो अपनी उपासना की अनुकूलता बढानेवाला हो। इस स्थानपर एक भी पदार्थ ऐसा न हो कि जो इस अनुष्ठान का विरोधी हो।

इस कमरेमें स्वच्छ और निर्मल वस्त्र पहिनकर स्नान आदि करके सुगंध पुष्पोंको वहां पास रखकर अपनी उपासना आदि सब दैनिक कार्य करके, चित्तकी समाधानतापूर्वक, मनकी पूर्ण निर्वैर भावनाके साथ अपना अनुष्ठान करना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसमें सबसे प्रथम एक साधारण प्राणायाम करना चाहिये। नासिकासे स्वरयुक्त श्वास लेना, जितना लिया जा सकता है उतना लेना, जब फेंफडे भर जांय तब स्वरस उच्छ्वास करना चाहिये। अर्थात् श्वास और उच्छ्वास करने के समय मंद शब्द होता रहे, बडा शब्द न हो, परंतु मंद शब्द होना चाहिये। इस मंद शब्दपर चित्त को जमाना चाहिये। आप जितना यह प्राणायाम कर सकते हैं, उतना कीजिये। कुंभक थोडा कीजिये। अथवा जितना विना आयास कर सकते हैं, कीजिये। इस प्रकार करनेसे चित्त की प्रसन्नता बढेगी और मनमें और शरीरमेंभी विलक्षण आरोग्य प्राप्त होनेका अनुभव होगा। इस विषयमें इसके पूर्व बहुत कुछ लिखा गया है। उसका भी यहां अनुसंधान कीजिये।

इसके पश्चात् अपना सीधा हाथ छातीपर रखिये, यहां ही संपूर्ण दैवी शक्तियोंके साथ इन्द्रशक्ति रहती है, यहांही–ईश–शक्तियोंका केन्द्र है, जो महातत्त्व कहा जाता है वह यहां ही है, इसी की वृद्धि करनी है। इसलिये अपनी छातीपर हाथ रखिये और यहां इन्द्र शक्तिके निवासका स्मरण कीजिये। संपूर्ण दैवी शक्तियोंके साथ परमात्माका मानसिक ध्यान अर्थात् उनके अनंत शक्तिओं में से कुछ शक्तियों का स्मरण कीजिये और अपने अंतरात्मा का परमात्मासे मेल होनेका ध्यान कीजिये। जिस प्रकार तालावमें तैरनेवाला जलमें रहता है उस प्रकार आप उस परमात्मामें है, उसकी अपार सत्ताके आधार से आपकी सत्ता है, वह चारों ओर है और आपका आत्मा उसके बीचमें है, वह जैसा बाहर है वैसा अंदर भी है, इत्यादि ध्यान कीजिये। और दूसरा कोई विचार मनमें न उठे, ऐसा इसी विचार पर चित्त एकाग्र कीजिये।

इस प्रकार एकाग्र चित्त करके जो ध्यान होता है वह शक्तिवर्धक होता है। इसी ढंगसे बाह्य इन्द्रशक्ति के साथ अपनी इन्द्रशक्तिका संबंध कल्पनासे कीजिये। चित्तमें यही विचार स्थिर रहे कि एक आत्मा परमात्माका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परस्पर संबंध जुड गया है। पहिले पहिले यह ध्यान ठीक नहीं होगा परंतु कुछ अभ्यास के पश्चात् शक्ति की वृद्धिपूर्वक बल बढनेका अनुभव होगा।

ये दो ध्यान प्रतिदिन नियमपूर्वक कीजिये और अन्यान्य बातों को पूर्वोक्त विधिपूर्वक कीजिये। इस प्रकार करनेसे आपके अंदर इन्द्रशक्ति बढेगी और आपको इसके बढनेका अनुभव भी होगा।

यह अनुष्ठान ऐसा है कि इसके विषयमें जितना आप प्रयत्न करेंगे उतना लाभ आपको अवश्यही मिल सकता है। जो संपूर्ण बातें इसमें लिखीं हैं वे तो बडे सुकृति पुरुष ही कर सकते हैं और उनके करने की अनुकूलता हरएक को होगी यह भी कहा नहीं जा सकता।

परंतु यदि सब प्रयोग विधिपूर्वक करनेकी संभावना न हो तो न सही, जो कुछ किया जाय अथवा जितना हो सकता है उतना हीं करना चाहिये। उससे कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा ही। यह अनुष्ठान वास्तवमें अति सुगम है, परंतु आजकल परिस्थिति ऐसी बिगडी हुई है कि उसमें धनादि होनेपर भी अपनी आत्मिक उन्नति करनेके साधन कम हीं मिलते हैं।

इसलिये ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि दिनमें एक या दोवार घण्टा या आधा घण्टा इस कार्य के लिये ही केवल अलग निकालकर इस समयमें कोई अन्य झंझाट न रखना। अन्य बातों के विषयमें जितना हो सके उतना करना और प्रतिकूल परिस्थितिमें परमेश्वर प्रार्थना का ही अवलंबन करना चाहिये, जिससे सब विघ्न क्रमपूर्वक दूर हो जायगे और अनुकूल परिस्थिति दिन ब दिन मिलती जायगी।

जितना करेंगे उतना लाभ अवश्य होगा।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयसूची ।

इन्द्रशक्ति	पृष्ठ २
इन्द्रशक्तिका विकास	३
१ मनुष्यजीवनका उद्देश्य	११
२ अपने अंदर की शक्तियाँ	४
३ अपने अंदर इन्द्रशक्ति	५
४ इन्द्र और स्वर्ग.	७
५ इन्द्रके गुणधर्म, इन्द्रके अर्थ	८
६ इन्द्रलोक	११
७ इन्द्रके पर्यायशब्द	१३
८ इन्द्रशक्तिके विकासके चिह्न	१५
९ इन्द्रतत्त्व क्या है?	१७
१० इन्द्र और सूर्यका प्रभाव	१९
११ इन्द्रशक्तिका अधिक परिचय	२५
१२ सब शक्तियोंका मूल स्रोत	२७
१३ अपने अंदर इन्द्रशक्ति	२८
१४ आपका ध्येय अभ्युदय है	३०
१५ मृत्यु और अमरत्व	३१
१६ इन्द्र और वृत्रका युद्ध	३४
१७ इन्द्र शक्तिका घातक खानपान	३८
१८ इन्द्र और मरुत्	४२
१९ प्राणायामकी पूर्व तैयारी	४३
२० आसन और प्राणायाम	४६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२१ प्रयत्नसे इन्द्रशक्तिका वर्धन	५०
२२ पितापुत्रसंबंध	५५
२३ ऋतुओंका साक्षात्कार	५६
२४ इन्द्रशक्तिवर्धक खानपान	५७
२५ अंतिम शब्द	६१
इन्द्रशक्तिवर्धक अनुष्ठान का तत्व	६३
ऐतरेय उपनिषद् का आशय	,,
वैदिक विकास वाद	,,
वैदिक संकोच वाद	६४
संकोच और विकासवाद का स्वरूप	६६
बीजप्रदाता जगत्पिता	६७
देवोंका प्रवेशमार्ग (२ चित्र)	६९
गर्भप्रकरण	७२
संपूर्ण अंगोंका तेज	७३
आत्माकी मुक्ति	,,
अष्टचक्र और नंदनवन (चित्र)	७५
चक्रव्यूहमें प्रवेश	७६
पुरुषार्थका अवसर	७८
शरीरमें देवताओंका निवास (चित्र)	७९
अपनी आत्मशक्तिका ध्यान	८१
अपने अंदर ३३ देवताओंका अनुभव	८२
उन्नतिका उपाय	८४
दो मार्ग	८५
प्रकाशका मार्ग	८६
इन्द्रशक्तिवर्धनका अनुष्ठान	८८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कृत-पाठ-माला ।

संस्कृत-पाठमालाके अध्ययनसे लाभ—

(१) अपना काम धंदा करते हुए फुरसत के समय आप किसी दूसरेकी सहायताके विना इस पुस्तकोंको पढकर अपना संस्कृत का ज्ञान बढा सकते हैं। (२) प्रतिदिन घंटा अथवा आधा घंटा पढनेसे एक वर्षके अंदर आप रामायण-महाभारत समझनेकी योग्यता प्राप्त कर सकते हैं। (३ पाठशालामें जानेवाले विद्यार्थी इन पुस्तकोंसे बडा लाभ प्राप्त कर सकते हैं। यदि आपके मनमें संस्कृत सीखनेकी इच्छा है, तो आप इन पुस्तकोंको मंगवाइये।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

(१) प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग। इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है। (२) चतुर्थ भाग। इस चतुर्थ भागमें संधिविचार बताया है। (३) पंचम और षष्ठ भाग। इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है। (४) सप्तमसे दशम भाग। इन चार भागोंमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंगी नामोंके रूप बनाने की विधि बताई है। (५) एकादश भाग। इस भागमें सर्वनाम के रूप बताये हैं। (६) द्वादश भाग। इस भागमें समासोंका विचार किया है। (७) तेरहसे अठारहवें भागतकके छः भाग। इन छः भागोंमें क्रियापदविचारकी पाठविधि बताई है। (८) उन्नीससे चौवीसवें भागतकके छः भाग। इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है। अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे, उनको अल्प परिश्रमसे बडा लाभ हो सकता है।

बारह पुस्तकोंका मूल्य ४) और डा. व्य. ॥)

चौवीस पुस्तकोंका मूल्य ६॥) रु. और डा. व्य. ।॥=)

प्रति भाग का मू० ।=)छः आने और डा० व्य.-)एक आना।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संपूर्ण महाभारत तैयार है।

अब संपूर्ण १८ पर्व महाभारत छाप चुका है। सजिल्द अथवा विनाजिल्द जैसा आप चाहते हैं वैसा तैयार है। इस महाभारत-का मूल्य विनाजिल्द ६०) रु० और सजिल्द ६५) रु० रखा गया है। तथापि यदि आप पेशगी म० आ० द्वारा संपूर्ण मूल्य भेजेंगे तो यह ११००० पृष्ठोंका संपूर्ण ग्रंथ हम ५६॥) में दे सकते हैं। सजिल्द पुस्तकोंके लिये आपको केवल ५) अधिक अर्थात् ६१॥) रु० भेजना पडेगा। आपसे रुपया आतेही सब पुस्तकें आपको भेज देंगे। भेजनेका व्यय आपको माफ करेंगे। आप अपना रेलका स्टेशन लिखिये। इस स्टेशनपर हम रेलवे पार्सलद्वारा यह ग्रंथ भेजेंगे जिससे आपको सब पुस्तकें सुरक्षित पहुंचेंगी। यदि रेलवेस्टेशन आपके पास नहीं है, तो डाकद्वारा भेज देंगे। रुपया म० आर्डरसे भेज दें, जिससे आधा डाकव्यय माफ होगा। वी० पी० से मंगवायेंगे तो सब डाकव्यय आपको देना होगा।

[सूचना- महाभारतका कोईभी फुटकर पर्व आप मंगवा सकते हैं। डाकव्यसहित मूल्य भेजना चाहिये।]

महाभारतकी समालोचना।

१ प्रथम भाग	मू० ॥)	डा० व्य० ।)
२ द्वितीय भाग (स्वर्गलोक)	" ॥)	" ।)

मंत्री- स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा.)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

१ प्रथम काण्ड	(सजिल्द)	मू० २)	डा. व्य.	॥)
२ द्वितीय काण्ड	,,	२)		॥)
३ तृतीय काण्ड	,,	२)		॥)
४ चतुर्थ काण्ड	,,	२)		॥)
५ पंचम काण्ड	,,	२)		॥)
६ षष्ठ काण्ड	,,	२)		॥)
७ सप्तम काण्ड	,,	२)		॥)
८ अष्टम काण्ड	,,	२)		॥)
९ नवम काण्ड	,,	२)		॥)
१० द्वादश काण्ड	,,	१)		।=)
११ त्रयोदश काण्ड	,,	१)		।=)
१२ चतुर्दश काण्ड	,,	१)		।=)
१३ १५से१८ तक ४काण्ड	,,	२॥)		॥।)

सूचना- येही काण्ड विनाजिल्द लेनेपर प्रत्येक का ॥) आठ आने मूल्य कम होगा।

अन्य ग्रंथ।

१ गीता-समीक्षा मू. =) डा. व्य. -)

२ श्रीमद्भगवद्गीता-लेखमाला

भाग १- २ प्रत्येकका मू० ॥) =)

,, ,, ३ ,, ,, ॥।) ≡)

3 SUN ADORATION by the Ruler of Aundh

मू० १) डा. व्य० ।=)

मंत्री- स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

योगसाधनमाला !

संध्योपासना ।

योगकी दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इसमें लिखी है । मूल्य १॥) डा. व्य. ।=)

वैदिक प्राणविद्या ।

प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार 'मनकी भावना' रखनी चाहिये उसका वर्णन इसमें है । मूल्य ॥) डा. व्य. =)

ब्रह्मचर्य ।

इस सचित्र पुस्तकमें अथर्ववेदीय 'ब्रह्मचर्य-सूक्त' का विवरण है । और ब्रह्मचर्य-साधनके और वीर्यरक्षणके अनुभवसिद्ध उपाय बताये हैं । मू० १) डा. व्य. ।-)

योगसाधनकी तैयारी ।

योगविषयक अत्यंत आवश्यक प्रारंभिक बातोंका इसमें संग्रह है । मूल्य ॥।) डा. व्य. ।-)

योगके आसन ।

योगकी आरोग्यवर्धक व्यायामपद्धति । मू० २) डा. व्य. ।=)
आसनचित्रपट मूल्य ≈) डा. व्य. -)

सूर्यभेदन-व्यायाम ।

सचित्र बलवर्धक योगके व्यायाम । मू० ॥) डा. व्य. =)

मुद्रक और प्रकाशक-श्री० दा० सातवळेकर
भारत-मुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा.)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आगम-निबंध-माला । ग्रंथः ६

ॐ

वैदिक-सर्प-विद्या ।

लेखक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
तथा
रामचंद्र काशिनाथ किरलोस्कर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा.)

द्वितीय वार २०००

संवत् १९७८, शके १८४३, सन १९२२

मूल्य आठ आने ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वाध्याय मंडलके पुस्तक ।

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय ।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या । नरमेध । "मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन ।" मूल्य १) एक रु. ।

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। सर्वमेध। "एक ईश्वरकी उपासना ।" मू. ॥) आठ आने । (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या । शांतिकरण। "सच्ची शांतिका सच्चा उपाय। " मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

[२] देवता-परिचय-ग्रंथ-माला ।

(१) रुद्र देवताका परिचय । मू. ॥) आठ आने ।

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता । मू. ॥=) दस आने ।

(३) ३३ देवताओंका विचार । मू. ≡) तीन आने ।

(४) देवता विचार । मू. ≡) तीन आने ।

[३] योग-साधन-माला ।

(१) संध्योपासना । योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्राक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू. १॥) (द्वितीयवार मुद्रित)

(२) संध्याका अनुष्ठान । मू. ॥) आठ आने ।

(३) वैदिक-प्राण-विद्या । (प्राणायाम-पूर्वार्ध) मू. १) रु.

(४) प्राणायाम .... }
(५) आसन .... } छप रहे हैं ।
(६) ब्रह्मचर्य- .... }

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आगम-निबंध-माला । ग्रंथः ६

ॐ

वैदिक-सर्प-विद्या ।

लेखक और प्रकाशक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा.)

द्वितीय वार २०००

संवत् १९७८, शके १८४३, सन १९२२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विद्याका उद्धार।

वेदके मंत्रोंके मननसे अनेक विद्याओंका उद्धार हो सकता है। इस लिये सर्प विद्याके मंत्र इस लेखमें पाठकोंके सन्मुख रखे हैं, आशा है कि, पाठक इनका विचार करकें " सर्प-विद्या " का विकास करनेमें सहायता देंगे।

इस देशमें प्रतिवर्ष ३५००० मनुष्य सर्पदंशसे मरते हैं। इसलिये इस विद्याका विचार और प्रचार होना अत्यंत आवश्यक है। पूर्ण आशा है कि विचारी वैद्य इस विषयमें सहायता करेंगे।

औंध (जि. सातारा.)
९ मार्गशीर्ष,
संवत् १९७८

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल,

मुद्रक—**चिंतामण सखाराम देवळे,** मुंबईवैभव प्रेस, गिरगांव-मुंबई.

प्रकाशक—**श्रीपाद दामोदर सातवळेकर** स्वाध्याय मंडल
औंध, (जि. सातारा.)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक सर्प-विद्या ।

(१) भूमिका ।

वैदिक कालकी पाठविधिमें अध्ययन करने योग्य विषयोंमें "**सर्प-देव-जन-विद्या**" इस नामकी एक विद्या थी । इस विद्याके विषयमें छांदोग्य उपनिषद्में निम्न वचन हैं—

अध्येमि..................देवविद्यां, ब्रह्मविद्यां,
भूत-विद्यां, क्षत्र-विद्यां, नक्षत्र-विद्यां,
सर्प-देवजन-विद्याम्-.................. ॥ २ ॥

छां. उ. ७।१।२; ७।१।४; ७।२।१; ७।७।१

इस वचनमें "**सर्प-देव-जन-विद्या**" शब्द है । यह एक विद्या है । इस समय यह विद्या प्रायः नष्ट हो चुकी है । साथ साथ उक्त वचनमें लिखीं हुईं अन्य विद्यायेंभी पूर्ण रूपसे नष्ट होगई है ! ! पाठक यहां देख सकते हैं कि, वैदिक कालमें कितनीं विद्यायें थीं, जिनका नामनिशान भी इस समय नहीं है ।

"**सर्प-देव-जन-विद्या**" का पता इस समय लगना बडा ही मुश्कील है, इसके समान कोईभी विद्या आज कल किसी रूपमें और किसी देशमें विद्यमान नहीं है । प्राचीन ऋषिकालमें ये सब विद्यायें वेदसे ही निकली थीं । "सृष्टिके प्रारंभमें वेदसे सब विद्यायें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाहर आतीं हैं और प्रलय कालमें सब विद्यायें गुप्त होतीं हैं ” ऐसा कई कहते हैं। जो विद्या वेदमें होगी, उसको जाननेके लिये सृष्टिके प्रारंभ के समयकी प्रतीक्षा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, वेदका निरंतर मंथन करनेसे वह विद्या वेदसे ही बाहिर आसकती है । इस कार्यके लिये वेदका निरंतर आलोचन होनेकी आवश्यकता है; प्रायः सब आर्षविद्यायें जो नष्ट हो चुकीं हैं, इसी रीतिसे पुनः ज्ञात हो सकतीं हैं । इस विषयमें जो कठिनता है, वह केवल वेदके निरंतर अभ्यास होनेकी ही है । दूसरी कठिनता पक्षपात रहित होकर वेदके प्रेमके साथ निष्ठायुक्त अंतः-करणसे अध्ययन होनेकी है । इस प्रकारका अध्ययन जब कभी प्रारंभ होगा, तब वैदिक विद्यायेंभी प्रकाशित हो सकतीं हैं । परंतु यह कैसे हो सकता है ? प्राचीन कालमें वेदपाठियोंको चिंता नहीं थी, इसलिये वे निश्चिंत होकर अपनी आयु विद्याकी वृद्धिके लिये अर्पण कर सकते थे । जब कभी वह अवस्था होगी, तबही वेदसे विविध विद्याओंका प्रकाश हो सकता है।

इस समय सर्पविद्याके थोडेसे मंत्र इस लेखमें एकात्रित किये हैं; इनका विचार करनेसे आशा हो सकती है कि, जब कभी इनका विचार पूर्ण होगा, तब “ **सर्प–विद्या** ” जानी जा सकती है, और “सर्प–विद्या” के जाननेके पश्चात् “**सर्प–देव–जन–विद्या**” जाननेका मार्गभी सुगम हो सकता है। कृपा करके पाठक इस दृष्टिसे इन मंत्रोंको देखेंगे, तो अधिक लाभ हो सकता है; क्योंकि एकके विचार की अपेक्षा यदि अधिक विद्वानोंके विचार इकट्ठे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होंगे, तो बहुत लाभ होना संभव है । इतनी प्रार्थना करनेके पश्चात् विषयका प्रारंभ करता हूं—

(२) 'सर्पों' के नामोंका विचार ।

सर्पोंके कई नाम वेदमें तथा संस्कृत भाषामें आगये हैं । कई नाम केवल वेदमें अथवा विशेषतः अथर्ववेदमेंही हैं; ऋग्यजुःसाम इन तीनों वेदोंमें सर्पोंके विषयमें बहुतही थोडा विचार है । जो विशेष लिखा है वह अथर्ववेदमेंही है । जो नाम वेदोंमें हैं, इनमेंसे कई नाम आधुनिक संस्कृत ग्रंथोंमें नहीं दिखाई देते, तथा जो नाम आधुनिक संस्कृत ग्रंथोंमें हैं उनमेंसे कई नाम वेदमें नहीं हैं ।

" सृप् " धातु का अर्थ " भूमिके साथ साथ जाना, रेंगना " ऐसा है । इस धातुसे "सर्प" शब्द बनता है । " भूमिके साथ साथ रेंगने अथवा चलनेवाला प्राणी " यह इस सर्पका धात्वर्थ है । सर्प जातिके सबही प्राणी इसी प्रकार चलते हैं । "नाग" यह दूसरा शब्द सर्पवाचक है । "नाग" शब्दके दो अर्थ हैं, (नगे भवः नागः) जो नग अर्थात् पर्वतमें होता है वह नाग कहलाता है । (न गच्छति इति अ-गः । न+अगः=नागः) जो स्थिर नहीं रहता उसको नाग कहते हैं । सर्प पहाडोंमें होते हैं और बडे चपल होते हैं इस कारण उनको "नाग" शब्द प्रयुक्त होता है । सर्पके लिये निम्न शब्द वाग्भट्टमें दिये हैं—

दर्वीकरा मंडलिनो राजीमंतश्च पन्नगाः ॥
त्रिधा समासतो भौमा विभिद्यंते त्वनेकधा ॥

वाग्भट अ. हृ.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"दर्वींकर, मंडलिन्, राजीमान् ये तीन मुख्य जातियां हैं, परंतु गौण जातियां अनेक हैं । (१) "दर्वी-कर" यह नाम उन सर्पोंका होता है कि जिसको कडछी के समान फणा होती है, इसको फणीभी कहते हैं। (२) "मंडलिन्" सर्प वह होता है कि गोल चक्कर लगाकर बैठता है, [मराठी भाषामें इसको 'कवड्या साप' कहते हैं] (३) "राजीमान्" जिस सर्पपर (राजी) रेषायें होतीं हैं । येहीं सर्पोंकी मुख्य तीन जातियां हैं । इसके अतिरिक्त निम्न नाम जातिवाचकहीं प्रतीत होते हैं—

अनंतो वासुकिः पद्मो महापद्मोऽथ तक्षकः ॥
कर्कोटकः कुलिकः शंख इत्यष्टौ नागनायकाः ॥
अनंतो वासुकिः शेषः पद्मनाभश्च कंबलः ॥
शंखपालो धार्तराष्ट्रस्तक्षकः कालियस्तथा ॥

"(१) अनंत, (२) वासुकि, (३) पद्म, (४) महापद्म, (५) पद्मनाभ, (६) तक्षक, (७) कर्कोटक, (८) कुलिक, (९) शंख, (१०) शेष, (११) कंबल, (१२) शंखपाल, (१३) धार्तराष्ट्र, (१४) कालिय" इतनीं सर्पकीं और जातियां संस्कृत ग्रंथोंमें लिखीं हैं । इनमें पूर्वोक्त तीन जातियां मिलानेसे सतरह जातियां होतीं हैं । "सर्प" नाम संपूर्ण सर्प जातिका समझना उचित है तथा "नाग" नाम फणी जातीका साधारण नाम समझना योग्य है ।

सांप्रतकालमें भरतभूमिमें नाग तथा अन्य बहुत सर्प जातिके प्राणी हैं । अफ्रिकामें "अस्प (Asp) तथा विषसिंचक नाग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(Spitting Cobra)" होते हैं । विषसिंचक नाग प्राचीन कालमें इस देशमें थे । ये बडे भयानक होते हैं और दूरसे ही विष विशेषकर आंखमें फेंक देते हैं, इनका विष इतना प्रखर होता है कि दूरसे फेंके हुए विषसेभी प्राणी मर जाता है ! !

साधारणतः नाग चार हाथ लंबा होता है, परंतु बंगालके सुंदर बनमें दस बारह हाथ लंबे नाग होते हैं । कई केवल दो हाथही लंबे होते हैं । बंगालके नाग बड़े बलवान होते हैं, इसलिये उनको पकडनेके लिये ३, ४ मनुष्य आवश्यक होते हैं परंतु अन्य छोटे नागोंको एक मनुष्यभी पकड सकता है ।

कई कहते हैं कि, सर्पोंकी २१ जातियां हैं, परंतु उनमें केवल चार जातीके सर्पही विषयुक्त होते हैं, अन्य विषहीन ही होते हैं । परंतु वास्तविक बात यह कि प्रायः प्रत्येक सर्प विषयुक्त ही होता है, किसीमें थोड़ासा विष होता है और कईयोंमें प्रखर और भयानक विष होता है । जिसके विषसे मनुष्यादि प्राणी मर जाता है, उसको "विष-मय-सर्प" कहते हैं, परंतु थोडे विषवाले सर्पके दंशसे नहीं मरता इसलिये उसको निर्विष कहते हैं ।

नागकी फणा के ऊपर एक प्रकारका चिन्ह बीचमें होता है, इसी जातिके कई स्थानके सर्पोंपर नहीं भी होता । ये ही सर्प भयानक विषसे युक्त होते हैं । सर्प जातिके बहुत प्राणी " चूप् " ऐसा आवाज सूक्ष्म रीतिसे करते हैं । नाग भी यह आवाज करता है, परंतु नागजातीके सर्पोंका खास आवाज " फूत्कार अथवा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फुस्स् " शब्द द्वारा बताया जाता है। कई नागोंका यह फूत्कार चार पांचसौ हाथोंके अंतर पर भी अच्छी प्रकार सुनाई देता है। यह सामान्य वर्णन हुआ, अब वेदमें सर्पोंका वर्णन देखिये—

(३) वेदमें सर्प वर्णन।

अथर्व वेदके दशम कांडमें सर्पोंके बहुतसे नाम आते हैं, देखिये—

१ उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं वारुग्रम् ॥ ४ ॥
२ पैद्वो हंति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम् ॥
पैद्वो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाक्वाः ॥ ५ ॥
३ अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा॥
४ अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च ॥ १० ॥
५ इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ॥ ११ ॥
६ हता स्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ॥
दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्ववितं जहि ॥ १३ ॥
७ इंद्रो मेहिमरंधयत् पृदाकुं च पृदाक्वम् ॥
स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् ॥१७
अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम् ॥ २४ ॥

अथ. १०।४

"(१) (अहीना) सर्पोंका विष शुष्क काष्ठके समान कमजोर हो जावे ॥ (२) पैद्व नामक घोडा कसर्णील, श्वित्र, असित, रथर्वी, और पृदाकु सर्पोंका सिर फोडता और उनको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मारता है । (३) इस खेत में स्त्री सर्प और पुरुष सर्प रहते हैं। (४) अघाश्व और स्वज का यह औषध है । (५) ये पृदाकु पीछे हैं। (६) तिरश्चिराजी मरगये, पृदाकु का चूर्ण होगया; दर्वी, करीक्रत, श्वित्र और असित इन सर्पोंको दर्भोंमें ठोक दो। (७) इंद्रनें पुरुष पृदाकु सर्प तथा उसकी स्त्री पृदाकी को तथा स्वज, तिरश्चिराजी, कसर्णील और दशोनासि सर्पोंको पकडा है।

इन मंत्रोंमें सर्पोंकी जातियोंके निम्न नाम आ गये हैं—(१) अहि, (२) कसर्णील, (३) श्वित्र, (४) असित, (५) रथर्वी, (६) पृदाकु, (७) पृदाकी, (८) अघाश्व, (९) स्वज, (१०) तिरश्चिराजी, (११) दर्वी, (१२) करीक्रत, (१३) दशोनसी, ये सब शब्द इस सूक्त में सर्प जातिके वाचक हैं। पाठक यहां आश्चर्य न करें कि, तिरश्चिराजी आदि शब्द अन्यत्र अन्य पदार्थोंके वाचक हैं, और, यहां सर्पवाचक कैसे हो सकते हैं ? वैदिक शब्द गुणबोधक होनेके कारण जहां जहां वह गुण होता है, वहां उस शब्द का प्रयोग होता है । अन्यत्र " सर्प और नाग " ये शब्द जंगली और पहाडी लोकोंके वाचक होते हुए भी यहां सर्प जातीके वाचक हैं। इसी प्रकार सब शब्दोंके विषयमें समझना उचित है। जब यह वैदिक शब्द-प्रयोगोंकी विशेषता समझमें आजायगी, तब कोई संदेह नहीं हो सकता, तबतक अर्थके विषयमें संदेह हुआ तो कोई आश्चर्य नहीं ! ! पाठक जैसा जैसा वेदका अभ्यास करेंगे वैसा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैसा उनका परिचय इस शब्दार्थ—व्यवस्था के साथ हो जायगा और तत्पश्चात् इस समयका संशय सतायेगा नहीं । अस्तु ।

उक्त सर्प वाचक शब्दोंमें कई शब्दोंका अर्थ समझमें आता है, परंतु कई शब्दोंके विषयमें अबतक अर्थ निश्चय नहीं हुआ; जिनका अर्थ निश्चित हुआ है उनका अर्थ नीचे दिया है ।—

वैदिक नाम	लौकिक संस्कृत के नाम	आशय
१ अहिः	अहिः	घातक सर्प
२ श्वित्रः		सफेद ,,
३ असितः		कृष्ण ,,
४ तिरश्चिराजी	राजिमान्	तिरच्छी रेषावाला सर्प
५ दर्वी	दर्वीकर	कडछी के समान फणासे युक्त सर्प.
६ दशो—नसी		दंशसे नाश करनेवाला विषसर्प.

इतने शब्दोंका उक्त भाव इस समय मुझे ज्ञात हुआ है, ये शब्द सरल और सुगम ही हैं । अन्य शब्दोंसे व्यक्त होनेवाले लक्षण उक्त शब्दोंसे अबतक मुझे ज्ञात नहीं हुए, यदि कोई इस विषयमें अधिक प्रकाश डाल सकता है तो उसका लेख अवश्य प्रसिद्ध किया जायगा । पूर्वोक्त संस्कृत श्लोक के सर्प वाचक शब्दोंमें एक शब्द " **कंबल** " है, यह शब्द प्रायः केशवाले महा सर्पका बोधक होगा, तथा पूर्व मंत्रोक्त " **पृदाकु** " शब्द

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महा अजगर का वाचक होनेकी संभावना है। अन्य शब्द निश्चित लक्षण करने की दृष्टिसे इस समय मेरे लिये दुर्बोधही हैं। यदि कोई विद्वान इस अज्ञान को दूर कर सकता है, तो उसके बडे उपकार हो सकते हैं।

उक्त प्रत्येक शब्द नागकी प्रत्येक जातिका वाचक है, जब उसका ठीक ठीक मूल अर्थ ज्ञात होगा, तब सर्पकी जातीके लक्षण ज्ञात हो सकते हैं, सर्प विद्याका विचार करनेवाले लोग इसका अधिक संशोधन करें।

अब वेदमें आये सर्पोंके नामोंका विचार करेंगें। निम्ननाम वेदमें आगये हैं—

अघाश्व (अथर्व. १०।४।१०) अज—गर (अथर्व. ११।२।२५।; २०।१२९।१७) इस शब्दसे ही पता लग जाता है कि यह (अज) बकरेको (गर—गल) निगलता अथवा भक्षण करता है। **असित** (अ—सित)—(अथर्व. ३।२७।१) यह कृष्ण सर्पका नाम है। **आलिगी, विलिगी** (अथ. ५।१३।७)। **आशी—विष** (ऐ. ब्रा. ६।१) जिसके मुखके अंदर विष रहता है। **करि—क्रत; कनि—क्रत** (अथ. १०।४।१३)। **कल्माषग्रीव** (अथर्व वेद) कुल्माष—ग्रीव। **कसर्णील**। (अथ. १०।४।५) **क्शर्णील**। **जूर्णी** (अथ. २।२४।५)। **तिरश्च—राजी**। (तै. सं. ५।५।१०।२), **तिरश्चि—राजी** (अथर्व वेद) **तिरश्चीन—राजी** (मै. सं. २।१३।२१)। **तैमात** (अथ. ५।१३।६; ५।१८।४)। **दर्वि, दर्वी** (अथ. १०।१।१३)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दशोनसी (अथ. १०।४।१७) **नशोनशी**=दंश करनेसे नाश करता है। **नाग, महानाग** (शत. ब्रा. ११।२।७।१२)। **पृदाकु** (अथर्व वेद) **रज्जु—दत्वती**। (अथ. ४।३।२; १९।४७।७,८) दांतवाला रज्जु । **रथर्वी** (अथ. १०।४।५)। **लोहिताही** (तै. सं. ५।५।१४।१; मै. सं. ३।१४ १२; वा. सं २४।३१)=लाल सर्प, अथवा जिसके काटसेने खूनका वमन होता है ऐसा सर्प। **वाहस** (तै. सं. ५।५।१३।१; मै. सं. ३।१४।१९; वा. सं. २४।३४)। **सेरभ, सेरभक** (अथ. २।२४।१)। **सेवृध, सेवृधक** (अथ. २।२४।१)। **श्वित्र** (अथ. १०।४।५; १३; तै. सं. ५।५।१०।२)। **सतीन–कंकत** (ऋ. १।१९१।१)। **सर्प** (ऋ. १०।१६।६)। **स्व–ज** (अ. ७।३।५८)। **अहि**। (ऋ. ९।१०४।७)

इतने नाम सर्पवाचक हैं। कईयोंके मतसे इनमेंसे थोडेसे नाम सर्पवाचक नहीं हैं, परंतु कई दूसरे टीकाकार ये सब नाम सर्प वाचकही समझते हैं।

अब **महाभारतके** आदिपर्वमें जो ‘ **अस्तिक–पर्व** ’ है उसके ३५ वे अध्यायमें सर्पोंके विविध जातियोंके नाम दिये हैं, वे नाम नीचे देता हूं।—(१) शेष, (२) वासुकी, (३) ऐरावत, (४) तक्षक, (५) कर्कोटक, (६) धनंजय, (७) कालीय, (८) मणिनाथ, (९) आपूरण, (१०) पिंजरक, (११) एलापत्र, (१२) वामन, (१३) नील, (१४) अनील, (१५) कल्माष, (१६) शबल, (१७) आर्यक, (१८)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उग्रक, (१९) कलशपोतक, (२०) सुमन, (२१) दधिमुख, (२२) विमल पिंडक, (२३) आप्त, (२४) शंख, (२५) वालिशिख, (२६) निष्ठानक, (२७) हेमगुह, (२८) नहुष, (२९) पिंगल, (३०) बाह्यकर्ण, (३१) हस्तिपद, (३२) मुद्गरपिंडक, (३३) कंबल, (३४) अश्वतर, (३५) कालीयक, (३६) पद्म, (३७) वृत्त, (३८) संवर्तक, (३९) शंखमुख, (४०) कूष्मांडक, (४१) क्षेमक, (४२) पिंडारक, (४३) करवीर, (४४) पुष्पदंत, (४५) बिल्वक, (४६) बिल्वपांडूर, (४७) मूषकाद, (४८) शंखशिरा, (४९) पूर्ण भद्र, (५०) हरिद्रक, (५१) अप–राजित, (५२) ज्योतिक, (५३) पन्नग, (५४) श्रीवह, (५५) कौरव्य, (५६) धृतराष्ट्र, (५७) शंखपिंड, (५८) विरजा, (५९) सुबाहु, (६०) शालीपिंड, (६१) हस्तिपिंड, (६२) पिठरक, (६३) सुमुख, (६४) कौणपाऽशन, (६५) कुठर, (६६) कुंजर, (६७) प्रभाकर, (६८) कुमुद, (६९) कुमुदाक्ष, (७०) तित्तिंरि, (७१) हलक, (७२) महासर्प, (७३) कर्दम, (७४) बहुमूलक, (७५) कर्कर, (७६) अकर्कर, (७७) कुंडोदर, (७८) महोदर.

इन नामोंमें कई नाम वैदिक नामोंके साथ मिलते हैं जैसा—

वैदिक नाम	महाभारत के नाम
अ–सित	नील
श्वित्र	अ–नील

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कल्माषग्रीव	कल्माष
पृदाकु (आखु-पृद्)	मूषकाद

अन्य शब्दोंमें भी सादृश्य होगा, परंतु उन सबका अर्थ ज्ञात नहीं हुआ, इस लिये कुछ लिखा नहीं जासकता। महाभारतके सर्पोंके नामोंसे कई अधिक लक्षण ज्ञात होते हैं, देखिये-(१) **मणिनाथ**-जिसके मस्तकमें मणि होता है, (२) **बाह्यकर्ण**-जिसके सिर पर दो सींगसे होते हैं, कदाचित् वे कर्णही होंगे; (३) **अपराजित**-जिसपर रेषायें नहीं होतीं, इसके विरुद्ध "**तिराश्चि-राजी, राजिल, राजिमान्**" ये सर्प हैं, अर्थात् कईयोंपर रेषायें होतीं हैं, और कईयोंपर नहीं होतीं, (४) **ज्योतिक**-रात्रीके समय जिसका सिर चमकता है, (५) **कौणप-अशन**—जो प्राणियोंके शरीर खाता है, यह महा अजगर होगा जो हिरण आदिको साबित निगलता है; (६) **महासर्प**—यह प्रायः बंगालके सुंदर बनका बडा सर्प होगा; (७) **कर्कर**—जो "कर्र" ऐसा आवाज करता है। इन सर्पोंके अर्थ विदित होगये, अन्य शब्दोंके अर्थ, सर्पोंको देखकर तथा उनके लक्षणों का पता लगाकर, ज्ञात हो सकते हैं। वेदसे लेकर आधुनिक संस्कृत ग्रंथोंमें जो जो सर्पोंके नाम आगये हैं, उन सबको इकट्ठा करनेसे (८०) अस्सीसे अधिक नागोंकी जातियां प्राचीन आर्योंको विदित थीं, ऐसा प्रतीत होता है; इस समय युरोपीयन प्राणि-शास्त्र-ज्ञोंको नागोंकी केवल २५ जातियां ज्ञात हैं। इससे ही पाठक जान सकते हैं कि इस "**सर्प विद्या**" के विषमय आर्योंमें कितना अधिक ज्ञान था और आधुनिक कालमें भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कितना अधिक विचार होने की आवश्यकता है । अस्तु । अब सर्प जातियोंका विचार इतनाही लिखकर अन्य विचार करता हूं—

(४) सर्पोंकी उत्पत्ति और वृद्धि ।

सर्प " अंड–ज " प्राणी हैं, अर्थात् इनकी उत्पत्ति अंडों में से होती है । सजातीय स्त्रीपुरुष सर्पोंके शरीरसंबंधसे सजातीय सर्प उत्पन्न होते हैं, तथा इनमें व्यभिचार और स्वयंवर की प्रथा होनेसे विजातीय स्त्री सर्पिणीके साथभी इनका शरीरसंबंध होता है, और इससे वर्णसंकर होकर अनेक संकर जातियां उत्पन्न होतीं हैं ! ! ! इसी लिये महाभारतके आस्तिक पर्व अ० ३९ में कहा है कि उक्त कारणसे इनकी जातियोंकी गिनती करना अत्यंत कठिन काम है ।

नागस्त्री वर्षमें एकवार अंडे देती है, और प्रतिसमय १९ से २० तक अंडे देती है । अंडे सफेद रंगके होते हैं और कबूतरके अंडेके समान बडे होते हैं । अंडे स्वयं सूर्य की उष्णतासे परिपक्व होते हैं और बच्चे यथासमय बाहिर आते हैं । बाहिर आते ही भक्ष्य प्राप्त करनेके लिये इधर उधर भ्रमण करने लगते हैं । यद्यपि नाग का बच्चा बडाही सुंदर दिखाई देता है, तथापि उसको कभी हाथ नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि एक दिनकी आयुका नागका बच्चा भी काटेगा तो मनुष्य मर सकता है, इतना तीव्र विष उसमें होता है । इस लिये नागका बच्चा जहां दिखाई देगा वहां ही उसको मृत्युके हवाले करना चाहिये, तथा उसके भाई बंधु जो वहाँही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किसी स्थानपर होंगे, उनको ढूंढकर उनकोभी उसके साथ भेज देना उचित है।

नाग की आयु बडी दीर्घ होती है। ऐसा कहा जाता है कि एक हजार वर्ष नाग जीवित रहता है, परंतु इसमें सत्यका अंश कितना है यह कहा नहीं जासकता। इसकी आयु बडी दीर्घ होनेका कारण इतनाही है कि, यह अपने शरीरकी चमडी बहुधा प्रतिमास उतार सकता है, और फिर नवजवान बन सकता है। यदि मनुष्य इस प्रकार अपनी वृद्धावस्थाके प्रारंभमें अपने शरीरकी चमडी उतार सकेगा, तो मनुष्यभी अतिदीर्घ आयुतक जीवित रह सकता है। ऋषिमुनियोंने इस रीतिसे अनेक प्रयत्न किये थे, जो कि चरक सुश्रुतादि ग्रंथोंमें "**आयुष्कामीय**" अध्यायोंमें लिखे मौजूद हैं। परंतु उनका प्रयोग इस समय करनेवाले नहीं हैं। उनमेंसे एक प्रयोगमें लिखा है कि विशिष्ट औषधिका सेवन करनेसे शरीरके सब बाल, दांत आदि गिर जाते हैं और फिर नये आते हैं, चर्म भी नया आजाता है और मनुष्य इस प्रकार फिर युवा बन जाता है। परंतु उक्त प्रयोग करनेवाले उत्साही मनुष्य और करानेवाले सुविज्ञ वैद्य आज कल मिलना कठिन है। तात्पर्य **सैंकडों वर्ष जीवन धारण करनेकी युक्ति सर्पविद्याके ज्ञानसे प्राप्त होना संभव है**, परंतु इस विषयमें बहुतही आलोडन होनेकी आवश्यकता है।

सब सर्प जातिमें नाग ही अत्यंत विषयुक्त होता है तथा क्रोधी उग्र और दीर्घद्वेषी होता है, तथापि स्वयं किसी कारण के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विना किसी अन्य प्राणीपर अथवा मनुष्यपर बहुधा हमला नहीं करता । परंतु इसका स्वभाव अत्यंत क्रूर होनेके कारण अत्यंत थोडीसी खिजावटसे भी यह काटनेके लिये प्रवृत्त होता है ।

कई लोक कहते हैं कि नागको एकवार दुःख देनेसे वह कभी भूलता नहीं, उस दुःख देनेवालेका शब्द स्मरण रखता है और बहुत समयके पश्चात्‌भी उसको पहचानकर पूर्व द्वेषसे काटता है । परंतु इस विषयका कोई अनुभव हमने नहीं देखा । हमारे मित्रोंमें कई ऐसे शूर भी हैं कि जिन्होंने सौ पचास नाग सर्पोंको यमधर्मके पास भेज दिया है, परंतु वेभी उक्त बातकी सत्यताका अनुभव नहीं कहते । कदाचित् कई जाती के नाग इस प्रकार स्मरण रखते होंगे । इसलिये उचित तो यह है कि, नागको अथवा सर्पको पहिले दुःख न देना, परंतु किसी समय उसको दुःख पहुंचा तो उसको जीवितही नहीं रखना चाहिये ।

(५) सर्पके इंद्रिय ।

महाभारतके नामोंमें " बाह्य-कर्ण " यह एक नाम है। जिसको कान बाहिर दिखाई देते हैं वह " बाह्यकर्ण सर्प " कहलाता है । इस जातिके सर्पोंसे भिन्न किसीभी सर्पके कान दिखाई नहीं देते, परंतु कानोंके विनाही वह शब्द का श्रवण करता है । संस्कृतमें " चक्षुः-श्रवाः " शब्द सर्पवाचक है, इससे पता लगता है कि, यह आंखोंसेही सुनता है । युरोपीयन प्राणि-शास्त्रज्ञोंमें इस विषयमें अबतक कोई निश्चित ज्ञान नहीं है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाग तथा सर्पके फेंफडे बडे लंबे होते हैं और वह अपने फेंफडोंमें पूरा श्वास ले सकता है। दीर्घश्वास अंदर लेना और उच्छ्वास पूर्णतासे बाहिर छोडना, यह प्राणायामकी क्रिया सर्प उत्तम रीतिसे कर सकता है । उसके दीर्घजीवनका यह भी एक हेतु हो सकता है। इस बातको देखनेसे मनुष्य इससे प्राणायाम की क्रिया सीख सकते हैं और पूर्ण श्वासोच्छ्वाससे दीर्घायु बन सकते हैं । पूर्ण श्वास लेकर जब यह "फूत्कार" करता है तब इसका शब्द दूरतक सुनाई देता है ।

इसके शरीरके तीन विभाग होते हैं, इसका मूत्र जलरूप नहीं होता है, परंतु सखत होता है । इसका शरीर फाडनेपरभी इसके मूत्राशयका पता नहीं लगता, तथापि किसी स्थानपर मूत्राशय अवश्य होगा ।

नागका मुख छोटा होनेपरभी वह तथा अन्य सर्पभी अपने आकारकी अपेक्षा बडे आकारवाले प्राणीकोभी निगल सकते हैं, क्योंकि उनका मुख सीधा और तिरछा खोला जा सकता है ।

नाग प्रायः जलमें तैर सकता है, तथापि जलमें जानेको वह पसंद नहीं करता । बंगालमें कई ऐसे सर्प हैं कि जो जलके अंदरही बडी देरतक रहते हैं । परंतु इस प्रकार जलचर नाग बहुतही थोडे हैं । प्रायः नाग जलसे दूर रहना चाहता है। एक समय महाराष्ट्रमें कृष्णा नदीको महापूर आया था, उस समय बहुतही नाग जलके प्रवाहके साथ वह रहे थे । उसमें एक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदमीभी बह गया था । परमेश्वर कृपासे वह किसी मंदिरके शिखर पर ठहर गया । जब वह अदमी वहां बैठ गया, तो उसके चारों ओर बडे सर्प इकठ्ठे हुए, उसके शरीरपरभी चढे, परंतु पानीके प्रवाहसे भयभीत होनेके कारण किसीने उसको दो दिनतक काटा नहीं !! यह बात जिसके साथ बनीथी उसीने कही, इसलिये यहां लिखी है । यद्यपि सर्प जलमें काटता नहीं और प्रवाहसे घबराता है तथापि किसीभी समय उसपर विश्वास रखना उचित नहीं है ।

सर्प प्रायः वृक्षोंपर चढते हैं और वहांके प्राणी खाते हैं । भक्ष्यके पीछे पडा हुआ सर्प किसीसे डरता नहीं । उस समय वह बडा दौडता है, परंतु नाग अथवा कोई सर्प कितना भी दौडनेवाला हुआ, तथापि मनुष्यके दौडनेके बराबर उसका वेग नहीं होता । इस कारण नाग चढाई करके आगया, तो आदमी दौड कर अपना बचाव कर सकता है ।

नागके सब दांत गिरानेपर बहुत दिन तक वह कुछ भी खाता नहीं, और खानेपर भी वह बहुत समय जीवित नहीं रहता, इस लिये कई लोग जो स्वयं उसको मारते नहीं वे उसके सब दांत गिराकर उसको छोड देते हैं परंतु अहिंसा की दृष्टिसे कदाचित् यह ठीक नहीं होगा ।

नाग सर्दीके दिनोंमें मंद होता है । इसी शीत ऋतुमें उसको पकड़ना अथवा मारना सुलभ होता है । उष्णताके तथा वृष्टिके दिनों में वह बडा ही उग्र होता है, इसलिये इन दिनों में उसको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छेडना कठिन है। इन दिनोंमें बडी सावधानता के साथ उसकी व्यवस्था करना चाहिये।

गर्मीके ऋतुमें ही सर्पोंके युग्म होते हैं, इस कारण इनको ऋतु-गामी कहा जा सकता है। स्त्रीपुरुष सर्पों को पहचानना कठिन है, परंतु प्रायः पुरुष सर्प आकार में छोटे होते हैं और उनकी दूम किंवा अग्रभाग बहुत बारीक नहीं होता।

फणा फैलाने के विना नाग कभी हमला नहीं करता। शत्रुको डर बतानेके लिये जब वह जमीनसे ऊपर उठता है, उस समय अपना आधा भाग भी खडा करता है और मुखसे फूत्कार करता है। सचमुच इस समय यह बडाही भयानक दीखता है। काटनेके समय फणा बंद करके ही काटता है क्योंकि फणा फैलाकर वह काट नहीं सकता।

(६) रहनेका स्थान और उसका भक्ष्य।

प्रायः सर्पोंका निवासस्थान पुराणे मकान, गिरे हुए मंदिर, दीमक का वल्मीक, वृक्षोंके कोटर, भूमिके विवर, तथा इसी प्रकारके अन्य स्थान होते हैं। सर्प स्वयं विवर बना नहीं सकता, इसलिये दूसरोंके बनाये हुये विवर में स्वयं प्रवेश करके रहाता है और उस स्थानके पहिले स्वामीको खाता है अथवा भगा देता है, ओर इस प्रकार स्थानका स्वयं मालिक बन जाता है। यह इसका स्वभाव साम्राज्य बढानेवाले कुटिल राजनीतिज्ञोंके समानही बडा कुटिल होता है, इसलिये इसकी गतिकोभी " कुटिल गति "

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहते हैं। " कुटिल गति " और " कुटिल नीति " का तात्पर्य एकही है।

इसका भक्ष्य गिलहरी, चूहा, मेंडक, छोटे पक्षी, अंडे, छोटे कीमी आदि ही प्रायः होता है। यह दूधभी पीता है। बडे अजगर बडे बडे प्राणियोंको निगलता है। किसी जातिका सर्प अपना भक्ष्य चबाकर नहीं खा सकता। सर्प कभी मरा हुआ प्राणी नहीं खाता, अन्न न मिलनेकी अवस्थामें अथवा बडे सर्दीके दिनोंमें वह कई मास तक खानपानके विनाही रह सकता है, इसीलिये इसको " **पवनाऽशन** " अर्थात् वायुभक्षक कहते हैं। किसी प्राणीको खानेके पूर्व दंश करके उसको बधिर करता है और पश्चात् निगलने लगता है। परंतु मनुष्यको जो काटता है वह डरकें समय अपने बचावके लिये ही काटता है। वाग्भट्टमें कहा है—

आहारार्थं भयात्पादस्पर्शादतिविषात्क्रुद्धः।
पापवृत्तितया वैराद्देवर्षियमचोदनात्॥
दशंति सर्पास्तेषूक्तं विषाधिक्यं यथोत्तरम्॥

वाग्भट उ. स्था. अ. ३६

(१) खाने के लिये, (२) भयसे, (३) पांवका स्पर्श होनेसे (४) विष बढ जानेसे, (५) क्रोधित होनेसे, (६) दुष्ट स्वभाव होनेसे, (७) वैरके कारण अथवा (८) देव, ऋषि, यम इन की प्रेरणासे सर्प काटता है। इनमें आगे आगेके सर्पके काटनेमें विष अधिक होता है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(७) नागका विष ।

नागका विष अत्यंत भयंकर होता है । एक बिंदु रुधिरमें मिल जानेसे बडेसे बडे प्राणीका मृत्यु हो सकता है । नाग की तालुमें दाईं और बाईं और तीन तीन दांत होते हैं, उनमें सबसे आगेका विष–दंत होता है । इसी लिये इस का नाम संस्कृतमें "**आशी–विष**" तालुमें विष धारण करनेवाला कहते हैं। देखिये संस्कृत भाषाका एक एक शब्द कितनी विद्या देता है! विष-दंत अंदरसे खोखला होता है और दांतके अग्रभागके पहिले ही छोटासा सुराख होता है, उस सुराखमें से विष बाहिर आता है । दांतके पीछे विषका कोश होता है । यदि किसी कारण यह विषदंत टूट गया, तो पीछला दांत उसका कार्य करने के लिये तैयार रहता है । दंश करनेके समय ये दोनों विषदंत आगे आकर खडे होते हैं, अन्य समयमें तालुके साथ चिपक जाते हैं ।

विषदंत के अतिरिक्त सर्पको दूसरे दांत भी होते हैं । विषसर्पको एकहि दंतपंक्ति होतीं है और निर्विष अथवा न्यून विषवाले सर्पको दो दंतपंक्तियां होतीं हैं । दंतपंक्तियों को देखनेसे सर्प निर्विष है अथवा सविष है इसकी परीक्षा हो सकती है ।

नाग का विष चिकणा और सफेद शहद के समान होता है, सूखने पर कीकरके गोंदके समान दीखता है, इसकी रुची बहुतहीं कडुवी होती है । एक सुईके अग्रभाग पर जितना लग सकता है उतना जिव्हापर लग जानेसे कई घंटोंतक मुख कडुवा रहता है । इस प्रकार उसकी रुची न देखनी ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अच्छी है, क्यों कि यदि इस समय मुखमें अथवा गलेमें किसी स्थानपर चमडी फटी होगी तो उसके द्वारा विष रुधिरमें प्रविष्ट होकर मृत्यु प्राप्त होनेकी संभावना हो सकती है। इस लिये विषकी परीक्षा न करनी ही उचित है। नाग का विष रक्तमें मिलनेसे ही मृत्यु होगा, नीरोग और व्रणरहित चमडी पर गिरनेसे कोई खराबी नहीं हो सकती। जब यह विष रक्तमें पहुंचता है तब सब ज्ञान-तंतुओंके व्यवहार बंद करता है, उनके केंद्रस्थानोंको बधिर करता है, और अंतमें हृदयको बंद कर देता है। यह विष इतना भयंकर होता है कि बडी धमनी के रक्तमें पहुंचने पर एक मिनिटके अंदरही मृत्यु हो जाता है। यह सुखनेपर अथवा गीली अवस्थामें एक जैसाही मारक होता है। सर्पका विष दूसरे विषसर्पपर कोई परिणाम नहीं करता, परंतु निर्विष सर्पोंका नाश कर सकता है। सर्पके विषसे मरे हुए प्राणीका रक्त भी उसी प्रकार भयंकर विषमय हो जाता है। सन १८७१ में एक स्त्रीको सर्पदंश हुआ। दंशके पश्चात् उस स्त्रीका दूध उसके बच्चेने पीया, पश्चात् बच्चा दो घंटोंमें मर गया और माताका देहांत चार घंटोंमें हुआ!!

यह अनुभव देखा है कि एक के पीछे दूसरा ऐसे ९ प्राणियोंको सर्पदंश होनेपर पहिले आठ मर गये और नौवेको कुछभी नहीं हुआ। अर्थात् विषकोशमेंसे विष समाप्त होनेपर यदि नागने काट लिया तो कोई हानी नहीं होती। इतना भयानक विष परमेश्वरने क्यौं बनाया है? ऐसी शंका हो सकती है, उत्तरमें निवेदन है कि इस विष में भी परमेश्वरनें अमृत रखा है। वैद्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोक (१) सूचिकाभरण, (२) अघोर नृसिंहरस, (३) प्रतापलंकेश्वर आदि विलक्षण गुणकारी औषधियां इसी नाग के भयंकर विषके मिश्रणसे बनाते हैं। अपस्मार (मिर्गी) की बीमारी में इस विषका प्रयोग करनेसे बडा लाभ होता है। महारोग और महाकुष्ट आदि भयंकर रोगोंमें इस विषका उपयोग करनेसे बहुत लाभ हो सकता है। तात्पर्य इस विषसे धन्वंतरी वैद्य अमृत बना सकता है। इतना उपयोगी विष बनाने के लिये परमेश्वरने नागोंकी उत्पत्ति की है। विषसे दूसरे विषका नाश किया जा सकता है इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

विषेण हन्मि ते विषम् ॥

अथ. ५।१३।४

" मैं इस विषसे तेरे विषका नाश करता हूं। " बडेबडे रोग शरीरमें विष पहुंचनेसे होते हैं, इसलिये उस विष का नाश करनेके लिये उससे भी भयंकर विष चाहिये। इसलिये सर्पके द्वारा विष बनाया जाता है। कुशल वैद्य इसका उपयोग करे और लोगोंको रोगोंसे बचावे। तथा इस सर्प जातीका और भी एक उपयोग है, ये सर्प सब जगत्‌मेंसे विष को अपने अंदर खींच लेते हैं और जगत् को विषरहित करते हैं, देखिये—

सोदक्रामत्, सा सर्पानागच्छत्, तां सर्पा उपाह्वयन्त, विषवत्येहीति ॥ १३ ॥ तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम् ॥१४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक्, तां विषमेवाधोक् ॥ १५ ॥ तद्विषं सर्पा उपजीवंति ॥ १६ ॥

अ. ८।१४

" वह जगती उत्क्रांत होगई और सर्पोंके पास आगई, उनको सर्पोंनें कहा कि हे विषवती यहां आओ ॥ उसका वैशालेय तक्षक बच्चा था तथा अलाबुपात्र वर्तन था ॥ धृतराष्ट्र ऐरावतने उसका दूध निकाला, वह विषही दोहा गया ॥ वह सर्पोंके पास है।"

जगती सर्पोंके पास गई तो सर्पोंको उसमें विषही नजर आया। धृतराष्ट्र, ऐरावत, तक्षक आदि सर्पोंनें उससे विषकाही दोहन किया। अर्थात इस जगती से ईख मीठास का दोहन कर रहे हैं, और सर्प विषको ले रहे हैं !!! जिसका जैसा स्वभाव होता है वह उस बातको ही लेता है। सर्प जगती से विषको अपने अंदर खींचते हैं और जगतीको निर्विष कर देते हैं। इसी प्रकार विच्छू आदि कर रहे हैं। इस दृष्टिसे ये सब विषयुक्त प्राणी बडा भारी उपकार ही सब सृष्टिपर कर रहे हैं। इसलिये वेद कहता है कि—

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिव्यामनु ॥

य. १३।६

" जो पृथिवी में सर्प हैं उन को नमस्कार है। " क्यों कि वे उक्त प्रकारका कार्य कर रहे हैं। यद्यपि सार्वभौमिक दृष्टिसे और तात्विक विचारसे इस प्रकार सर्पोंका महत्व और उपयोग है, तथापि वैयक्तिक दृष्टिसे इनका बडा भारी भय है, इसमें कोई संदेह नहीं। इसलिये वेदमें निम्न प्रार्थना है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमंतजब्धो भृमलो गुहा शये ॥ क्रमिर्जिन्वत्पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्न सर्पन् मोपसृपत् यच्छिवं तेन नो मृड ॥

अथ. १२।१।१६

" हे पृथिवि ! जो सर्प और [तृष्ट–दंश्मा] सख्त काटनेवाला [वृश्चिकः] विच्छु है वह (हेमंत–जब्धः) हेमंत ऋतुकी सर्दीसे सिकुडा हुआ घबराकर (गुहा शये) भूमिके विवरमें रहा है, वह तथा कोई अन्य क्रमि जो ये सब [प्रावृषि] वृष्टिके कालमें (एजति) बडी हलचल करते हैं, उसमें से कोई भी (मा न उप सृपत्) मेरे पास न आवे, जो (शिवं) शुभ होगा उससे (नः मृड) हमको सुख दो । "

सर्प सर्दीके दिनोंमें मंद होते हैं और वृष्टिके दिनोंमें प्रबल और क्रूर होते हैं, इनमेंसे कोईभी मेरेपास न आवे, यही इच्छा उक्त मंत्रद्वारा प्रकट होगई है । सब मनुष्य स्वसंरक्षण के लिये यही चाहते हैं । तत्वज्ञानी लोक सर्पोंका उपकार बेशक वर्णन करें, परंतु वेभी सर्पोंको अपनेपास आने नहीं देंगे ! ! इसका हेतु स्पष्टही है । क्योंकि सबको भीति है कि—

सर्पस्त्वा हनिष्यति ॥

अथ. ११।४।४७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" सर्प हनन करेगा !" यह भीति है, इसलिये उसको कोईभी पास करना नहीं चाहता । इतनाही नहीं परंतु सर्पके समान कुटिल भी कोई न बने, इस विषयमें वेदकी स्पष्ट आज्ञा है, देखिये—

माऽहिर्भूर्मा पृदाकुः ॥

यजु. ६।१२

" (अहिः) सर्प (मा भूः) मत् बन, अजगर मत् बन । " अर्थात् सर्पके समान कुटिल और हिंसक न बन, तथा अजगर के समान सुस्त न बन, यह वेदका उपदेश है । तात्पर्य तत्वज्ञानकी दृष्टिसे सर्पजातीका उपयोग बडा है, वैद्यकी कुशल प्रक्रियामें सर्पविष अत्यंत उपयोगी है, इतना होनेपरभी सर्वसाधारण जनता की व्यावहारिक दृष्टिसे उस सर्पके पास जानेके लिये अथवा उसे अपने पास करनेके लिये कोई तैयार नहीं, यह वास्तविकही है ।

(८) सर्पदंश.

नागके काटनेके तीन प्रकार होते हैं । उनका स्वरूप निम्न प्रकार है—

खातमखातमुत सक्तं....विषं ॥

अ. ५।१३।१

(१) " **सक्तं** "—नागके काटनेके प्रारंभमेंही, उसका विषदंत अंदर जानेके समय, मनुष्य आत्मसंरक्षण करनेके लिये उसको धक्का देकर दूर फेंकनेका यत्न करता है । इस अवस्थामें दांतोंसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

केवल चर्म खुरचा जाता है । इस प्रकारका दंश हानिकारक नहीं होता। इसका नाम " सक्त:दंशः " है।

(२) " अ–खातं " काटनेका प्रारंभ होनेके पश्चात् एक दो निमेष चले जानेके नंतर नागको धक्का देकर दूर फेंकनेकी अवस्थामें विषदंत थोडासा अंदर पहुंचता है, परंतु बिष गिरानेके लिये सर्पको जितना चाहिये उतना समय नहीं मिलता । इस प्रकारके दंशोंमेंही रक्त बाहिर आकर बहता है और विष शरीरपर अथवा जमीनपर गिरा हुआ नजर आता है । इसका नाम " अ–खातः दंशः " है।

(३) " खातं "–काटनेका प्रारंभ होनेके पश्चात् दो तीन निमेषसे अधिक समय होनेकी अवस्थामें नाग पूर्ण रीतीसे काटता है, अपने विषदंत खूब अंदर पहुंचाता है, और विषभी पूर्णतासे अंदर गिरा देता है । दांत पूर्णतासे अंदर जानेके कारण इस अवस्थामें उसको धक्का देकर दूर करनाभी अशक्य होता है । इस दंशमें विष बाहिर दिखाई नहीं देता। इसका नाम " खातः दंशः " है। 'खात' का अर्थ पूर्णतासे खोदा हुआ है।

पहिले दो प्रकारके सर्पदंश घातक नहीं होते, और जो बचते हैं वे इस प्रकारके दंश होनेके कारणही बचते हैं । तीसरा दंश इतना घातक होता है कि उससे बचना अत्यंत कठीनही समझना चाहिये । इसलिये सावधानताके साथ, नाग काटनेके समय जितना हो सके उतना शीघ्रही उसको धक्का देकर दूर करनेका यत्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करना चाहिये । दयालु परमेश्वरने मनुष्यके अंदर स्वसंरक्षणकी शक्ति रख्खी है, इसलिये अत्यंत डरपोक मनुष्यभी अपने स्वभावसे हीं सर्पको दूर फेंकनेका यत्न उस समय करता है । हमनें सावंत-वाडीमें एक स्त्रीका उदाहरण देखा, कि जब उस स्त्रीको सर्पने काटा, उसी समय उस स्त्रीनें सर्पको पकडकर अपने मुखसे बडेही क्रोधसे उसी सर्पको काट लिया । आश्चर्य यह हुआ कि वह नाग मर गया और स्त्री बच गई । इससे यह अनुमान हो सकता है कि मरनेके समय कमजोर मनुष्यभी कितना धैर्य बता सकता है ! ! !

तीसरे प्रकारका दंश अत्यंत हानिकारक होता है । इस दंशमें [० ०] ऐसे दो छिद्र व्रणके स्थानमें होते हैं । सर्पका एक विष-दंत किसीकारण टूटा होगा, तो एकही छिद्र होगा । एक छिद्रसे गया हुआ विषभी मृत्यु लानेके लियें पर्याप्त है । सुईसे जितना छिद्र होता है उतनाही यह छिद्र होता है । नागसे भिन्न इतर सर्प जातिके दंशमें इन दो छिद्रोंके अतिरिक्त अन्य दंतोंके व्रणके चिन्ह हुआ करते हैं ।

विच्छू, डेमु, आदिके दंशका एकही छिद्र होता है तथा इनके दंशसे दंशस्थानका दुःख अधिक होता है । सर्पदंशके स्थानमें उनकी अपेक्षा दुःख कम होता है । केवल दंशके स्थान देखकर यह नागका दंश है वा नहीं, इसका पता कुशल विष-वैद्यही लगा सकते हैं । साधारण लोगोंके उपयोग केलिये निम्न लक्षण कदाचित् सहायता दे सकते हैं । (१) सर्पदंशके छिद्र कई घंटोंतक दिखाई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देते हैं, (२) सर्पदंशका स्थान नीलवर्ण कृष्णवर्णसे युक्त दीखता है। (३) सर्पदंशमें रक्तके बिंदु व्रणके द्वारपर सूखे हुए नजर आते हैं। (४) सर्पदंशके स्थानपर उसके मुखका द्रव पदार्थ लगता है और वह सूखनेपर चमकता है। (५) नागदंशके स्थानसे चार अंगुल ऊपर सखत रस्सीसे बांधकर चक्कूके नोकसे उस दंशके स्थानका खून निकालनेका यत्न करनेपर सर्पदंशमें रक्त नहीं आयेगा, और आगया तो काले रंगका आवेगा।

सर्पदंश होते ही वहांका स्थान सूझने लग जाता है, थोडे समयमें सूझ कम होती है, आधा घंटेके पश्चात् फिर सूझ आती है। पहिला सूझन वहांके विषके कारण होता है, जबतक वहां विष रहता है तबतक ही पहिला सूझन होता है।

विष अंगमें प्रविष्ट होते ही वह अशुद्ध रक्तकी रक्तनाडीसे ऊपर हृदयके पास जानेका यत्न करता है।

मात्राशतं विषं स्थित्वा दंशे दष्टस्य देहिनः।
देहं प्रक्रमते धातून् रुधिरादीन् प्रदूषयन्॥

वाग्भट उ. स्था. अ. ३६

(१) सौ निमेष तक दंशके स्थानमें विष रहता है, तत्पश्चात् (२) रुधिरादि धातुओंको दोषयुक्त करता हुआ आगे बढने लगता है। यदि मुख्य बडी धमनीमें विषदंत घुस गया तो हृदयमें विष जल्दी पहुंचता है और मृत्यु भी अतिशीघ्रही होता है। दो छेदों द्वारा दो विषबिंदु शरीरमें प्रविष्ट होते हैं, ये परस्पर विरुद्ध दिशामें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चलकर अशुद्ध रक्तवाहक नाडीके अंदर प्रविष्ट होते हुए हृदयतक पहुंचनेका यत्न करते हैं ।

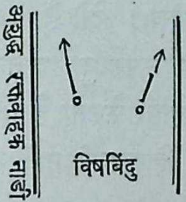

अशुद्ध रक्तवाहक नाडीकी गति हृदयकी तर्फ होती है और शुद्ध रक्तवाहक नाडीकी गति हृदयसे बाहिरकी ओर होती है । यदि ये बिंदु एक दूसरेकी ओर आ जांयगे तो कदाचित् एकही नाडीमें प्रविष्ट हो सकते हैं, इसलिये ये विरुद्ध दिशासे नाडीमें प्रविष्ट होते हैं । इतना ज्ञान इनमें कैसा होता है इसका विचार तत्वज्ञानियोंको करना चाहिये । क्या इनमेंभी आत्मा और ज्ञान होता है ?

जब यह विष ऊपर चढने लग जाता है तब जिस बाल (केश) के नीचे यह विष जाता है वह नीचे लेट जाता है, जब नींचेसे विष ऊपर चढता है तब वह केश फिर खडा हो जाता है । इससे पता लग जाता है कि किस स्थानतक विषका प्रवेश हुआ है । जब सर्पदंश रात्रीके समय होता है तब उक्त बातोंको देखनेके लिये काचमणि (लेन्स) का उपयोग करना उचित है ।

जहां सर्पका दंश हुआ है उसके ऊपरके भागमें रसीसे सख्त बांधना चाहिये जिससे विष ऊपर जानेमें प्रतिबंध होगा । जहां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रस्सीका बंधन होता है वहांतक विष आनेके पश्चात् बडे वेगसे वहं विषबिंदु बंधन स्थानपर आघात करता है, ये आघात आंखसेभी सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर दिखाई देते हैं । यदि बंधन ढीला होगा तो थोडेसे प्रयत्नसे विष ऊपर घुस जाता है, और यदि ऊपरका मार्ग बंद हो गया तो वहांही फैलता है। इससे वह भाग पूर्णतया बधिर हो जाता है और हिलायाभी नहीं जाता।

(९) विषबाधाके लक्षण।

(१) विष शरीरमें प्रविष्ट होनेके बाद आंख लाल हो जाते हैं। तथा क्षण क्षण के पश्चात् मंद, सुस्त और निस्तेज होने लगते हैं; (२) सिरपर स्वेदके बूंद आते हैं; (३) बहुत प्यास लगती है, इस समय थोडाथोडा एकएक चमस पानी बडी सावधानीसे देना चाहिये, नहीं तो गलेमें पानी रुक कर बडीही घबराहट हो जाती है। (४) आंखकी पुतळी फैलती है; (५) सर्व अंगको पसीना आ जाता है; अंगकी उष्णता कम होकर मृत्युके समयकी ठंडक आने लगती है (६) श्वासोछ्वास की मुश्किल बढती है; (७) बेहोशी आने लगती है; (८) अंतमें मुखसे फेन आने लग जाता है। (९) पांचो ज्ञानेंद्रियोंके व्यापार कम होने लगते हैं, आंखकी दृष्टि कम होती है, शब्दोच्चारण अस्पष्ट होता है, रुची समझती नहीं है, मिश्री मीठी नहीं लगती और लाल मिरचीकेभी मिरचपनका पता नहीं लगता; (इसलिये सर्पदंश होनेके बाद लाल मिरची खानेको देते हैं, मिरचीका स्वाद समझनेतक खाना चाहिये,) कानसे शब्द

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुनाई नहीं देता; (१०) दंशका स्थान भारी और स्पर्शज्ञान-शून्य हो जाता है; (११) त्वचाका रंग हरा तथा काला होता है; (१२) मरनेके पूर्व हिचके आते हैं । ये लक्षण हरएकको होतेहीं हैं, ऐसा नहीं है, परंतु इनमेंसे बहुत लक्षण होते हैं । नागसे भिन्न इतर सर्प काटनेपर सूझन होती है, जीभ बडी भारी होकर मुखके बाहिर आती है, गाल सूझकर इतने बडे होते हैं कि आंखभी दिखाई नहीं देते ।

(१०) सर्पदंश की चिकित्सा ।

निम्न मंत्र ऋग्वेदमें तथा अथर्व वेदमें आता है वह चिकित्साके विषयमें देखने योग्य है—

यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प
उत वा श्वापदः ॥ अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु
सोमश्च यो ब्राह्मणां आविवेश ॥

ऋ. १०।१६।६; अथ. १८।३।५५

“ यदि तुझे काला पक्षी, कृमी, सर्प अथवा अन्य हिंस्र पशुने काटा है, तो उनके सब विषसे (अग्निः अगंद कृणोतु) अग्नि नीरोगता करे, अथवा ब्राह्मणोंके पास पहुंचा हुआ सोम आरोग्य देवे।”

सर्पविषका सबसे उत्तम तथा निश्चयात्मक उपचार इस प्रकार वेदने कहा है । तथा वाग्भट लिखते हैं—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दंशं मंडलिनां मुक्त्वा पित्तलत्वादथापरम् ॥
प्रतप्तैर्हेमलोहाद्यैर्दहेदाशूल्मुकेन वा ॥
करोति भस्मसात्सद्यो वह्निः किं नाम न क्षणात् ॥

वाग्भट

" मंडली सर्प पित्तकारक होता है इस लिये इसके दंशको छोडकर अन्य सर्प दंशके स्थानोंको सुवर्ण लोह आदिको तपाकर अथवा जलते कोहिलेसे जलाना चाहिये। जिसको अग्नि जलाता नहीं ऐसा कौनसा विष होगा ? " तथा—

दुर्गंधं सविषं रक्तं अग्नौ चटचटायते ॥

वाग्भट.

" दुर्गंधमय विषयुक्त रक्त अग्निमें चट्चट् ऐसा आवाज करता है। " सर्पविषसे भिन्न अन्य विषकी चिकित्साभी इस प्रकार अग्निसे हो सकती है, इसका वर्णन पूर्व मंत्रमें लिखाही है। " सोम " शब्द जिस मुख्य औषधि का वाचक है वह औषधियोंका राजा सोम आजकल मिलता ही नहीं, अन्य औषधियोंका बोध यदि इस सोम शब्दसे लेना है तो उसका विचार वैद्यही कर सकते हैं। तथा—

आरे अभूद्विषमरौद् विषे विषमप्रागपि ॥
अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणीयत् ॥
दंष्टारमन्वगाद्विषमहिरमृत ॥

अथ. १०।४।२६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" विष दूर हो गया, विष रोने लगा, अग्निने उस विषका निर्धारण किया, सोमनें उसको बाहिर निकाला, काटनेवालेके पास विष पहुंचा और वही सर्प मर गया । "

विष दूर करनेका अग्निका धर्म तथा विष उतारनेका सोमका धर्म इस मंत्रमें कहा है । इस मंत्रका अधिक विचार वैद्योंको करना उचित है । सोम आदि औषधि जो विष दूर करतीं हैं, पहाडोंपर होतीं हैं—

कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् ॥
हिरण्मयीभिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु ॥ १४ ॥
आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहाऽपराजितः ॥
स वै स्वजस्य जंभन उभयोर्वृश्चिकस्य च ॥ १५ ॥

अ. १०।४

" भीलोंकी लडकी पहाडोंपर तेजस्वी हथियारों से औषध खोदकर लाती है । यह तरुण वैद्य आया है जो विष दूर करनेमें कुशल, स्वज नामक सर्पका तथा विच्छूका विष भी दूर करता है ।"

इस मंत्रसे सूचित होता है कि सर्पविषका शमन करनेवाली कोई वनस्पतिकी जड है, जो भूमिमेंसे खोदकर प्राप्त करनी होती है । तथा इन विषोंके (अ—पराजित भिषक्) निःसंदेह चिकित्सा करनेवाले वैद्यभी होने चाहिये । समुद्रके पानीमें विष दूर करनेका धर्म है ऐसा निम्न मंत्रसे ज्ञात होता है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दंशं मंडलिनां मुक्त्वा पित्तलत्वादथापरम् ॥
प्रतप्तैर्हेमलोहाद्यैर्दहेदाशूल्मुकेन वा ॥
करोति भस्मसात्सद्यो वह्निः किं नाम न क्षणात् ॥

वाग्भट

" मंडली सर्प पित्तकारक होता है इस लिये इसके दंशको छोडकर अन्य सर्प दंशके स्थानोंको सुवर्ण लोह आदिको तपाकर अथवा जलते कोहिलेसे जलाना चाहिये। जिसको अग्नि जलाता नहीं ऐसा कौनसा विष होगा ? " तथा—

दुर्गंधं सविषं रक्तं अग्नौ चटचटायते ॥

वाग्भट.

" दुर्गंधमय विषयुक्त रक्त अग्निमें चट्चट् ऐसा आवाज करता है। " सर्पविषसे भिन्न अन्य विषकी चिकित्साभी इस प्रकार अग्निसे हो सकती है, इसका वर्णन पूर्व मंत्रमें लिखाही है। " सोम " शब्द जिस मुख्य औषधि का वाचक है वह औषधियोंका राजा सोम आजकल मिलता ही नहीं, अन्य औषधियोंका बोध यदि इस सोम शब्दसे लेना है तो उसका विचार वैद्यही कर सकते हैं। तथा—

आरे अभूद्विषमरौद् विषे विषमप्रागपि ॥
अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणीयत् ॥
दंष्टारमन्वगाद्विषमहिरमृत ॥

अथ. १०।४।२६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" विष दूर हो गया, विष रोने लगा, अग्निने उस विषका निर्धारण किया, सोमनें उसको बाहिर निकाला, काटनेवालेके पास विष पहुंचा और वही सर्प मर गया। "

विष दूर करनेका अग्निका धर्म तथा विष उतारनेका सोमका धर्म इस मंत्रमें कहा है। इस मंत्रका अधिक विचार वैद्योंको करना उचित है। सोम आदि औषधि जो विष दूर करतीं हैं, पहाडोंपर होतीं हैं—

कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् ॥
हिरण्मयीभिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु ॥ १४ ॥
आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहाऽपराजितः ॥
स वै स्वजस्य जंभन उभयोर्वृश्चिकस्य च ॥ १५ ॥

अ. १०।४

" भीलोंकी लडकी पहाडोंपर तेजस्वी हथियारों से औषध खोदकर लाती है। यह तरुण वैद्य आया है जो विष दूर करनेमें कुशल, स्वज नामक सर्पका तथा विच्छूका विष भी दूर करता है।"

इस मंत्रसे सूचित होता है कि सर्पविषका शमन करनेवाली कोई वनस्पतिकी जड है, जो भूमिमेंसे खोदकर प्राप्त करनी होती है। तथा इन विषोंके (अ—पराजित भिषक्) निःसंदेह चिकित्सा करनेवाले वैद्यभी होने चाहिये। समुद्रके पानीमें विष दूर करनेका धर्म है ऐसा निम्न मंत्रसे ज्ञात होता है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिंधवः ॥

अ. १०।४।२०

"सब सर्पोंका विष (सिंधवः) समुद्रका जल दूर करे।" "सिंधु" शब्दका अर्थ "नमकीले पानीवाला समुद्र" ऐसाभी होता है तथा 'मीठे पानीवाली नदी' ऐसाभी होता है। यहां किस अर्थका ग्रहण करना चाहिये, अथवा यहां कोई भिन्न ही अर्थ है, इसका विचार विचारी विद्वान वैद्य कर सकते हैं। विचारार्थ "सिंधु" शब्दके अर्थ नीचे देता हूं—(१) समुद्र, (२) नदी, (३) हाथीके सोंडसे निकला हुआ पानी, (४) हाथीके गंडस्थलसे निकला हुवा मद, (५)हाथी, (६)सफेद सोहागा (Borax white)(७)नमक, (८) समुद्रका खारा पानी, (९) नील सिंधुवारवृक्ष, (१०) वमन, (११) श्वेतटंगण इन अर्थोंमेंसे कौनसा अर्थ उक्त मंत्रमें है, इसका विचार होना चाहिये। कदाचित् और भी कोई अर्थ होगा। तथा—

ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया ॥
नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम् ॥ २१ ॥
यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत् ॥
कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वेतु ते विषम् ॥ २२ ॥

अ. १०।४

"(साधुया) साधुवृक्षके साथ मैं औषधियोंके (उर्वरीः) तंतुओंको लेता हूं और उनको (नयामि) ऐसा चलाता हूं कि जिससे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तेरा विष दूर हो। हे सर्प ! जो अग्नि, सूर्य, पृथिवी, औषधि, (कान्दाविषं) मेघ आदिमें विष है, वह सब चला जावे।

इस मंत्रसे ज्ञात होता है कि औषधियोंमें भी कई औषधियां विषहारक हैं। अब इन औषधियोंका पता लगाना चाहिये। साधु-नामकाभी एक वृक्ष है। कदाचित् यहाँ वही अपेक्षित होगा। चतुरवैद्य यत्न करेंगे तो पता लग सकता है। तथा—

तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि ॥
अधस्पदेन ते पदमाददेविष–दूषणम् ॥ २४ ॥
अंगादंगात्प्रच्यावय हृदयं परिवर्जय ॥
अधा विषस्य यत्तेजोऽवाचीनं तदेतु ते ॥ २५ ॥

अ. १०।४

" तौंदी और घृताची इन दो नामोंवाली (कन्या) औषधि है। (विष–दूषणं) विषनाशक इनका (पदं) भाग (अधस्पदेन) नचिसे (आददे) लेता हूं। (हृदयं परिवर्जय) हृदयको छोडकर शेष प्रत्येक अंगसे विष निकालो और विषका मार्ग नीचेकी ओर करो। इस प्रकार तेरा विष चला जायगा।"

" कन्या " शब्दका अर्थ इलायची (cardamam, large cardamam) बडी इलायची, घृतकुमारी, है। " तौदी और घृताची " इन वनस्पतियोंका पता नहीं लगता। जो विष हृदय तक नहीं पहुंचा है वह किसी अन्य अंगमें हो वहांसे निम्नगति होकर उक्त औषधियोंसे निकाला जा सकता है। कोशोंमें "कन्या" के अर्थ–बडी इलायची, घृतकुमारी, वाराही कंद, वंध्याककोंटकी,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कंदगुडूची इतने हैं। " घृताची " शब्दका अर्थभी इलाइची बडी ही होगा। " तौदी " का अर्थ कदाचित् " तोदपर्णी " वनस्पति होगा। इन शब्दोंसे सूचित औषधोंसे सर्पविषचिकित्सा करके अनुभव लेना चाहिये। अस्तु। अब निम्न सूक्त देखिये—

तिरश्चिराजेरसितात् पृदाकोः परि संभृतम् ॥
तत्कंकपर्वणो विषमिय वीरुदनानशत् ॥ १ ॥
इयं वीरुन्मधुजाता मधुश्चुन्मधुला मधूः ॥
सा विह्रुतस्य भेषज्यथो मशकजंभनी ॥ २ ॥
यतो दष्टं यतो धीतं ततस्ते निर्ह्वयामसि ॥
अर्भस्य तृप्रदंशिनो मशकस्यारसं विषम् ॥ ३ ॥
अयं यो वक्रो विपरुर्व्यंगो मुखानि वक्रा
वृजिना कृणोषि ॥ तानि त्वं ब्रह्मणस्पत
इषिकामिव सं नमः ॥ ४ ॥
अरसस्य शर्कोटस्य नीचीनस्योपसर्पतः ॥
विषं ह्यस्यादिष्यथो एनमजीजभम् ॥ ५ ॥
न ते बाह्वोर्बलमस्ति न शीर्षे नोत मध्यतः ॥
अथ किं पापयाऽमुया पुच्छे बिभर्ष्यर्भकम् ॥ ६ ॥
अदंति त्वा पिपीलिका वि वृश्च्यति मयूर्यः ॥
सर्वे भल ब्रवाथ शार्कोटमरसं विषम् ॥ ७ ॥
य उभाभ्यां प्रहरासि पुच्छेन चास्येन च ॥
आस्येन ते विषं किमु ते पुच्छधावसत् ॥ ८ ॥

अथ. ७।५६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"(१) यह (वीरुत्) वनस्पति तिरश्चिराजी, असित, पृदाकु, कंकपर्वा आदि सार्पोंके विषका नाश करती है। (२) यह औषधि मीठेपनकेसाथ उत्पन्न हुई, मधुरपन टपकानेवाली, बडी मीठी है; यह (वि-ह्रुतस्य) कुटिल-सर्प-के विषकी दवा है और मच्छरोंको दूर करनेवाली है। (३) जहां (दष्टं) काटा है और जहां (धीतं) रक्त पीया है, वहांसे (अर्भस्य) छोटे (तृप्र-दंशिनः) तीक्ष्णतासे काटनेवाले मच्छर का विष निकाल देते हैं। (४) यह जो विषके कारण (वि-परुः, वि-अंगः) तेढा मेढा बना है और मुख तेढे मेढे कर रहा है, हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानपते ! तू उसे सीधा कर। (५) नीचेसे आनेवाले (शार्कोटस्य) हिंसक सर्पादिक का विष मैनें उतार दिया है। और उस सर्पको मार दिया है। (६) तेरे बाहुमें बल नहीं है, तेरे सिर में और बीचमें भी नहीं है, हे बिच्छू ! फिर इस पापी पुछ में ही थोडासा विष तू क्यों धारण करता है? (७) हे सर्प ! तुझे चूंटियां खातीं हैं, (मयूर्यः) मोरानियें तुझे काटतीं हैं, परंतु तेरा (शार्कोटं) हिंसक विष सबही जानते हैं। (८) हे बिच्छु ! तू पुच्छसे और (आस्येन) मुखसे (प्रहरसि) प्रहार करता है। तेरे मुखमें विष कहां है? तेरे (पुच्छ-धौ) पुच्छकी थैलीमेंही विष है।"

यह सूक्त अन्योक्ति अलंकारका उत्तम उदाहरण है। परंतु इस विषयका विवरण करनेके लिये यहां स्थान नहीं है। जो पाठक अन्यो-क्ति अलंकारका हृद्गत जानते हैं उनको छठां और सातवां मंत्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देखनेसे पता लग जायगा कि, इनमें सर्प और बिच्छूके मिषसे दुष्ट मनुष्योंका वर्णन कितनी उत्तमतासे किया है। सबही सूक्त अन्योक्ति अलंकारका है। परंतु यहां अवकाश न होनेके कारण उसका स्वरूप न बताते हुए, सर्प–विद्याके विषयका आशयही यहां बताया जाता है।

तिरश्चिराजी, असित, पृदाकु, कंकपर्वा, शर्कोट, आदि नाम सर्पजातियोंके हैं। मधुवल्लीसे इनका विष दूर होता है। "मधु" शब्द मधुक वृक्ष, अशोक वृक्ष, यष्टि मधु, जीवंति वृक्षका पर्याय है। कदाचित् और कोई औषधि भी इससे ज्ञात हो सकती है। उक्त सूक्तके पहिले तीन मंत्रोंमें कहा है कि इस औषधिसे विष दूर होता है, चतुर्थ मंत्रमें बताया है कि विषबाधाका परिणाम अंग प्रत्यंगोंपर कैसा होता है। मंत्र छः सात और आठमें विशेषतः अन्योक्ति अलंकारका काव्यमय वर्णन है। इस मधुवृक्षके द्वारा चिकित्साका प्रयोग उत्तम वैद्य जान सकते हैं। अब यहाँ और एक सूक्त देखिये—

ददिर्हि मह्यं वरुणो दिवः कविर्वचोभिरुग्रैर्नि
रिणामि ते विषम् ॥ खातमखातमुत सक्त
मग्रभमिरेव धन्वन्नि जजास ते विषम् ॥ १ ॥
यत्ते अपोदकं विषं तत्त एतास्वग्रभम् ॥
गृह्णामि ते मध्यमसुत्तमं रसमुतावमं भियसा
नेशदादु ते ॥ २ ॥ अ. ५।१३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिव्य कवि वरुणने मुझे (ददिः) दिया है, उस उग्र वचनसे तेरा विष (निरिणामि) निकाल देता हूं। (खातं) अंदर तक गया हुआ, (अ-खातं) ऊपर ही रहा हुआ (सक्तं) केवल लगा हुआ विष (अग्रभं) मैंने पकड लिया है, (इरा इव) जल जैसा (धन्वन्) मरुदेशमें नष्ट होता है, वैसा विषको नष्ट कर देता हूँ ॥ जो तेरा (अप-उदकं) रूखा विष इनमें पकडा है, तथा जो मध्यम, उत्तम और निचले भागको (गृह्णामि) लेता हूं उसमें होगा, वह भयसे ही (नेशत् आत् उ) नष्ट हो जावे।"

पहिले मंत्रमें "**खात, अखात, सक्त**" ये काटनेके तीन प्रकार कहे हैं, इनका वर्णन पूर्व स्थलमें किया ही है। इनमेंसे गया हुआ विष पकडकर रखना है। पकडने की रीति "**अवम मध्यम उत्तम**" अंगोंको अच्छी प्रकार काबू करनेसे सिद्ध होती है। जहां सर्पका दंश हुआ होगा उसके ऊपर तीन स्थानोंमें रस्सीसे अच्छी प्रकार बांधना चाहिये, जिससे विष ऊपर जायगा नहीं और उन बंधोंमें पकडा जायगा। यह ही "**विषं अग्रभं**" का तात्पर्य है। तथा—

वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते ॥ अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमस इव ज्योतिरुदेतु सूर्यः ॥ ३ ॥ चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम् ॥ अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम् ॥ ४ ॥

अ. ५।१३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" मेरा (रवः) शब्द मेघके समान वीर्यशाली है। उग्र वचनसे तेरे विषमें (बाधे) बाधा डालता हूं। मैंने (अस्य) इसके उस रसको (अग्रभं) लिया है। जिस प्रकार अंधकारसे सूर्य उदय होता है उस प्रकार मनुष्योंके साथ वह उठे ॥ हे सर्प! आंखसे तेरी आंख नष्ट करता हूं, विषसे तेरा विष दूर करता हूं। हे सर्प! तू मर जा, जीवो मत्। विष तेरे पासही (प्रत्यग् अभ्येतु) फिर आजाय। "

मंत्र तीनमें शब्दके वीर्यसे विष दूर करनेकी विद्याकी सूचना हुई है। इसका विशेष वर्णन मानसचिकित्साके प्रसंगमें करूंगा। चतुर्थ मंत्रमें विषसे विषचिकित्सा कही है। तथा—

कैरात पृश्न उपतृण्य वभ्र आ मे शृणुतासिता अलीकाः ॥ या मे सख्युस्तामानमपिष्ठाताश्रा वयंतो नि विषे रमध्वम् ॥५॥ असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च ॥ सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव धन्वनो वि मुंचामि रथाँ इव ॥ ६ ॥

अ० ५।१३

" हे कैरात, पृश्न, (उप–तृण्य) घासके पास रहने वाले, भूरे रंगवाले, (असिताः) कृष्ण सर्पो, (अलीकाः) क्षुद्र सर्पो! आप (मे सख्यः) मेरे मित्रके (स्तामानं) घरके पास (मा स्थात) न ठहरो। यह मेरा वचन (आश्रावयंतः) सुनते हुए तुम सब अपने विषमेंही रमते रहो ॥ (असित) कृष्ण सर्प,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तैमात, (बभ्रोः) भूरे रंगवाले और (अपोदकस्य) जलके बाहिर रहने वाले तथा (सात्रासाहस्य) युग्म सर्प के विषको मैं वैसा ढीला करता हूं कि जैसा वीर धनुष्यकी डोरीको ढीला करते हैं ! इन मंत्रोंमें कैरात, पृश्न, उपतृण्य, बभ्रु, असित, अलीक, तैमात, अपोदक, सात्रासाह ये नाम सर्पजातीके हैं। इनके लक्षणोंका पूरा पूरा पता लगाना चाहिये।

आलिगी च विलिगी च पिता च माता च ॥
विद्म वः सर्वतो बंध्वरसाः किं करिष्यथ ॥ ७ ॥
उरुगुलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या ॥
प्रतंकं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥ ८ ॥
कर्णा श्वावित् तदब्रवीद् गिरेरवचरन्तिका ॥
याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसं विषम् ॥ ९ ॥

अ. ५।१३

आलिगी, विलिगी इन सांपिनी के पिता, माता, बंधुको सब प्रकार से (विद्म) हम जानते हैं, हे सर्पो ! तुम (अ-रसाः] रस हीन होनेपर क्या करोगे ? उरुगुला सांपिनीकी (दुहिता) बच्ची (दासी) दंश करने वाली (अ-सिक्न्याः) कृष्ण सार्पिणीसे उत्पन्न हुई। इन सब (दद्रुषीणां) दद्री करनेवालीयोंके (प्रतंकं) घातक विषको मैं (अरसं) निःसार अर्थात् निर्बल करता हूं॥ पहाडपर (अवचरंतिका) भ्रमण करनेवाली बोली कि (कर्णा) कानवाली, (श्वावित्) साही, तथा (खनित्रिमाः) भूमिमें रहनेवाली जो सांपिनियां हैं उन सबका विष रसहीन है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन मंत्रोंमें जो सर्पोंके नाम हैं, उनके लक्षणोंका पता लगाना बडा कठिन है, तथापि पाठक विचार करेंगे तो बहुत कुछ पता लगनेका संभव भी उत्पन्न होसकता है। तथा—

ताबुवं न ताबुवं न घेत् त्वमसि ताबुवम् ॥
ताबुवेनारसं विषम् ॥ १० ॥ तस्तुवं न तस्तुवं
न घेत् त्वमसि तस्तुवम् ॥ तस्तुवेनारसं विषम् ॥ ११ ॥
अ ५।१३

" तावुव और तस्तुव ये पदार्थ विषनाशक हैं। " उक्त पदार्थोंका पता लग जानेपर इन मंत्रोंका ज्ञान हो सकता है। तबतक ये मंत्र अज्ञात ही रहेंगे।

इस सूक्त में कई शब्द सांपोंके नामोंके तथा विषहारक पदार्थोंके वाचक हैं परंतु वे समझमें नहीं आते। बड़ा प्रयत्न करनेपर भी समझमें नहीं आये। जिन पाठकोंको इन शब्दोंसे बोधित वास्तविक पदार्थ ज्ञात हों, कृपया वे प्रकाशित करें, ताकि उससे सर्पोंसे त्रस्त हुए लोक सुखी हों। जिस दिन इस सूक्तका पूर्ण रीतिसे पता लग जायगा, उसी दिन सर्पका विष हरण करनेकी पूर्ण विद्या प्रकट होगी। सब कोश उपस्थित होने परभी ये शब्द अज्ञात ही रहते हैं, इससे पाठकोंको पता लग जायगा कि वेदकी विद्या कितनी लुप्त हो गई है, और उसका पुनरुद्धार करनेके लिये हम सबको कितना अगाध परिश्रम करना आवश्यक है। अब पूर्व लिखित सूक्तोंपर थोडासा विचार किया जाता है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१) अग्नि द्वारा विषस्थानको जलानेकी सूचना अथर्व १०।४।२६ मंत्रसे मिलती है। " **अग्निः अहेः विषं निरधात्।** " यह मंत्रका कथन अत्यंत सत्य है सर्पविषके ऊपर यह उपाय निश्चित ही है। वाग्भटके कथनानुसार मंडली सर्पके लिये यह अग्निचिकित्सा नहीं करनी चाहिये। कुछ साधन न मिला तो जलता हुआ कोयला लेकर तत्काल जखम जलाना अथवा जहां विष पहुंचा होगा वहांका भाग जलाना चाहिये।

(२) उसी मंत्रमें सोमवल्लीका विषनाशक गुण लिखा है। परंतु सोमवल्ली आजकल उपलब्ध नहीं है। हिमालयके मुंजवान् पर्वतपर मिल सकती है ऐसा पता लगा है, परंतु कोई कुशल वैद्य वहां जाये और सर्व लक्षण देखकर पता लगाये तब हो सकता है। तब तक असली सोमवल्ली प्राप्त नहीं हो सकती। असली सोमवल्ली जिसका कि सोमरस ऋषि लोक पिया करते थे, वह शतपथ ब्राह्मणके समय ही दुष्प्राप्य होगई थी। शतपथ (४।५।१०।१–७) में लिखा है कि सोम न मिलनेकी अवस्थामें अरुण पुष्प, श्येनहृत, आदार आदि वनस्पतियोंका रस लेकर सोमयाग करना। तात्पर्य सोमकी दुर्लभता शतपथके कालसे अर्थात् महाभारतके पूर्व कालसे है। इस समय तो असली सोमका पतातक नहीं है। पूर्वोक्त मुंजवान् पर्वतपर अथवा हिमालयकी किसी अन्य पहाडीपर प्रयत्नशील पुरुष ढूँढनेका यत्न करेंगे तो वहां सोमवल्ली प्राप्त होना संभव है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(३) अथ. (१०।४।२६) में " **अहेः विषं दंष्ट्रारमन्वगात अहिः अमृत ।** " कहा है । सांपने जिसको काटा है वह मनुष्य यदि उसी सांपको काटेगा तो वह विष उस सांपमें प्रविष्ट होता है, वह सांप मरता है और वह मनुष्य बचजाता है, इस विषयमें अनुभवकी बात पूर्वस्थलमें लिखी ही है । वाग्भट में भी कहा हैं कि " **दृष्टमात्रो दशेदाशु** " (वा. सर्प वि- चि-) काटते ही उसी सर्पको काटनेसे विष उतर जाता है । वेदनेभी वही बात उक्त शब्दमें कही है । आत्मसंरक्षणके लिये इस अवस्थामें सांपको अपने मुखसे काटना वेदके अनुकूल ही प्रतीत होता है । अन्य चिकित्साओंके समान यह भी एक चिकित्साही है । वेद कहता है इस प्रकार सापको काटनेसे " **अहिः अमृत** " सांप मर जाता है क्यों कि " **दंष्ट्रारं अन्वगात् विषं** " उसी काटने वाले सापके पासही वह विष चला गया है । परंतु यह घोर कर्म कैसा किया जा सकता है? यही एक बडाभारी प्रश्न है ।

(४) अथ. (१०।४।१४) में कहा है कि " पहाडोंपर किरातोंकी कुमारिकायें भी औषधियां खोदकर प्राप्त करतीं है ।" यह मंत्र पूर्व स्थानमें दिया ही है । इस मंत्रसे वेदने सूचित किया है कि जंगलमें रहनेवाले लोकोंसे औषधियोंका पता लग सकता है । इस लिये वैद्योंको उचित है कि वे पहाडोंपर और वनोंमें भ्रमण करके जंगली लोकोंसे औषधियोंका पता लगावें, ग्रंथोंमें बहुत कुछ लिखा होता है परंतु उसका साक्षात् अनुभव लेनेके विना कार्य नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता। जंगली लोकोंसे अनुभूत औषधियां प्राप्त हो सकतीं है। ज्ञान प्राप्त करनेका यह एक राजमार्ग है। इसके आगेके १९ वे मंत्रमें शिक्षित विषवैद्यका वर्णन है।

(५) अथर्व (१०।४।२१) में "**अर्वती**" और उसी सूक्तके मंत्र ५ में "**पैद्व**" शब्द क्रमशः घोडी और घोडेके वाचक हैं। घोडा घोडी अथवा इन शब्दोंसे व्यक्त होनेवाले कोई अन्य पदार्थ विषहारक हैं। घोडाघोडीके विषहारक गुणके विषयमें वैद्योंको अन्वेषण करना चाहिये अथवा इन शब्दोंके अन्य अर्थोंकी, शक्य हो तो, खोज करनी चाहिये।

(६) "**तौदी, घृताची, कन्या**" ये औषधियोंके नाम हैं (अ. १०।४।२४) ये शब्द कोशोंमें बडी इलायचीके वाचक हैं। कोई अन्य अर्थ भी संभवनीय होगा। बडी इलाईची किस प्रकार सापोंका तथा अन्य प्रकारका विष शमन करती है, इसके प्रयोग करके अनुभव प्राप्त करना चाहिये।

(७) अथ. १०।४।२५ में प्रत्येक अंगसे विष नीचेकी गतिसे उतारनेका विधान है। क्या यह पसीनेके द्वारा विष दूर करनेकी चिकित्सा है या किसी अन्य रीतिसे, इसका विचार करना उचित है। इस मंत्रमें "**हृदयं परिवर्जय**" यह सूचना अत्यंत महत्वपूर्ण है। हृदयको छोडकर अन्य अवयवोंसे विष दूर करनेका उपाय इसमें है। हृदयमें सर्पविष पहुंचने पर मृत्यु निश्चित ही है, फिर उपाय होही नहीं सकता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहां हमारे देखनेमें जो बात आगई है, विचारार्थ लिखना उचित है। कई विषवैद्य हमने ऐसे देखे हैं कि जो सर्पआदि विषजंतुके काटनेपर उस दंश स्थानपर विवक्षित वनस्पतिके पल्लवोंसे उतारा करते हैं। "उतारा" करनेका तात्पर्य यह है कि ऊपरसे नीचेकी दिशासे उक्तपल्लवोंको हिलाते हैं। समझ लीजिये कि पिंडरीमें सर्पदंश हुआ है, तो पल्लवोंको सीधे हाथमें पकडकर जंघासे पांवकी अंगुलि-तक लेजाते हैं, इस प्रकार वारंवार करते हैं। इस प्रकार "उतारा" करनेसे विष दूर होता है ऐसा लोकोंका अनुभव है। निर्गुंडी, निंब आदिके ही पल्लव इस कार्यके लिये वर्ते जाते हैं। अ. १०।४।२९ मंत्रके कथनका तात्पर्य इस प्रकारका उतारा करनेका है ऐसा पता-लगता है, क्यों कि हृदयको छोडकर अन्य अवयवों और अंगोंसे विष नीचेके मार्गसे उतारनेका वर्णन उक्त मंत्रमें स्पष्ट है। इसका विचार विषचिकित्सक करें।

(८) अ. ७।५६।२ में "मधु" वनस्पति विषनाशक है ऐसा कहा है। इस वनस्पतिका निश्चय होना चाहिये। इसका और गुण **मशक-जंभनी** (मच्छरोंका नाश करने वाली) कहा है। यदि मधु वनस्पतिसे मच्छर नष्ट होते हैं तो मलेरिया ज्वरके पीडित प्रांत इस भरतखंडमें अनेक हैं, वहां मधुर वनस्पति लगानेसे मच्छर नष्ट होंगे और लोक सुखी हो सकते हैं। इस लिये मधु वनस्पतिका निश्चय होना चाहिये और उसका उपयोग विष निवृत्तिके लिये किस प्रकार करना चाहिये और मच्छरोंको दूर करनेके लिये किस रीतिसे करना चाहिये, इसका स्पष्टीकरण होना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(९) अथ. ९।१३।१ में कहा है कि "**वचोभिः उग्रैः निरिणामि ते विषं**" (उग्र वचनोंसे तेरा विष दूर करता हूं) यह मंत्र विषनिवारक उपायोंके विचार करनेके समय अवश्य ध्यानमें धरने योग्य है। केवल "**शब्दोंद्वारा विषकी निवृत्ति**" होना संभव है अर्थात् "**मंत्र–सामर्थ्य**" से विष निवृत्त हो सकता है, ऐसा यहां पता लग सकता है। इस विषयमें मंत्र के शब्द अत्यंत स्पष्ट हैं। इन शब्दोंका दूसरा कोई अर्थ होही नहीं सकता "**मानस चिकित्सा**" में तथा "**आथर्वणी और आंगिरसी चिकित्सा**" में यह बात स्पष्ट होगी। परंतु यहां संक्षेप से लिखनी आवश्यक है। वीर्ययुक्त शब्दोंके उच्चारणसे विष अथवा रोग दूर हो सकते हैं यह बात अथर्ववेदमें कित्येक स्थान पर स्पष्ट दिखाई देती है। "**वैदिक-चिकित्सा–पद्धति**" नामक पुस्तकमें तथा "**वैदिक–प्राण-विद्या**" नामक पुस्तकमें अल्प अंशसे बताया है कि "इच्छा शक्तीकी प्रबल प्रेरणासे प्रेरित हुए शब्द" विलक्षण कार्य करते हैं। शब्दका नाम ही '**महो देव**' (य. १७।९१) है। जब यह महान् देव शब्द आत्माकी प्रबल इच्छा शक्तीको साथ लेकर प्रकट होता है तब यह कृतकारी होता है। आजकल बहुतसे लोक मंत्रशक्तीको मानते नहीं, यह किसी प्रकार आश्चर्यकी बात नहीं है, क्यों कि, मुनि बननेके विना वाचाकी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती, और आजकल "**मुनि**" बननेकी अपेक्षा "**वाचाल वक्ता**" बननेकी ओर प्रवृत्ति अधिक है!!! इस लिये अपनी वाणीकी शक्ति कोई जानता नहीं।

स० ४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मंत्रप्रयोगके विषयमें हमने देखा एक उदाहरण यहां लिखता हूं। पूनामें म. गोविंदराव नामक एक मेरे मित्र हैं। पांच वर्ष पूर्व उनकी धर्मपत्नीको सर्पदंश होगया। सायंकालका समय था; सर्प काटनेके पश्चात् उक्त स्त्री की बडी घबराहट होने लगी। पूनाके प्रसिद्ध डॉक्टर लाये गये, उन सबने डॉक्टरी इलाज किये और करीब रातके नौ बजे सबने कहा कि अब अवस्था यहांतक पहुंची है कि इसके पश्चात् इलाज नही हो सकता। मुखसे फेन निकल रहाथा, पसीना आ रहाथा, आंखें भयानक बन गईथीं, शरीर ठंडा बनने लगाथा और डॉक्टरोंने निराशा प्रकट की थी। इतना होनेके पश्चात् किसी मित्रकी प्रेरणासे पूना छावनीसे एक पूर्वीया आदमी लाया गया। उसने वह अवस्था देखकर कहा कि इलाज हो सकता है। पश्चात् उसने उस स्त्रीको बिठलाया और पीठ पर एक पीतलकी थाली लगाई, आश्चर्य यह कि लगाते ही पीठको थाली चिपक गई, नंतर वह दूर खडा रहा और मंत्र बोलकर उस थाली-पर चावल फेंकने लगा। कुछ आधा घंटेके पश्चात् थाली नीचे गिर पडी, तब उसने कहा कि विष उतर गया है। अब उसको सूर्योदय होने तक जागृत रखना चाहिये। इतना कह कर वह चला गया। मंत्रप्रयोग करनेके लिये उसने कुछभी लिया नहीं। पैसा आदि न लेनेका हेतु उसने यह कहा कि वैसा करनेसे मंत्रका बल कम होता है। तत्पश्चात् वह स्त्री अच्छी हो गई, और दूसरे दिन जब डाक्टरोंने देखा तब सबही आश्चर्य चकित हो गये!!!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह बात जैसी होगई वैसी सारांशरूपसे लिखी है। म. गोविंद-राव पूनामेंही हैं, जो उनको मिलकर इस विषयमें अधिक जानना चाहते हैं वे वैसा इस समयमें भी कर सकते हैं। इस प्रकारके मंत्राचि-कित्सक कोल्हापुरमें तथा साताराके पास माहुलीमें थे परंतु अब कोई नहीं है। मेरे देखनेमें अन्य कोई उदाहरण नहीं आया है। तथापि पूर्व मंत्रके शब्दोंसे पता लग सकता है कि मंत्रविद्यासे इस प्रकारकी चिकित्सा हो सकती है। पाठक इसका अधिक संशोधन करें।

(१०) अथ. ९।१३।९ में कहा है कि "हे सर्पो। मेरे मित्रके घरमें न रहिये" (मा मे सख्युः स्थामानं स्थात)। पाठक पूछेंगे कि क्या यह बात सर्प सुन सकते हैं और उसकी आज्ञाका पालन कर सकते हैं? यह भी मंत्रविद्याका ही चमत्कार है। यह मैंने स्वयं देखा है कि बिच्छू अथवा सर्प निश्चित रेषाओंके मर्यादा-ओंके अंदरही विना किसी अन्य आवरणके रखा जा सकता है। खुले मैदानमें एक रेखासे गोल आकृति बनाकर उसमें सर्प रखा गया था, तथा दूसरे स्थानपर बिच्छू रखाथा। कई घंटोंतक वे वहांही पडे रहे जबतक वही आदमी फिर आकर उनको निकाला नहीं। यह बात निःसंदेह आश्चर्यकी है, परंतु असत्य नहीं है। तथा इसको झूटभी नहीं कहा जा सकता। अ-९।१३ सूक्तके वाक्य यदि पाठक इस दृष्टिसे देखेंगे तो उनको पता लग जायगा कि वे वाक्य इस प्रकारकी शक्तिके ही सूचक हैं। यद्यपि इसविषयमें निश्चित ज्ञान मुझे स्वयं नहीं है, तथापि मेरे अज्ञानके कारण वेदमं-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रोंका अर्थ उलटा करके मंत्रशक्तिके अभावकी स्थापना करनाभी मैं बुरा समझता हूं। हमको मंत्रोंकी विद्या जाननी चाहिये, न कि हमारे अज्ञान के अनुकूल मंत्रोंके अर्थ घडने हैं। मंत्रोंके शब्दोंसे जो बात स्पष्ट होती है वह उक्त प्रकार है, इसका अधिक विचार करनेके पश्चात् निश्चय हो सकता है कि सत्य क्या है।

इस प्रकार विषचिकित्साके विषयमें वेद्का कथन है उक्त मंत्रोंके हरएक शब्द्का बहुतही विचार होना आवश्यक है, इसमें संदेह नहीं। इसी लिये ज्ञात और अज्ञात मंत्र इस लेख द्वारा पाठकोंके सन्मुख रखे हैं। मंत्र सन्मुख होनेसे कभी न कभी विचार हो जायगा।

(११) उपाय योजना।

(१) सर्पदंश होनेकी संभावना होतेही बडी सावधानी रखनी चाहिए। काटनेके समयही उसको दूर फेंकनेका यत्न करना चाहिये जिससे वह दंशस्थानमें विष गिरा नहीं सकेगा। दंशस्थानसे विशेष रक्त बहने लगा तो कोई हानी नहीं है। तथा उस समय मनसे सांपको निम्न प्रकार कहना कि—

अदंति त्वा पिपीलिका विवृश्च्यंति मयूर्यः ॥

अथ. ७।५६।७

" अरे सर्प! तुझे चूंटियां खाती हैं और मोरणियां कुचलती हैं " तेरे जैसे तुच्छ प्राणीसे मैं नहीं डरूंगा। ऐसा मन दृढ करके सर्पको दूर फेंक देना और किसी प्रकार भी डरना नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२) सर्पदंश होनेके पश्चात् मुखसे दंशस्थानका रक्त शोषण करनेका यत्न करना चाहिये। परंतु यदि दांत अथवा होंट आदिमें व्रण हो तो कदापि रक्त चूसनेका काम करना उचित नहीं है, क्यों कि मुखके व्रणसेभी विष शरीरके अंदर जा सकता है। रक्त कडुवा लगा तो समझना कि उसमें विष है। नागका बच्चा काटेगा तो प्रायः रक्त बाहिर नहीं आवेगा। वाग्भट कहते हैं मिट्टी, गोमय, स्वाह आदि मुखमें धरके दंशके स्थानपर मुखसे रक्त चूसना चाहिये। स्वयं चूसना अशक्य हुआ तो दूसरेके द्वारा चूसा जा सकता है, अथवा अन्य प्रकार रक्त निकाला जा सकता है। तात्पर्य यह है कि दंशके स्थानका रक्त ठीक प्रकार बाहिर जाना चाहिये और एकभी विषबिंदु अंदर नहीं रहना चाहिये।

(३) सर्पदंश होतेही हाथसे सांपको पकडकर उसीको मुखसे काटनेसे विषबाधा नहीं होती। इस प्रकार काटनेके पश्चात् तत्काल दांतोंसे मिट्टी चबाकर उस थूंकका लेप अथवा कानके मलका लेप उस दंशपर करना चाहिये।

(४) अथर्व ९।१३।२ में कहा है कि " विषं तत्त एतास्व-ग्रभं ॥ गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसमुतावमं....॥ " अर्थात् " सर्पका विष उत्तम मध्यम और अवम इनमें लेता हूं। " इसका तात्पर्य यह है कि सर्पदंशके व्रणसे तीन चार अंगुल ऊपर रस्सीसे एक बंधन बांधना चाहिये यह अवम-बंधन है, इसके और ऊपर छः छः अंगुल अंतरपर और दो बंधन रसीसे करने चाहिये। येही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तम मध्यम और कनिष्ठ बंधन हैं । रस्सी हातके अंगुलके बराबर मोटी होनी चाहिये, बारीक रसीसे चमडी कट जायगी । बंधन इस प्रकार सखत बांधना चाहिये कि निचला खून ऊपर न जाने पावे । यदि हाथसे बंध ठीक न बांधा जाये तो रसीमें लकडी डालकर खूप कसना चाहिये और रोगीकी चिल्लाहटकी ओर देखना नहीं चाहिये, क्यों कि बंधन ढीला होनेपर विष हृदयमें जलदी पहुंचेगा और शीघ्रही मृत्यु होगा । बंधन बांधनेपर उसपर पानी डालनेसे और भी कसा जा सकता है ।

(५) जहां विष पहुंचा होगा वहां तीक्ष्णशस्त्रसे खुरचकर बहुतसा विषमय रक्त निकाल देना चाहिये । खुरचे हुए स्थानपर नमक अथवा बारूदकी दारू लगानेसे रक्त अच्छीप्रकार बहता है । विषमय रक्त काला होता है और शुद्ध रक्त लाल होता है । किसी समय विष कहां होता है इसका पता नहीं लगता, उस अवस्थामें बहुत गर्म जल निचले बंधनके नीचे लगाकर हाथसे मालिस करनेसे जहां विष होगा वहां सूजन चढी प्रतीत होगी, वहांही शस्त्रसे खुरचनेसे विष बाहिर आने लगेगा ।

(६) उक्त प्रकार शस्त्रके व्रणसे लाल खून निकलने लगेगा तो यह निश्चय नहीं करना कि संपूर्ण विष बाहिर आगया है, कदाचित् अंदर भी रहता है । इसको पूर्णतासे बाहिर निकालनेके लिये रोगीको शांत रीतिसे आरामपूर्वक बिठलाकर दंशस्थानके चारों ओर शुष्क सेकसे सेकना चाहिये । नमक अथवा रेतके द्वारा अथवा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गर्भ पानीसे सेकनेसे विषका वेग कम होता है। पांचदस मिनिट सेकनेके पश्चात् फिर पूर्ववत् रक्त निकालना। इस प्रकार चार पांचवार करनेके पश्चात् यदि विष न आया तो समझना चाहिये कि विष नहीं है । पूर्ण निश्चय होनेके पश्चात् सब बंधन छोडनेमें कोई दोष नहीं है।

(७) यदि भयंकर विषवाले सर्पका दंश हो अथवा बहोत विष अंदर गिरा हो, तो बंधनोंकी पर्वाह न करता हुआ वेगसे विष ऊपर चढता है; ऐसी अवस्थामें सबसे ऊपरले बंधन के स्थानमें हड्डीतक सब मांस, चर्म आदि सबको लोहेकी लाल छुरियोंसे जलाकर काटना चाहिये। यह आसुरी प्रयोग है, परंतु वेदने बतायाही है कि "**अग्नि विषका हरण करता है**" इस अवस्थामें इस आसुरी उपायसे ही बचना संभव है अन्यथा नहीं; यह अग्निप्रयोग कुशल वैद्य करेगा तो अच्छा है, परंतु कुशल वैद्यके अभावमें साधारण धैर्यशाली पुरुषभी हड्डीतक सब मांसको जलाकर रोगीको बचा सकता है। यदि कुशल डाक्टर इसका विचार करेंगे तो बहुत लाभ हो सकता है, परंतु सर्पविषकी बाधा युरोपमें कम होने से सर्पविद्याका वहां अभाव ही है । यहांके बडे नगरोंमें बडे चतुर डाक्टर और वैद्य रहते हैं, परंतु बडे नगरोंमें भयानक सर्प कम होते हैं। जहां विषसर्पोंसे लोक मरते हैं; वहां न तो कुशल डाक्टर होते हैं और न चतुर वैद्य होते हैं ॥ तथा कई विषसर्प इतने जहरिले होते हैं कि दंश होनेके पश्चात दस पंद्रह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिनिटोंके अंदर ही प्राण चले जाता है, इसलिये बडे डाक्टरोंको बुलाने के लिये समयही नहीं होता। यही कारण है कि सर्पविद्याका साधारण ज्ञान इस देशके निवासीके लिये अत्यंत आवश्यक है। यही कारण होगा कि प्राचीन कालकी पाठविधिमें सर्पविद्या अवश्यमेव सिखाई जाती थी।

(८) पीठ, गर्दन, बगल आदि ऐसे स्थान हैं कि जहां सर्प का दंश होनेपर बंधन का उपयोग करना असंभव है, वहां अग्निसे जलानेका उपाय उत्तम है अथवा शस्त्रसे विषमय रक्त निकालना भी अछा है। परंतु यह सब त्वरासेही करना चाहिये।

(९) हाथ अगर पांवकी अंगुलीको सर्पदंश हुआ हो तो शस्त्र-पास होनेपर तत्काल उस अंगुलीको काट कर फेंकना, सबसे उत्तम उपाय है। परंतु यह तत्काल करना चाहिये।

(१२) औषध उपचार।

वेद में जो औषधिप्रयोग दिये हैं उनका विचार पीछे कियाही है। इसके अतिरिक्त उपचारोंका विचार यहां करना है—

(१) इमलीका कल्क पानीमें निकालकर उसमें राईका तेल और नीला थोथा मिलाकर पिलाते हैं।

(२) कौंकणमें बहुत दुर्गंधयुक्त मच्छलीयोंको पानीमें घोल-कर पिलाते हैं।

(३) नागफणी वनस्पतिकी मूली पानीमें घोलकर पिलाते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(४) नागदमनी की जडें पानीमें घोलकर पिलाते हैं, मुखमें खुजली होने लगी तो पीछेसे घी पिलाते हैं।

(५) श्वेत द्विदल कणेरीकी जड (३ से ६ माशे तक) पानीमें घोलकर पिलाते हैं।

(६) कलेके वृक्षके आंतरिक गर्भ का पानी एक दो कौल पिलाते हैं।

(७) आगके पत्ते एक दो लेकर उसको पीसकर उसकी गोली खानेसे विष उतर जाता है।

ये सब उपचार नागके विषका निश्चय होनेपर ही करने योग्य हैं। केलेके वृक्षके आंतरिक गर्भके रसको छोडकर अन्य उपाय अत्यंत घातक हैं। सर्पविष न होनेकी अवस्थामें ये औषध ही मनुष्यका प्राण ले सकते हैं। इसलिये नागविषका निश्चय करके ही ये औषध देना उचित है। इसके अतिरिक्त—

(१) लाल मिर्ची खानेको देते हैं। विष रहने तक मिर्चीका स्वाद मालूम नहीं होता है। मिर्चीका स्वाद प्रतीत होने लगेगा तो समझना कि विष उतर गया है, तत्पश्चात् घी पिलाना आवश्यक है।

(२) सर्पदंशके स्थानपर मुर्गीका पश्चिमद्वार चिपकाते हैं, विष होने तक मुर्गी मरती जाती है, विष समाप्त होनेके पश्चात मुर्गी मरती नहीं। इसप्रकार सात आठ मुर्गियां मर जातीं हैं और आदमी अच्छा हो जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(३) सावंतवाडी संस्थानमें वेतोरें ग्राम है। वहां एक देवीकी मूर्ति है और उसी मंदिरके पास एक कूवा है। उसी कूवेका जल उसी मूर्तिपर चढाकर सेवन करनेसे सब प्रकारका विष दूर होता है। इसके कई प्रयोग मैंने स्वयं देखे हैं। इस विषयमें शोधक लोक अधिक विचार कर सकते हैं। और उस ग्राममें रहकर विशेष अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। विषवैद्योंको उक्त स्थान देखने लायख है।

(१३) इनाक्युलेशन।

बंबईके पास परळके रसायनभवनमें सर्पविषके ऊपर " सीरम् " तयार किया गया है। यह निश्चित गुणकारी है, परंतु यह उसी सर्पदंशपर उपयोगी होता है कि जिस जातीके सर्पका दंश होगा। अर्थात् सजातीय विष–सीरं सजातीय सर्पविषका शमन करता है अन्य जातीके सर्पदंशपर कोई उपयोग नहीं होता। अमेरिकामें ब्राझीलदेशमें सर्वसामान्य सर्पजातीके विष निवारणार्थ " सीरम " तयार किया है ऐसा सुनते हैं। इसका उपयोग करके अनुभव देखना चाहिये।

(१४) मंत्र तंत्र आदि।

मंत्र तंत्र आदिके विषयमें जो वेदवाक्य हैं वेह पूर्व स्थलमें दिये ही हैं तथा अनुभव का दृष्टांतभी दिया है। तथापि इस विषयमें निश्चयात्मक कुछभी कहा नहीं जासकता। क्यों कि इस बातका बहुत अनुभव हमनें नहीं लिया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दंशके तीन प्रकार पूर्व स्थानपर दिये ही हैं। पहिले दो प्रकारोंमे विष अंदर पहुंचता ही नहीं है। तीसरे प्रकारके दंशमें विष अंदर पहुंचता है। विचारणीय प्रश्न यहां यह है कि तीसरे प्रकारके दंश होनेकी अवस्थामें पूर्णतासे विष अंदर जानेके पश्चात् केवल मंत्र प्रयोगसे विष दूर हो सकता है वा नहीं। जो मांत्रिक होते हैं उनका निश्चय है कि हरएक प्रकारके दंशसे अंदर गया हुआ विष केवल मंत्रप्रयोगसे दूर किया जा सकता है। तथापि हमारे तर्कसे हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रयोग पहिले दो प्रकारके दंशोंके लिये ही उपयोगी है, तीसरे दंशके लिये नहीं है।

पहिले दो प्रकारके दंशोंमें शरीरमें विष जाता ही नहीं, परंतु विष अंदर जानेके संपूर्ण लक्षण दिखाई देते हैं। मनका कमजोर मनुष्य कल्पनासे विषबाधाका निश्चय मानकर मनमें विश्वास करता है कि अब अपना आंतिम समय है!! इस प्रकार मनके ही भयके कारण विषबाधाके सब लक्षण दिखाई देते हैं। इस प्रकारके सर्पदंशोंमें मंत्रप्रयोगसे उसके मनकी शांति होती है और मन शांत होनेसे उक्त लक्षण दूर होते हैं।

इस विषयमें औंधके एक प्रतिष्ठित नागरिकका उदाहरण विचारणीय है। यह महोदय रात्रीके समय अपने कूवेपर गये थे। जानेके समय पांवको कुछ काटनेका अंदेशा हुआ और उस स्थानसे खूनभी आने लगा। उसने समझा कि यह सर्पदंशही है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस विश्वाससे उसको बडी अस्वस्थता प्राप्त होगई और चक्करभी आने लगे। तत्पश्चात् कारणविशेषसे यह निश्चय हुआ कि वह सर्प नहीं था परंतु एक वृक्षका कांटा था। इस बातका पता लगनेपर पूर्वोक्त लक्षण एकदम बंद हो गये ! !

इस प्रकारके दंश मंत्रादि प्रयोगसे ठीक हो जाते होंगे। तथापि इस विषयमें जितना विचार होना चाहिये उतना हमने किया नहीं है, इसलिये कुछभी निश्चयात्मक लिखना अशक्य है।

मंत्रके विषयमें कई विश्वसनीय लोक जो बातें सुनाते हैं, बडी अद्भुत होतीं हैं। (१) मंत्रके द्वारा काटनेवाले सर्पका आत्मा काटेगये मनुष्यके शरीरमें आविर्भावित कराकर उससे दंश करनेके कारण पूछे जाते हैं, (२) पश्चात् वही सर्प आकर दंशस्थानमें अपना मुख लगा कर सब विष चूस लेता है और इस प्रकार वह मनुष्य निर्विष होकर आरोग्य पाता है। इस प्रकारके कई कथा प्रसंग हमने विश्वास करने योग्य पुरुषोंके मुखसे सुने हैं। परंतु हमने प्रत्यक्ष कोई उदाहरण न देखनेके कारण इसकी सत्यासत्यता के विषयमें कुछभी कहना असंभव है। इसलिये यह विषय ऐसाही अधूरा छोड देता हूं। इसकी पूर्णता सुविचारी पाठक अधिक संशोधन करके कर सकते हैं।

(१५) मनुष्येतर प्राणीका सर्पदंश।

मनुष्येतर प्राणी गाय, भैंस आदिको सर्पदंश होनेपर वैसे ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपचार करने होते हैं जैसे मनुष्यके लिये किये जाते हैं, परंतु औषधकी मात्रा अधिक देनी होती है, इसका कारण स्पष्ट ही है।

(१६) सर्पोंसे बचाव ।

चूहा, मेंडक, मुर्गीका बच्चा आदि खानेके लिये ही मकानमें सर्प आते हैं। इसलिये मकान ऐसे स्वच्छ और सुरक्षित रखने चाहिये कि उनमें चूहे आदि न हों। खिडकी आदिको बारीक जाली आदि लगानेसे बहुत उत्तम रीतिसे संरक्षण होता है। घरमें चूहेके बिल आदि हों तो बंद करना उचित है। मकानके पास उद्यान आदि हों तो उसको स्वच्छ रखना चाहिये। जो घर फिनाईलसे धोया जाता है उसमें सर्प प्रविष्ट नहीं होता। घरमें सर्प आगया हो तो उसपर अथवा उसके पास कार्बालिक आसिडके कुछ बूंद छिडका देंने वह चले जाता है। उसके शरीरपर कार्बालीक आसिड गिर-नेसे वह मर जाता है। जिस कमरेमें वह होगा उसमें गंधक आदि पदार्थोंका तीक्ष्ण धूंवा करनेसे वह भाग जाता है, क्योंकि वह धूंवां नहीं सह सकता।

रात्रीके समय बाहिर जानेके समय पांवमें बूट तथा ऊपर बंडेजकी पट्टियां जैसी सिपाही बांधते हैं, बांधनेसे बडा बचाव होता है। अंधेरी रात्रीमें कंदील सोटी आदि साथ रखना उत्तम है। घंटीवाली सोटी हाथमें रखनेसे बड़ा आराम होता है क्योंकि सब सर्प घंटीकी आवाजसे दूर भाग जाते हैं। सर्पोंके प्रदेशमें जमीनपर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सोने की अपेक्षा चार पाईपर सोना अच्छा है। घरमें कुत्ता, नेवला आदि रखनेसे सर्पसे बचनेमें सहायता होती है।

(१७) सर्पका वध ।

वेदमें सर्पका वध करनेका स्पष्ट उल्लेख है—

घनेन हन्मि वृश्चिकं
अहिं दंडेन आगतम् ॥
अथ. १०।४।९

" हथोडेसे मैं बिच्छू को मारता हूं। और आये हुए सर्प को-दंडसे मारता हूं " मत्रमें " हन्मि " शब्द " वध " का द्योतक है। हथोडेसे बिच्छूका वध करना चाहिये । हथोडे का तात्पर्य कोई चपटा पदार्थ समझना उचित है। जूतेके प्रहार से अछी प्रकार विच्छु मारे जाते हैं यह हमारा अनुभव है।

दंडेसे सर्पका वध करनेका उल्लेख ऊपरके मंत्रमें है। अनुभव ऐसा है कि सीधे दंडेसे. सापका वध करना कठिन है । हाकी की स्टिकके समान अथवा बेतकी गोल सोटी होती है जो पकडनेके स्थानपर अर्धचंद्रके समान होती है; उससे सापको ठीक प्रकार मारा जा सकता है। सोटी भी पतली नहीं होनी चाहिये परंतु डेढ इंच मोटी होनी चाहिये। वांस की सोटीकी अपेक्षा बेतकी सोटी अच्छी होती है। इसकी लंबाई सवा दो हाथसे कम न हो और अधिक लंबीभी न हो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्पके ऊपर सोटी चलानेके समय यह सावधानी रखनी चाहिये कि उसका सिर और दूम छोड कर बीचके भागपर ही आघात लगे; कई लोग जो सर्पविद्यासे अनभिज्ञ होते हैं वे उसके सिरपर आघात करनेका प्रयत्न करते हैं। परंतु नागसर्प तथा सर्पजातीके प्राणी अत्यंत चपल तथा उनकी दृष्टि विलक्षण तीव्र होनेके कारण वे कभी अपने सिरपर आघात लेते नहीं। और यदि पहिला आघात गलत हुआ तो वह अवश्यही काटेगा! इसलिये सिरको छोडकर उसके बीचके शरीरपर ही ऐसा आघात करना चाहिये कि जिससे उसकी पीठ की रीढ टूट जाये। एक समय उसकी पीठकी रीठकी हड्डी टूट गयी तो फिर वह हिल नहीं सकता, तत्पश्चात् आप उसका सिर अच्छी प्रकार विदीर्ण कर सकते हैं।

सोटी का आघात करनेके लिये जिस हाथमें सोटी पकडी हो उसके दूसरे हाथमें एक और छोटी बारीक सोटी पकडनेसे बडा उपयोग होता है। आघात करनेके समय वह सर्प आघात करने वालेपर हमला करनेको आता है, उस समय बडी चतुरतासे वह छोटी बारीक सोटी उसके आगे करनी चाहीये। वह बारीक सोटी आगे होते ही उसपर धांवा करता है, इतनेमें सीधे हायकी बडी सोटीसे उसके मध्यमें ऐसा आघात करना कि वह हतबल ही हो जावे। इसी प्रकार "कुटिल शत्रुको कुटिल नीतिसे मारना होता है।"

इस प्रकारके आघात के लिये कुठार आदि तक्ष्िण शस्त्र ठीक नहीं होते। कुठार के आघातसे टूटा हुआ सर्पका मुख दौडकर पास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आकर ऐसा काटता है कि उससे बचना बडा मुष्किल है। इस समय क्रोधके कारण विष भी बहुतही गिराता है इसलिये बचना असंभव हो जाता है। यही कारण है कि सांपको शस्त्र की धारासे तोडना उचित नहीं प्रत्युत सोटीसे ठोकना योग्य है। वेदने भी इसी हेतुसे कहा है कि—

अहिं दंडेन आगतं [हन्मि]

अथ. १०।४।९

" सांपको दंडेसे मारता हूं। " इस लेख की सूचना अत्यंत उपयोगी है। वेद तलवार से सर्पका वध करनेकी सूचना नहीं देता, परंतु दंडेसे उसको मारनेकी सूचना देता है। इतनी सावधानी वेदके उपदेशमें है।

हाथसे सर्पको पकडना हो तो उसको एकदम दूमसे पकडना और दूरसे दूर हाथ करके झटका देना चाहिये। यह कार्य इतनी शीघ्रतासे होना चाहिये कि उसको काटने को समय ही मिलना नहीं चाहिये। अन्यथा वह निःसंदेह काटेगा। फणी सर्पको छोडकर अन्य सर्पको इसप्रकार पकडना अच्छाभी नहीं है, क्यों कि वे अवश्य काटते हैं। हमने कई लोक ऐसे देखे हैं कि जो एकदम चलते हुए सर्पका मुखही पकड लेते हैं, परंतु यह बडे धैर्यका कार्य है और इसमें खतरा भी अधिक है। कई लोक सर्पको एकदम दूमसे पकडकर चक्रवत् घुमाकर छोड देते हैं, इस प्रकार वह सर्प चक्करमें आकर जहां गिरजाता है मूर्छित होता है और पश्चात् मर जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पकडनेकी युक्ति और एक है कि उसके मुखपर सोटी रखकर उसकी दूम दूसरे हाथसे पकडनी, पश्चात् सोटी पांव आदिसे दबा कर रखकर सोटीके हाथसे मुख पकडना। इस रीतिसे जीवित सर्प पकड़ा जा सकता है। सर्प हाथसे पकड़नेके समय निम्न औषधिका उपयोग करना उत्तम है—

(१) पीली कणेरीकी मूली पानीमें घोलकर उसका लेप हाथोंको लगाना; अथवा—

(२) तमाखूका चूर्ण—नसवार—हाथोंके ऊपर मलना, अथवा—

(३) वचाका चूर्ण हाथोंपर मलना, अथवा—

(४) ओसबेनतीकी जडें चबाकर सर्पके मुखपर थूंकना, तथा एक टूकडा साधारण चबा हुआ उसके मुखके सामने रखना, मुखमें उक्त जड़के टुकड़े धरने, तथा अपने हाथ पर उनका रस अच्छीप्रकार मल देना। इसके उग्र वाससे सर्प मूर्च्छित होता है।

उक्त औषधोंमेंसे एक समय एक एक औषधका ही उपयोग करना चाहिये अन्यथा उनका गुण एक दूसरेसे मारा जाता है। इसके अतिरिक्त फिनाइल, कार्बालिक आसिड, तारपीण आदि उग्र गंधवाले पदार्थ हाथपर मलनेसे भी अच्छी सहायता होती है। तीक्ष्णगंधसे सर्प मूर्च्छितसा होता है, कार्बालिक आसिडका एक बूंद सर्पके मुखमें जानेसे वह मर ही जाता है। अस्तु। नाग पकड़नेके समय विषबाधाकी निवृत्तिके उपाय साथ रखने उचित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं अन्यथा यदि वह काटेगा तो पकडनेवालेकी ही अंत्येष्टि हो सकती है ।

किसी बिलमें सर्प हो तो बिलद्वारके पास रसीका पाश रखा जाता है और धूम आदिसे उसको बाहिर निकाला जाता है। इसप्रकार बाहिर आतेही रसी खींच कर पाशमें पकडलेते हैं। पकडनेके लिये लोहेके पाश भी होते हैं ।

सर्पको पकडकर उसको मिट्टीके घडेमें रखकर घडेका मुख बंद करके किसी स्थानपर रखदेते हैं यह ठीक नहीं है। उसका वध करना इससे अच्छा है। उक्त प्रकार उसको बंदकरके रखनेसे अहिंसा नहीं सिद्ध हो सकती। नाग कई समय ऐसे कठिन स्थानमें रहते हैं कि वहां उनको मारना अथवा पकडना अशक्य होता है, ऐसी अवस्थामें बंदूकसे उसको मारना अच्छा है। छरोंसे अथवा बंदूकमें पानी डालकर उस पानीके द्वारा उसका वध होता है ।

नागका वध करना हो तो पूर्ण रीतिसे उसका वध करना उत्तम है। उसको थोडासा छेड छाडकर छोड देना अच्छा नहीं है। थोडासा छेडनेसे वह उसका बदला लेता है। इसलिये उसको स्वयं छेडना नहीं, और अगर छेडना है तो उसकी पूरी समाप्ति करना उत्तम है ।

कई लोक समझते हैं कि नागका वध करनेसे वह पिशाच अथवा भूत होकर कष्ट देता है, तथा संतति होने नहीं देता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परंतु यह सब भ्रमही है । मेरे मित्रोंमें ऐसे कई मित्र हैं कि जिन्होंने सौ पचास नागोंका वध किया है परंतु कोई नाग पिशाच रूपसे उनके सिरपर आकर नहीं बैठा, और न उनको संतति होनेमें कोई बिघाड हुआ है । उनमेंसे एकको तो प्रतिवर्ष सुदृढ संतान हो रहा है तथा उनके सुपुत्र भी सर्पवध करनेमें बड़े महशूर हो गये हैं ! ! तात्पर्य यह कि उक्त कल्पना निर्मूल हीं है ।

सर्प और सर्पिणीका युग्म रस्सीके समान एक दूसरेसे चिपका हुआ होता है । इस अवस्थामें उनका वध करना कठिन है कदाचित् वे दोनों इतने क्रोधसे हमला करते हैं कि उनसे बचना कठिन है । इस अवस्थामें भाग जाना उचित है । यदि वध करना हो तो दोनोंका एकदम वध करनेका प्रयत्न करना चाहिये नहीं तो उनको छोडना हीं अच्छा है ।

खुले मैदानमें सर्प वध करना उत्तम है, परंतु मकानमें, ऐसे कमरोंमें कि जहां बहुत सामान भरा होता है, अथवा आदमी सोये होते हैं, रातका समय होता है, इत्यादि अवस्थाओंमें बडेही सोचविचारके साथ काम करना चाहिये । थोडीसी असावधानी बडा घात कर सकती है ।

(१८) साधारण विचार ।

(१) शहरोंमें अथवा घरोंमें आये हुए सर्पोंको जीवित रखना योग्य नहीं, तथापि जंगलोंमें जाकर उनका संहार करना भी आवश्यक नहीं है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२) नाग अथवा सर्प विनाकरण हमला नहीं करता, क्योंकि वह मनुष्यसे डरता है।

(३) वह मनुष्यके समान वेगसे भाग नहीं सकता, इसलिये मनुष्य दौडकर उससे अपना बचाव कर सकता है।

(४) सर्पके मध्य शरीरपर एक ही आघात करनेपर वह इतना निर्बल होजाता है कि वह कुछभी कर नहीं सकता।

(५) दो चार सर्पोंका वध करनेके पश्चात् सर्पोंकी भीति कम होती है और आत्मविश्वास बढता है।

(६) अपने धैर्यसे संततिभी धैर्ययुक्त होती है। विशेषतः स्त्रियोंको सर्पविद्यामें प्रवीण करना चाहिये क्योंकि शूर पुरुषोंके अभावमें स्त्रियां अधिक भयभीत होतीं हैं।

(७) सर्पवधसे परोपकार होता है।

(८) अपने हिंदुस्थानमें प्रतिवर्ष तीस पैंतीस हजार लोक सर्पदंशसे मर जाते हैं, यदि सर्पविद्याका प्रचार होगा तो इतने मनुष्य बच सकते हैं।

(९) बहुधा अनेक स्थानोंमें सर्पवध के लिये इनाम दिया जाता है, इतनी इसकी आवश्यकता सरकारको और जनताको प्रतीत होगई है।

इसलिये इस विद्याकी उपयुक्तता निश्चित है। विद्वानोंको आवश्यक है कि वे सर्पविद्याकी बातोंको संगृहित करें और उनका प्रचार करें, जिससे जनताके ऊपर बडा भारी उपकार हो सकता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१९) अहिंसा।

पाठक पूछेंगे कि वेद प्राणिवध करनेकी आज्ञा क्यों देता है। भूत-दयाका उपदेश करना धर्मका काम है। इस विषयमें इतनाही कहना है कि वेद तो सबको—

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

य. अ. ३६।१८

" मित्रकी दृष्टिसे मैं सब भूतोंका निरीक्षण करता हूं। हम सब परस्पर मित्रदृष्टिसे देखें " इस प्रकार मित्रदृष्टिसेही व्यवहार करनेका उत्तम उपदेश दे रहा। सब भूतमात्र अथवा प्राणिमात्रका मित्र बनकर अहिंसाके स्वभावसे संपूर्ण व्यवहार करना, यही अंतिम आदर्श वेदका है।

" मनमें अहिंसाकी पूर्णतासे स्थिरता होनेपर उसके सन्निध सब प्राणी अपना वैरभाव छोड देते हैं " यह भगवान पतंजली महाराजजीका कथन सर्वथैव सत्य है। मित्रदृष्टिका यही फल है। जो मित्रदृष्टिसे युक्त बनेगा वह निःसंदेह विश्वमित्र किंवा विश्वामित्र बन सकता है, और उसकी कृपादृष्टिके छत्रमें रहते हुए सिंहव्याघ्रादिक पशुभी अपना वैरभाव छोड कर अहिंसक बनते हैं!! यह सब सत्य है, परंतु इतना अधिकार हरएक को प्राप्त होना कठिन है। इसलिये करोडों मनुष्योंमें एखाद आदमी इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकार अहिंसा शील बन सकता है; परंतु यह अहिंसाका व्रत सबके लिये आदर्श रूप रहना चाहिये इसमें कोई संदेह नहीं है।

इतना होनेपरभी हरएक मनुष्य अहिंसामय बनेगा ऐसा नहीं हो सकता। इन साधारण लोकोंको किस प्रकारका आचरण करना चाहिये ऐसा प्रश्न उत्पन्न होता है। जो उक्त प्रकारके अहिंसाशील संत होंगे उनके पास विषसर्प भी विषहीन बनेगा; परंतु अन्य जनताके पास वैसी शक्ति नहीं होती, इसलिये अन्योंके पास विषसर्प आगया, तो क्या करना चाहिये यही यहां प्रश्न है । इसका उत्तर वेदने दिया है कि "**उसको दंडेसे मार दो**" और अपना स्थान सर्पके उपद्रवसे रहित रखो।

भगवान योगिराज श्रीकृष्ण चंद्रजीनें भी कालिया आदि सर्पोंको इसी कारण मृत्युके पास भेज दिया था और वहांकी जनताको सुखी किया था। इस हेतुसे सामान्य अवस्थामें सर्पवध एक रीतिका परोपकार ही है। अस्तु।

(२०) अंतिम कथन।

"**वैदिक-सर्प-विद्या**" के नामसे जो यह निबंध लिखा है वह बहुत दृष्टिसे अपूर्ण है। वैदिक कालकी जो सर्प विद्या थी वही इस लेखमें आगई है ऐसा मेरा कथन नहीं है। तथा सर्पविद्याके विषयमें आर्ष और अनार्ष वैद्यक ग्रंथोंमें जो ज्ञान है वह भी इस में संपूर्ण रीतिसे संगृहित नहीं हुआ है, इसलिये इसमें त्रुटियां बहुतही हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन त्रुटियोंके अतिरिक्त वैदिक शब्दोंका पूर्णज्ञान न होनेके कारण तथा कई मंत्र अभीतक संदिग्ध रहनेके कारण जो दोष इस लेखमें हो गये हैं, वेभी बहुत ही होंगे।

इतने दोष होनेपर भी यह लेख लिखनेका साहस किया है। इसका हेतु इतनाही है कि इस विषयमें मेरेसे अधिक विद्वान् प्रयत्न करें और इस सर्पविद्याको परिपूर्ण बनावें। जिस देशमें सर्प होते हैं वहां इस विद्यासे अनंत लाभ हो सकते हैं। अपनेही देशमें प्रतिमास दो तीन हजार मनुष्य सर्पदंशसे मरजाते हैं। इस विद्याका प्रचार होनेसे इतनी मृत्युकी संख्या कम हो सकती है। आशा है कि विद्वान और ज्ञानी वैद्य इसका अधिक विचार और इसकी अधिक पूर्णता करेंगे।

सर्पकी प्रत्येक जातिका अलग अलग विचार होना आवश्यक है, इसप्रकार करनेसे सहस्रपृष्ठोंका ग्रंथ हो सकता है। वैदिक मंत्रोंके सर्पविषयक शब्दादिकोंके अर्थोंकी खोज होनी चाहिये। केवल व्याकरण, निरुक्त, तथा यौगिक अर्थोंकी सहायतासे कुछभी बोध नहीं होता है, इसलिये संपूर्ण सर्पजातियोंका सूक्ष्म निरीक्षण करना और उस ज्ञानसे अर्थनिश्चय करना चाहिये। मुझे पूर्ण आशा है कि ज्ञानी लोक इसका अधिक विचार करके इस विद्याकी पूर्णता करेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयसूची ।

विद्याका उद्धार ... ... पृष्ठ २
(१) वैदिक सर्पविद्या–भूमिका ३
(२) सर्पोंके नामोंका विचार ५
(३) वेदमें सर्पवर्णन ८
(४) सर्पोंकी उत्पत्ति और वृद्धि १५
(५) सर्पके इंद्रिय १७
(६) रहनेका स्थान और उसका भक्ष्य २०
(७) नागका विष २२
(८) सर्पदंश २७
(९) विषबाधाके लक्षण ३२
(१०) सर्पदंशकी चिकित्सा ३२
(११) उपाय योजना ५२
(१२) औषध उपचार ५६
(१३) इनाक्युलेशन ५८
(१४) मंत्र तंत्र आदि ... ... ,,
(१५) मनुष्येतर प्राणीका सपर्दशं ६०
(१६) सर्पोंसे बचाव ६१
(१७) सर्पका वध ६२
(१८) साधारण विचार ६७
(१९) अहिंसा ६९
(२०) अंतिम कथन ७०
विषयसूची ७२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu